जैन धर्म-रहस्य गीताञ्जली

कविवर-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

आ. विमलसागर गुरुदेव जन्म शताब्दी महोत्सव व ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा में दीर्घ प्रवास व प्रवचनसार स्वाध्याय के उपलक्ष्य में.....

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्री राजेश पुत्र श्री जीतमल जी जैन, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, मो. 9414884755
2. श्रीमती मधु बेन श्री सज्जनलाल जी गोवाड़िया, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा
3. ब्रह्मचारी श्री सोहनलाल जी देवड़ा (संघस्थ आ. श्रीसंघ)
4. श्रीमती मञ्जूला देवी श्री दिनेश शाह, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा
5. श्रीमती ममता देवी श्री नीलेश जी सिंघवी, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा
6. श्रीमती विमला देवी श्री अनोखीलाल जी भूता, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा

ग्रन्थांक-257 प्रतियाँ-500
संस्करण-2016 मूल्य-101/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

विश्वकल्याणी माँ जिनवाणी

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : बंगला-उड़िया....., हाँ तुम बिलकुल ऐसे हो....., शत-शत वंदन....., कठिन-कठिन.....(मराठी).....)

जयतु जयतु माँ जिनवाणी...जयतु जयतु माँ श्रुतवाणी...
जयतु जयतु अनेकान्त वाणी...जयतु जयतु यथार्थ वाणी...(स्थायी)...

सर्वज्ञ देव से निसृत वाणी...गणधर द्वारा ग्रंथित वाणी...
सर्वभाषामयी श्री दिव्य वाणी...सर्व सत्य प्रकाशिनी वाणी...(1)...

अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक...आत्मा से परमात्मा तक...
मूर्तिक से लेकर अमूर्तिक तक...समस्त सत्य-तथ्य प्रकाशक...(2)...

तर्क-प्रमाण सहित वाणी...तर्कातीत सत्य संयुक्त वाणी...
तन-मन-इन्द्रिय कथक वाणी...तन-मन-अक्ष परे बखानी...(3)...

कल्पनातीत भी आप बखानी...इन्द्रिय-मनातीत आपकी वाणी...
मानव बुद्धि व यंत्रातीत वाणी...सार्वभौम परम सत्य बखानी...(4)...

अनंत प्रज्ञा से निसृत वाणी...अनंत सत्य-तथ्य बखानी...
समस्त दुःखों की निवृत्त वाणी...अनंत मोक्ष सुख प्राप्ति बखानी...(5)

आप ही जगत् पावनी माता...निष्पक्ष-उदार कथक माता...
विश्वकल्याणी हे! जगज्जननी...'कनकनन्दी' की ज्ञानदायिनी...(6)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 29.04.2016, मध्याह्न 2.13

पृथ्वी पर ज्ञान-विज्ञान की महाविभूति श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : आल्हा (बुंदेलखण्डी).....)

पृथ्वी तल पर महाविभूति...कनकनन्दी जी श्री गुरुराज...
जिनकी समता-समता-प्रज्ञा...अनुभव ज्ञान का हुआ प्रभाव...
पृथ्वी तल पर...(स्थायी)...

बाल्यकाल से लक्ष्य है ऊँचा...वैश्विक व्यापक सरोकार...
वैज्ञानिक-संत-नायक...आध्यात्मिक गुरु योगीराज...
प्राचीन गुरुकुल ने आचार्य...आधुनिक विज्ञानी आप...
तात्कालिक ज्ञानी-विज्ञानी...आगम-निगम गणित ज्ञान...
पृथ्वी तल पर...(1)...

विविध विधाओं के हो ज्ञाता...धर्म-दर्शन और विज्ञान...
जैन-हिन्दू-बौद्ध दर्शन...ईसाई व इस्लाम का ज्ञान...
पारसी-यहूदी-सुकरात...ग्रीक दर्शन मनोविज्ञान...
लाओत्से व कन्फ्यूशियस...पौर्वात्य-पाश्चात्य का ज्ञान...
पृथ्वी तल पर...(2)...

अध्ययन व अध्यापन से...विश्व में उपलब्धि छाय...
गद्य-पद्यमय ग्रंथ सृजन...दो सौ पचास से अधिक बनाय...
दिक्-श्वेताम्बर हिन्दू शिष्य...तव साहित्य पे शोध कराय...
पीएच.डी., एम.फिल., डी.लिट्...यू.जी.सी. (से) मान्यता प्राप्त...
पृथ्वी तल पर...(3)...

प्रायः (20) बीस भाषा व्याकरण...तर्क न्याय आयुर्वेद ज्ञान...
पुराण इतिहास कथा साहित्य...राजनीति कानून संविधान...
स्वप्न-शकुन-सामुद्रिक शास्त्र...मंत्र-ज्योतिष-समाज ज्ञान...
डिस्कवरी नेशनल ज्याग्रफी...हिस्ट्री चैनल से लाभ है पाय...
पृथ्वी तल पर...(4)...

समन्वयकारी प्रगतिशील...वाद-विवाद निवारक आप...
आनंददायी शांतिदायक...तनाव संक्लेश दूर भगाय...
आध्यात्मिक विश्वविद्यालय...ज्ञानी-गुणी शिष्य बनाय...
आत्मविशुद्धि कारक शिक्षा...जन-गण-मन हर्षित हो जाय...
पृथ्वी तल पर...(5)...

आपके आद्य गुरु सूरीवर...विमल सिन्धु वात्सल्य दातार...
दीक्षा गुरु कुन्थुसागर...मोक्षमार्ग के है दातार...

गुणानुमोदक भरतसागर जी...शंका निवारक ज्ञान दातार...
देशभूषण आचार्य गुरुवर...सिद्धांत चक्री हैं दातार...
पृथ्वी तल पर...(6)...

विद्यानंद आचार्य गुरुवर...ज्ञानदाता शंका निवार...
सूरी अभिनंदन सागरजी...आचार्य पद संस्कार दातार...
विजयमती आर्यिका बनी...आपकी प्रमुख शिक्षा दातार...
इन सब गुरु वृन्दों की कृपा...महिमा 'सुविज्ञ' जन कह न पाय...
पृथ्वी तल पर...(7)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 16.03.2016, रात्रि प्रायः 10.00

मम शिक्षा-दीक्षा दाता आचार्य कुंथु सिंधु

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आधा है चन्द्रमा.....)
करता हूँ वंदना कुंथु सिन्धु...
महावीर कीर्ति शिष्य दया सिंधु...करता हूँ वंदना...(ध्रुव)...

बाल ब्रह्म दिगम्बर वेशधारी...मम शिक्षा-दीक्षा दाता गुणकारी...
अनेक साधुओं के आप दीक्षा गुरु...मम उपाध्याय पदवी दाता गुरु...
संघ अध्यापन काम आप मुझे दिया...अनुशासन/(व संचालन) का काम मुझे दिया...
करता हूँ...(1)...

'सिद्धांतचक्री' पदवीं मुझे दिया...देशभूषण सूरी ने आशीष दिया...
'विश्व धर्म प्रभाकर' पद दिया...'ज्ञान-विज्ञान दिवाकर' (पद) दिया...
वात्सल्यपूर्वक आचार्य पद दिया...मेरी इच्छा बिना सभी पदवी दिया...
करता हूँ...(2)...

शांत सरल मूर्ति मम गुरुवर...बहु मुनियों के सूरी पद दातार...
अनेक ग्रंथों के आप रचनाकार...गद्य-पद्य में तव रचना प्रचुर...
सूरी विमलसागर ने (मुझे 1981-1989) आदेश दिया...ग्रंथ लिखने हेतु बहुबार कहा...
करता हूँ...(3)...

आपश्री व आचार्य भरत गुरु...प्रोत्साहन दिया करो ग्रंथ शुरू...
क्षुल्लक (आचार्य) सन्मतिसागर ज्ञानानंद...ग्रंथ लेखन हेतु किया अनुरोध...
जिससे ग्रंथ लेखन किया (मैं) प्रारंभ...उन्नीस सौ ब्यासी (1982) से लेखन शुभारंभ...
करता हूँ...(4)...

आप सभी के महान् उपकार...देश-विदेशों में (मेरे) ग्रंथ प्रचार...
तव आशीष से ये सभी हो रहा...अकिञ्चित्कर सबमें 'कनक' रहा...
आपका विधान लिखा ''आस्थाश्री'' ने...कुंथु सिंधु का बहुमान किया इसी में...
करता हूँ...(5)...

मम त्रिकाल नमोऽस्तु गुरुदेव को...
शुभाशीष सदा आस्थाश्री को...

''आचार्य कनकनन्दी''
ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 09.03.2016, रात्रि 8.27

आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव की अगवानी (स्वागत)

रचयित्री-विजयलक्ष्मी सं.आ. सुवत्सलमती

(चाल : हजारों फूल बरसाओं.....)
हजारों दीप जलाओं मेरे गुरुदेव आये हैं2
आँगन में फूल सजाओ मेरे गुरुदेव आये हैं2

पूजन की थाल सजाओ, अष्ट द्रव्यों से करो पूजन।
दूग्धादि से चरण पखारो, कमल गुलाब से करो पूजन।
ज्ञान का दीप जलाओ, मेरे गुरुदेव आये हैं।। (1)

सभी पंथ मतों को अनेकांत से मिलाते।
सभी भ्रमों को मिटाने स्याद्वाद कथन करते।
गुणग्राही बने हम, मेरे गुरुदेव आये हैं।। (2)

सत्यवादी हैं गुरुवर, हित-मित-प्रिय सत्य बोले।
वात्सल्यमयी है गुरुवर, ईर्ष्या-घृणा से दूर रहते।
अहिंसा के पुजारी हैं ईर्या-पथ चल के आये हैं।। (3)

नग्न मुद्रा है जिनकी, अपरिग्रहधारी।
प्राणी मात्र का उद्धार चाहे, अन्त्योदय भाव भारी।
शुभोपयोग में ही रहे मेरे गुरुदेव आये है।। (4)

आत्मानुभवी गुरुवर, मैं का भी बोध कराते।
आत्मध्यान में रत रहते, समता भाव धरे है।
दीपोत्सव मनाओ, मेरे गुरुदेव आये है।। (5)

नन्दौड़ चातुर्मास में

''आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव के भाव-व्यवहार से उनकी आध्यात्मिकता झलकती है''

रचयित्री-विजयलक्ष्मी गोदावत-स.आ. सुवत्सलमती

(चाल : तुम दिल की धड़कन/भातुकली.....)

हे गुरुवर तव मूरत...तीर्थेश प्रभु सम लगती है...
वीतरागी समदर्शी...शांतिदायक लगती है...(ध्रुवपद)

हे गुरुवर! तव दर्शन से, सारे प्रश्न सुलझ जाते।
व्यवहारिक उदाहरणों से, आगम हृदयंगम कराते हो।

भौतिकता से परे आध्यात्मिक बोध नित्य कराते हो।
गुरुवर के आशीष से, सब जीव सुख पाते है। (1)

आपकी छत्र-छाया में, भव रोग दूर होते है।
स्व दीप जलाकर के फिर, पर दीप जलाते हो।

आगम-दीप प्रकाश में, शिष्यों के दोष मिटाते हो।
तव सम अध्यापक परमेष्ठी, नहीं दूजा इस भू पर है। (2)

तीर्थंकर आदि को न समझ सके, आपको कैसे समझेंगे?
आंतरिक विशुद्धि से ओत-प्रोत हो, चर्म-चक्षु से क्या देखेंगे?

समवशरण सम स्वाध्याय (कक्षा) में (तव) आगम वाणी सुनते नहीं थकते।
गुरु उपदेश रूपी अजस्र धारा, सतत यूँ ही बहती रहे। (3)

आपकी स्वाध्याय कक्षा में, सांसारिक दुःख भूलते हैं।
सुखी जीवन कैसे जिये, इसकी कला सिखाते हैं।
प्रतिक्षण आत्म चिन्तन में, वीतरागता दिखती है।
ऐसे आध्यात्म प्रेमी गुरु को, मेरा शत-शत वंदन है। (4)

कनकनन्दी गुरु गुणमाल

-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : आल्हा.....)

कनकनन्दी गुरु ज्ञानी-ध्यानी...इनकी महिमा कही न जाय...
अनुभव में न कोई इनका सानी...इनका यश फैला जग माही...कनकनन्दी...(1)

कीरत सुन पास आवे भविजन...प्रसन्न होवे पाकर ज्ञान...
भक्ति-भाव से जस को गावे...चरण कमल में शीश नवाये...कनकनन्दी...(2)

ज्ञानी-विज्ञानी शरण में आवे...सूक्ष्म ज्ञान गंगा में नहाय...
विश्व रहस्य गुरु समझावे...देश-विदेश में करते प्रसार...कनकनन्दी...(3)

सरल सहज वात्सल्यमयी...गुरु की मूरत सब मन भाय...
एकांत प्रिय मौन छवि...स्व-आतम का करे नित ध्यान...कनकनन्दी...(4)

स्वाध्याय में आवे बहु नर-नारी...उनको अज्ञान भरम मिट जाए...
आबाल-वृद्ध सब गुण गावे...'सुवत्सल' के भाव जगाय...कनकनन्दी...(5)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 14.03.2016, प्रातः 8.00

आत्म विश्लेषणात्मक कविता

मेरा भाव व उसका फल

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., कसमें-वादे....., हाँ तुम बिल्कुल ऐसे हो.....)

कितना प्यारा भाव है मेरा...सत्य-समता-शांति वाला...
आध्यात्मिकता युत वाला...अनेकांत-उदार वाला...(स्थायी)...
आत्मविशुद्धि युक्त वाला...आत्मविश्वास सह अनुभव वाला...

सनम्र सत्यग्राही प्रगति वाला...कट्टर संकीर्णता रिक्त वाला...
स्व-पर-विश्व कल्याण युक्त...भेद-भाव व पक्षपात रहित...
अंधविश्वास रूढ़ि रहित...धर्म-दर्शन-विज्ञान सहित...(1)...
ईर्ष्या तृष्णा घृणा रहित...निन्दा चुगली अपमान रिक्त...
अहंकार-ममकार वर्चस्व रिक्त...ध्यान-अध्ययन-अनुभव युक्त...
अतः मेरी प्रज्ञा बढ़ रही है...ज्ञात-अज्ञात को भी जान रही है...
अन्य के हेतु जो दुरुह होता...मेरे लिए सरल-सुलभ होता...(2)...
अंतःप्रज्ञा से जो होता मुझे ज्ञात...अन्य हेतु जो होता अज्ञात...
मेरा अनुभव/(अनुमान, कल्पना) होता है सत्य...विज्ञान या घटना में होता सत्य...
स्वप्न-शकुन-अंगस्फुरण से...भविष्य ज्ञान होता अनुभव से...
हर विषय का होता पूर्वानुमान...व्यक्ति से लेकर धर्म-विज्ञान...(3)...
शांति-संतुष्टि-अनुभूति बढ़ती...भक्त-शिष्यों में जागृति आती...
देश-विदेशों में प्रभावना होती...मेरी निस्पृहता-समता बढ़ती...
मेरे भाव प्रति मेरा विश्वास बढ़ता...भाव विशुद्धि हेतु साधना करता...
आत्म विश्लेषण हेतु बनी ये कविता...'कनकनन्दी' उत्तम भाव ही भाता...(4)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 18.03.2016, मध्याह्न 3.05

(यह कविता ''अलौकिक शक्ति के चमत्कार'' डॉ. जोसेफ मर्फी से भी प्रेरित है।)

मेरी भावना

मैं व सभी जीव समतामय धर्म को पाने/पा ले

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा....., आत्म शक्ति....., तुम दिल की.....)

परम समतामय धर्म चाहता हूँ, राग-द्वेष-मोह व घृणा त्यागता हूँ।
इसी से विपरीत (धर्म) नहीं चाहता हूँ, नवकोटि से मैं त्याग चाहता हूँ।।

राग-द्वेष-मोह व घृणा से युक्त, अधिकांश जन सेवते हैं धर्म।
उसे भी मैं नवकोटि से त्यागता हूँ, अधर्म/(कुधर्म) सभी त्यागे यह चाहता हूँ।। (1)

ख्याति पूजा लाभ व वर्चस्व हेतु, घृणा भेद-भाव फैलाने हेतु।

अन्य को नीचा करना व शोषण हेतु, धर्म का ढोंग करते प्रपंच हेतु।।

इसी हेतु निन्दा चुगली अपमान करते, आक्रमण युद्ध व विध्वंस करते।
हत्या बलात्कार व शासन करते, धर्म के नाम पर अधर्म करते।। (2)

भद्र मिथ्यादृष्टि (कुधर्मी) से भी अधर्मी होते, महान् पाप का बंध करते।
भद्र मिथ्यादृष्टि भी स्वर्ग में जाते, उक्त धर्मांध जन तो नरक जाते।।

धर्म तो सत्य व समतामय, वात्सल्य क्षमा व उदारतामय।
सरल-सहज व पावनमय, शांति-सहिष्णुता अहिंसामय।। (3)

भावना भाता हूँ (मैं) पावन भाव से, हर जीव समतामय धर्म पाले भाव से।
संतोष-शांत व पावन बने, 'कनक' समतामय धर्म पूर्णतः पावे।। (4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 18.03.2016, रात्रि 8.20

(धर्म के नाम पर हो रही विषमता से, दुःख से द्रवित होकर यह कविता बनी।)

मेरी शक्ति की आराधना व आवश्यकता

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जिस देश में तू.....हर वेश में तू.....)

उस शक्ति को मैं पाना चाहता हूँ...जिस शक्ति से (मैं) स्वयं को पाऊँ...
द्रव्य-भाव-नोकर्म को नाश कर...शुद्ध-बुद्ध-अमृत मैं बनूँ...(ध्रुव)...

मेरे अंदर ही है अनंत शक्ति...राग-द्वेष-मोह से हुई क्षीण...
मैं राग-द्वेष-मोह को नाश कर...पाऊँ अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्य...

राग-द्वेष-मोह नाश करने हेतु...चाहिए समता-संयम-धैर्य गुण...
क्षमा मार्दव आर्जव शौच तप...सहिष्णु उदारता निस्पृहता गुण...(1)...

ख्याति पूजा लाभ व प्रसिद्धि त्याग...अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा त्याग...
तेरा-मेरा भेद-भाव व पक्षपात...हठग्राह-दुराग्रह-संकीर्ण त्याग...

दुरुपयोग शक्ति का नहीं करूँ...अहंकार वर्चस्व हेतु न करूँ...
धन-जन-धर्म हेतु भी न करूँ...स्व-पर हित हेतु सदुपयोग करूँ...(2)...

स्वच्छ एकांतवास व मौन-ध्यान...अध्ययन-मनन व आत्मशोधन...
शोध-बोध-अनुभव-आचरण...आत्मविश्वास-ज्ञान व आत्मलीन...

इसी हेतु तन-मन को स्वस्थ रखूँ...आहार-विहार-योगासन करूँ...
द्रव्य क्षेत्र काल भाव निमित्त चाहूँ...'कनक' (नन्दी) का लक्ष्य स्व-वीर्य पाऊँ...(3)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 21.03.2016, रात्रि 8.42

मैं स्वयं को छोटा विद्यार्थी क्यों मानता हूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

अनुभव में मुझे आता है, मैं हूँ विद्यार्थी छोटा।
अभी तक मैं न जान पाया हूँ, मेरी ही पूर्ण ईयत्ता।। (ध्रुव)

अनंतानंत ईयत्ता वाला, मेरा स्वरूप को न जान पाया।
आत्मस्वरूप को मैं क्या जान पाऊँ, तन-मन को भी न पूर्ण जाना।

तन-मन (द्रव्यमन) में भी अनंत परमाणु, एक परमाणु को न जान पाया।
अनंतानंत परमाणु है विश्व में, उन्हें भी मैं कैसे जान पाया।। (1)

आकाश-काल धर्म-अधर्म में, होते अनंत गुण पर्याय।
इन सबको मुझे जानने हेतु, मुझे पाना है ज्ञान अनंत।

मेरे समान ही अनंत जीव, होते हैं इस लोक में।
कर्म सहित संसारी जीव व, कर्म से रहित सिद्ध जीव भी।। (2)

सभी को जब मैं पूर्ण रूप से, जानूँगा तब बनूँगा सर्वज्ञ।
तब ही मैं बनूँगा सभी, विद्या के (मैं) पूर्ण मास्टर (M.A.)।

इसी हेतु ही मैं सतत, स्वाध्याय कर रहा हूँ भाव से।
शोध-बोध भी कर रहा हूँ, राग-द्वेष-मोह त्याग से।। (4)

इसी हेतु ही त्याग रहा हूँ, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि।
लंद-फंद व द्वंद त्याग कर, एकांत-मौन में प्रवृत्ति।

देश-विदेशों के साहित्य सहित, विदेशी वैज्ञानिक चैनल।
पशु-पक्षी कीट-पतंग सहित, पढ़ता हूँ सभी से अविरल।। (5)

सर्वज्ञ कथित गणधर गुंथित, आचार्य द्वारा प्रतिपादित।

माँ जिनवाणी से हो रहा हूँ, सबसे अधिक शिक्षित।
मेरे अंदर ही है अनंत ज्ञान, उसे प्राप्त कर बनूँगा सर्वज्ञ।
सर्वज्ञ बनने तक 'कनक', बनना चाहता (है) विनेय/(छात्र)।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 22.03.2016, अपराह्न 5.50

(यह कविता श्रमण मुनि सुविज्ञसागर ने प्रवचन में मेरे बारे में (आ. कनकनन्दी) कहा कि आचार्यश्री पृथ्वी में ज्ञान के शिखर पुरुष (जीनियस) हैं, इससे शिक्षा लेकर यह कविता बनी।)

मेरा लक्ष्य निर्बन्ध व सीमातीत

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

बंधन रहित मैं होना चाहता हूँ सीमा से अतीत मैं होना चाहता हूँ।
मेरी इयत्ता है अक्षय अनन्त, शुद्ध-बुद्ध निर्बन्ध व ज्ञानानन्द।।

तन-मन-इन्द्रिय बन्ध व सीमा से, परे होना चाहता हूँ राग द्वेष मोह से।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा व द्रव्य-भाव कर्म से, परे होना चाहता हूँ तेरा मेरा भाव से।।

राष्ट्र भाषा जाति पंथ-मत सीमा से, परे होना चाहता हूँ मानव सीमा से।
कानून-संविधान-राजनीति सीमा से, परे होना चाहता हूँ सामाजिक बंध से।।

संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा परे।
ख्याति पूजा लाभ व प्रसिद्धि परे, लन्द-फन्द-द्वन्द्व व विवाद परे।।

संकीर्ण कट्टर रूढ़ि परम्परा परे, तर्क-वितर्क व कल्पना से परे।
निराबाध निर्मल व निष्कलंकमय, होना चाहता हूँ मैं चिदानन्दमय।।

आकाश से भी अनन्त अणु से भी सूक्ष्म, बहिरंग शक्तियों से भी अपराभूत।
स्वयंभू स्वयंपूर्ण सत्य-शिव सुन्दर 'कनक' का लक्ष्य चैतन्यचमत्कार।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 08.03.2016, रात्रि 1.35 से 2.08

(यह कविता मणिभद्र की जिज्ञासा से बनी।)

परम सत्य को जानने की मेरी साधना

(ज्ञानार्जन की मेरी साधना)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

परम सत्य को मैं जानना चाहता हूँ, इसी हेतु विविध (मैं) साधना करता हूँ।
शब्दार्थ भाषा नय निक्षेप प्रमाण, अनेकांत स्याद्वाद से (लेकर) अनुभव ज्ञान।। (1)

श्लोक- शब्दात्पद प्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थ निर्णयो भवति।
अर्थातत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः भवति।। (धवला पु. 1 पृ. 10)

हिन्दी- शब्द से पद की होती है प्रसिद्धि, पद की सिद्धि से होती अर्थ की सिद्धि।
अर्थ से होता है तत्त्व का ज्ञान, तत्त्व ज्ञान से होता परम कल्याण।। (2)

शब्दज्ञान है अति ही प्राथमिक उपाय, शब्दज्ञान से परे पद ज्ञान का स्थान।
पदज्ञान से परे करता हूँ अर्थज्ञान, अर्थज्ञान से आगे करता हूँ तत्त्व का ज्ञान।। (3)

शब्दज्ञान के बिना पदज्ञान न होता, पदज्ञान बिन अर्थज्ञान भी न होता।
अर्थज्ञान बिना तत्त्वज्ञान न होता, अर्थज्ञान बिन परम/(आत्म) कल्याण न होता।। (4)

व्यवहार निश्चय व आध्यात्म नय से, नाम-स्थापना व द्रव्य भाव निक्षेप से।
परोक्ष-प्रत्यक्ष रूपी विविध प्रमाण/(ज्ञान) से, ज्ञान करता (हूँ) अनेकांत स्याद्वाद अनुभव से।। (5)

इसी हेतु विविध विषयों का करता (हूँ) ज्ञान, भाषा-व्याकरण व भाषा-विज्ञान।
दर्शन-तर्क व साहित्य ज्ञान-विज्ञान, देश-विदेशों के विविध-विधा के ज्ञान।। (6)

करता हूँ परीक्षण-निरीक्षण-मीमांसा, तुलनात्मक ज्ञान-समन्वय समीक्षा।
गुण-दोष हानि-लाभ, ग्राह्य-अग्राह्य, ज्ञान-ज्ञेय-उपेक्षा-निरपेक्ष साम्य।। (7)

प्रयोग-विविध से मैं करता हूँ निर्णय, जिससे पाता हूँ मैं अनुभव ज्ञान।
अनुभव से अनुभव को बढ़ाता जाता हूँ, कल्पना व प्रज्ञा से सीखता जाता हूँ।। (8)

हर जीव व कार्य से सीखता जाता हूँ, साहित्य लेख व कविता में भी लिखता हूँ।
अध्ययन-अध्यापन व ध्यान करता हूँ, सर्वज्ञ बनने तक 'कनक' सीखना चाहता हूँ।। (9)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 25.02.2016, रात्रि 8.38

(यह कविता प्रवचनसार के स्वाध्याय के श्रोताओं से प्रभावित होकर बनी।)

ज्ञानानंद-समता रस मैं पाऊँ/पान करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : पायो जी मैंने राम रतन धन पायो.....)

पायो/(पीयो) जी मैंने ज्ञानानंद रस/(समता रसायन, आत्मानंद रस) पायो/(पीयो)ऽऽ..
जिससे परे न और कोई रस/(सुख)ऽऽऽ मैं अनुभव से पायोऽऽऽ पायोजी...(स्थायी)...

जिसे पाने हेतु चक्रवर्ती भीऽऽऽ षट्खण्ड वैभव त्यागोऽऽऽ
तीर्थंकर मुनि मौन में रहकरऽऽऽ सतत निजातम ध्यायोऽऽऽ
/(ख्याति-पूजा-लाभ त्यागोऽऽऽ) पायो...(1)...

आत्मा में ही मेरे अनंत वैभवऽऽऽ ज्ञान दर्शन सुख वीर्यऽऽऽ
अनंत शांति-तृप्ति भी मुझमेंऽऽऽ साधन-साध्य भी मुझमेंऽऽऽ
/(मोक्षमार्ग-मोक्ष भी मुझमेंऽऽऽ) पायो...(2)...

यथा तड़पती पीड़ा से मछलीऽऽऽ जल से होकर पृथक्ऽऽऽ
भले उसे रखो स्वर्ण-फर्श मेंऽऽऽ तथापि न मिले कुछ सुखऽऽऽ
/(ज्ञानानंद परे मिले (मुझे) दुःखऽऽऽ)/(समता रस परे दुःखऽऽऽ) पायो...(3)...

राग द्वेष मोह काम क्रोध मदऽऽऽ ईर्ष्या-तृष्णा-वैर-विरोधऽऽऽ
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि चाहऽऽऽ भोग-आकांक्षा निदानऽऽऽ
/(सभी हैं अनात्म स्वभावऽऽऽ)/(इनसे न मिले आत्म-वैभवऽऽऽ)
(अतः ये सर्व दुःख भावऽऽऽ) पायो...(4)...

पर निन्दा अपमान तेरा मेरा भावऽऽऽ संकल्प-विकल्प-संक्लेशऽऽऽ
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा भावऽऽऽ दबाव-प्रलोभन-तनावऽऽऽ
/(सभी हैं विकार स्वरूपऽऽऽ)/(समता रस/(ज्ञानानंद) के विनाशकऽऽऽ) पायो...(5)...

विज्ञापन पत्रिका टी.वी. प्रसारणऽऽऽ माईक मञ्च पण्डाल निमंत्रणऽऽऽ
गाजा बाजा साज सज्जाऽऽऽ भीड़ जयकार (आरती) पूजाऽऽऽ
/(मद से रहूँ मैं दूजाऽऽऽ)/(स्वात्मा की करूँ मैं पूजाऽऽऽ)
/(शांति रस पान करूँ सदा) पायो...(6)...

एकांत शांत प्रदूषण मुक्तऽऽऽ ग्राम-जंगल-शहर निवासऽऽऽ
ध्यान-अध्ययन-मौन युक्तऽऽऽ आत्म रमण करूँ सततऽऽऽ

/(मुझमें निवास (करूँ) सततऽऽऽ) पायो...(7)...

अनात्म सर्व विकार त्यागकरऽऽऽ स्व-शुद्धात्मा ही मैं ध्याऊँऽऽऽ
अध्ययन-मनन-कथन करूँऽऽऽ 'कनक' स्व-आतम पाऊँ/(वरूँ)ऽऽऽ
/('कनक' सच्चिदानंद बनूँऽऽऽ)/(शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनूँऽऽऽ) पायो...(8)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 29.01.2015, प्रातः 7.20

मेरी (आ. कनकनन्दी की) स्वाध्याय-ज्ञानार्जन की पद्धति-अध्ययन-अध्यापन-ग्रंथ लेखन आदि

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जय हनुमान.....)

सर्वज्ञ प्रणीत आगम द्वारा...अनेकांत (सिद्धांत) अलौकिक गणित द्वारा...
कर्म-सिद्धांत-विश्व व्यवस्था...सत्य/(तथ्य) ज्ञान करता हूँ षट् द्रव्य द्वारा...

अध्ययन-मनन-चिंतन द्वारा...एकाग्र मन-आत्म विशुद्धि द्वारा...
सनम्र सत्यग्राही उदार भाव से...परिज्ञान करूँ आत्म विश्लेषण से...(1)...

ज्ञान व ज्ञानी प्रति विनय द्वारा...आदर-सत्कार-बहुमान द्वारा...
पूजा संकीर्तन सन्मान द्वारा...उनका अपमान निरसन द्वारा...

जिज्ञासा करूँ मैं जानने हेतु...अध्यापन करूँ ज्ञान प्राप्ति/(दान) हेतु...
समीक्षा-समन्वय सर्वत्र करूँ...अज्ञान त्रुटियों को दूर भी करूँ...(2)...

देश-विदेशों के प्राचीन-अर्वाचीन...धर्म-दर्शन-गणित-विज्ञान...
इतिहास-पुराण-कानून-संविधान...भाषा-आयुर्वेद व मनोविज्ञान...

परीक्षण-निरीक्षण सर्वत्र करता...गुण-दोषों का परिज्ञान करता...
शोध-बोध व प्रयोग द्वारा...गुण ग्रहण व दोष परिहार करता...(3)...

विमलसागर गुरु कुंथुसागर...भरतसागर सूरी सन्मतिसागर...
इनके आदेश-आवश्यकतानुसार...अनेक शिष्य-भक्तों के आग्रहानुसार...

धर्म प्रभावना-प्रचार-प्रसार हेतु...एकाग्र मन-धर्मध्यान के हेतु...
शुभ उपयोग कर्मनिर्जरा हेतु...ज्ञानावरणीय कर्म क्षयोपशम हेतु...(4)...

ग्रंथ व लेख लिख रहा हूँ पूर्व से...क्षुल्लक अवस्था उन्नीस सौ अस्सी (1980) से...
दो हजार दश (2010) से सीपुर क्षेत्र से...काव्य रचना हो रही अविरल से...

ज्ञानदानी शिष्य-भक्त देश-विदेशों के...प्रकाशित कर रहे स्वेच्छा-भक्ति से...
अनेक भाषा में अनेक संस्करण छपते...देश-विदेशों में साहित्य भी जाते...(5)...

इसी से मेरे ज्ञान-ध्यान बढ़ रहे हैं...अनुभव शुभ भाव बढ़ रहे हैं...
मौन-एकांतवास भी बढ़ रहे है...निस्पृह-निराडम्बर बढ़ रहे है...

लाभान्वित हो रहे ज्ञानदानी भक्त...सहयोग कर्त्ता शिष्य व भक्त...
अध्ययन-अध्यापन करने वाले...शोधार्थी-विद्यार्थी प्रोफेसर्स वाले...(6)...

अतः साहित्य लेखन कर रहा हूँ...स्वाध्याय तप उत्कृष्ट कर रहा हूँ...
अयोग्य भाव-व्यवहार से बच रहा हूँ...स्व-अध्ययन हेतु 'कनक' कर रहा हूँ...(7)...

(मैं साहित्य लेखन क्यों कर रहा हूँ-ऐसी जिज्ञासा (प्रश्न-शंका-गलत भाव-व्यवहार-कथन) के समाधान हेतु यह कविता बनी।)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 25.01.2016, रात्रि 8.16

मेरी शक्तियों का सम्वर्द्धन चाहता हूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा....., आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

मेरी शक्तियों का मैं सम्वर्द्धन चाहता हूँ...(क्षमताओं, योग्यताओं, उपलब्धियों)
अनन्त अक्षय तक पूर्ण चाहता हूँ...
दुरुपयोग शक्तियों का नहीं चाहता हूँ...उपयोग यथायोग्य करना चाहता हूँ...मेरी...(1)

मुझमें हैं अनंत अक्षय शक्तियाँ...अभी तो प्रगट हैं स्वल्प ही शक्तियाँ...
उपलब्ध शक्तियों से मुझे नहीं है घमण्ड...प्राप्त शक्तियाँ तो सभी क्षायोपशमिक...

क्षायोपशमिक (शक्ति) परे मुझे चाहिए क्षायिक...अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य अक्षय...
शुद्ध-बुद्ध व शाश्वत आत्म स्वभाव...निर्मल निराबाध निर्बंध स्वभाव...(2)...

इसी हेतु ही मैं ध्यान-अध्ययनरत...समता शांति व निस्पृहता सहित...
ख्याति पूजा लाभ व द्वंद्व रहित...राग द्वेष मोह काम मद रहित...

अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा रहित...ईर्ष्या तृष्णा घृणा प्रतिस्पर्द्धा रहित...

निस्पृह निराडम्बर व ढोंग रहित...सरल-सहज व संतोष युक्त...(3)...

दुरुपयोग से शक्तियाँ होती हैं क्षीण...पापबंध से होता है आत्म पतन/(आत्म मलिन)...
अनावश्यक प्रयोग भी न करूँ शक्तियों का...दिखावा-ढोंग दुरुपयोग नहीं किसी का...

मुझे तो स्व हेतु ही शक्तियाँ बढ़ाना है...आत्महित सह विश्वहित करना है...
मेरी शक्तियों को मुझे पूर्ण पाना है...'कनकनन्दी' को स्वयं में पूर्ण होना है...(4)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 26.02.2016, प्रातः 7.10
(यह कविता प्रवचनसार के स्वाध्याय के श्रोताओं से प्रभावित होकर बनी।)

आत्म-संबोधन

स्व-पात्रता से मिलती उपलब्धियाँ

(स्व-कमियों के दूर से संभावनाएँ पूर्ण करूँ!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)
आत्मा रे!ऽऽ तू काहे विकल्प/(संक्लेश) करेऽऽऽ
तेरे अंदरऽऽ अनंत शक्ति/(संभावना)ऽऽ बीज रूप में भरे!ऽऽऽ आत्मा रे!...(ध्रुव)...

अंकुर यथा..बनता है वृक्षऽऽऽ तुष को पार करऽऽऽ
तथाहि तू स्व-कमियों को पार करऽऽऽ हो स्वयं संपूर्णऽऽऽ
कमियों को दूर करोऽऽऽ/(पूर्णता को प्राप्त करोऽऽ)...आत्मा रे!...(1)...

चुंबक यथा स्व-शक्ति सेऽऽऽ लोहा को आकर्षित करेऽऽऽ
अधिक शक्ति से अधिक करेऽऽऽ ऐसा ही तू भी करोऽऽऽ
स्व-शक्ति सम्वर्द्धन करऽऽऽ/(दुर्बलता दूर करोऽऽ)...आत्मा रे!...(2)...

दीपक यथा प्रकाशित होकरऽऽऽ तम को दूर करेऽऽऽ
अन्य दीपकों को भी प्रज्ज्वलित करेऽऽऽ तथाहि तू भी करोऽऽऽ
स्व-प्रकाशी बने रे!/(हे)ऽऽऽ/(स्व-पर प्रकाश करोऽऽ)...आत्मा रे!...(3)...

तेरी संभावनाएँ पूर्ण तब होगीऽऽऽ जब तू योग्य बनोगेऽऽऽ
तेरी योग्यता से संभावनाएँऽऽऽ प्रगट भी तत्काल होंगेऽऽऽ
सर्वज्ञ घातिनाश समऽऽऽ/(कर्मक्षय से सिद्ध समऽऽ)...आत्मा रे!...(4)...

सत्य-समता-शांति तत्काल पाओगेऽऽऽ तद्योग्य जब तू होंगेऽऽऽ

आदर सत्कार पूजा योग्य तू बनोऽऽऽ तेरे लिए सहज ये होंगेऽऽऽ
पात्र तू स्वयं ही बनोऽऽऽ/(संकल्प-विकल्प/(संक्लेश) त्यजोऽऽ...आत्मा रे!...(5)...
तुझे कोई भी कुछ नहीं देंगेऽऽऽ स्व-योग्यता से ही मिलेंगेऽऽऽ
चक्रवर्ती पद भीख से न मिलेऽऽऽ स्व-पुण्य/(योग्यता) से सहज मिलेऽऽऽ
स्वयं को योग्य बनाओऽऽऽ/(अयोग्यता दूर करोऽऽ)...आत्मा रे!...(6)...
तीर्थंकर पद महान् उपलब्धिऽऽऽ मिले स्व-भाग्य/(पुण्य)/(पुरुषार्थ) सेऽऽऽ
महान् उपलब्धियों को पाना तेरा (भी)ऽऽऽ स्वभावगत अधिकारऽऽऽ
'कनक' स्वभाव वर रेऽऽऽ/(शुद्ध-बुद्ध आनंद भरपूरऽऽ)...
...आत्मा रे! तू काहे विकल्प करेऽऽऽ...(7)...

चिदानन्द रूपं सिद्धोऽहं-शुद्धोऽहं-बुद्धोऽहं

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे! तू स्वयं को सही समझोऽऽऽ
तन मन इन्द्रिय न तेरा रूपऽऽऽ तू तो सिद्ध स्वरूप/(चिन्मय रूप)ऽऽऽ...(ध्रुवपद)...
तन मन इन्द्रिय तो जड़ रूपऽऽऽ कर्म पुद्गल जनितऽऽऽ
राग द्वेष मोह न तेरा रूपऽऽऽ ये तो विभाव रूपऽऽऽ
तू तो सच्चिदानंद रूपऽऽऽ जिया रे!...(1)...
नोकर्म से बने तन व इन्द्रियऽऽऽ मनोवर्गणा से बने मनऽऽऽ
राग द्वेष मोह तो भाव कर्म हैऽऽऽ मोहनीय कर्म है नामऽऽऽ
कर्मातीत तेरा रूपऽऽऽ जिया रे!...(2)...
तद्भव मरण से तन-मन-अक्षऽऽऽ हो जाते हैं तुझसे पृथक्ऽऽऽ
मोक्ष होने पर राग द्वेष मोहऽऽऽ हो जाते हैं तुझसे पृथक्ऽऽऽ
तू तो शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ जिया रे!...(3)...
कर्मजनित विभाव भाव सेऽऽऽ मिलते हैं अनंत दुःखऽऽऽ
जन्म जरा मरण रोग शोकऽऽऽ संयोग-वियोग-दुःखऽऽऽ
तू अजर अमर शाश्वतऽऽऽ जिया रे!...(4)...
स्व को जानो स्व को मानोऽऽऽ स्वयं का ही सतत ध्यानऽऽऽ

समता शांति आत्म विशुद्धि सेऽऽऽ स्वयं का ही करो वरणऽऽऽ
स्वयं में ही करो रमणऽऽऽ/(यह ही है परिनिर्वाण)ऽऽऽ जिया रे!...(5)...

यह ही है तेरा परम स्वरूपऽऽऽ यह ही है तेरा स्वधर्म/(सुधर्म)ऽऽऽ
यह ही है तेरा परम कर्म/(शरण)ऽऽऽ यह ही है तेरा स्वतीर्थऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-परमार्थऽऽऽ
सिद्धोऽहं...शुद्धोऽहं...बुद्धोऽहंऽऽऽ जिया रे!...(6)...

आत्म सम्बोधन-I

(मैं (स्वयं) के द्वारा मैं (स्वयं) को समझूँ किन्तु अन्य प्रति संक्लेश न करूँ!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्वयं को सही समझऽऽऽ
कौन क्या समझे...कौन क्या न समझेऽऽऽ इसका विकल्प त्यजऽऽऽ...(ध्रुव)...

सिद्धों को संसारी जीवऽऽऽ देख न पाते स्व-इन्द्रियों सेऽऽऽ
तथापि सिद्धों का अस्तित्वऽऽऽ न हो जाता अवास्तविकऽऽऽ
वे स्वयं में ही परिपूर्णऽऽऽ जिया रे...(1)...

अनादि काल से हर जीव मेंऽऽऽ अनंत कर्म आवृत्त हैंऽऽऽ
जिसके कारण हर जीव कीऽऽऽ होती अलग प्रवृत्ति हैऽऽऽ
यह शक्ति है कर्म कीऽऽऽ जिया रे...(2)...

सभी जीवों के भाव-व्यवहारऽऽऽ न होते एक समानऽऽऽ
हर जीव के भाव-व्यवहार भीऽऽऽ न होते सदा समानऽऽऽ
यह ही संसार स्वरूपऽऽऽ जिया रे...(3)...

अनंत जीव हैं अनंत भी कर्मऽऽऽ भाव भी होते तदनुकूलऽऽऽ
अनंत तीर्थंकरों से भीऽऽऽ हुआ न सभी का उद्धारऽऽऽ
स्व का करो उद्धार अतःऽऽऽ जिया रे...(4)...

स्व-उद्धार तू पहिले करोऽऽऽ अन्य प्रति करो मंगल कामनाऽऽऽ

किन्तु अन्य हेतु न करोऽऽऽ स्वयं की ही आत्म विराधनाऽऽऽ
स्वयं को पावन बना रेऽऽऽ जिया रे...(5)...

तू तो चेतन अमूर्तिकमयऽऽऽ सच्चिदानंद तेरा रूपऽऽऽ
तेरे स्वरूप को मोही न जानेऽऽऽ उन्हें क्या देना उपदेशऽऽऽ
मोही का लक्ष्य अनात्म रेऽऽऽ/(तेरा लक्ष्य अध्यात्म रेऽऽऽ) जिया रे...(6)...

मोही तो अनात्म सत्ता-संपत्तिऽऽऽ प्रसिद्धि को माने अपनाऽऽऽ
तन-मन-इन्द्रिय राग-द्वेष-मोह कोऽऽऽ नहीं जानता/(मानता) है अनात्माऽऽऽ
उन्हें क्या तू देगा उपदेशऽऽऽ/(वे क्या जाने/(माने) तेरा उद्देश्यऽऽऽ) जिया रे...(7)...

स्व-प्रकाशी बनो सूर्य समऽऽऽ स्वयं ही फैले प्रकाशऽऽऽ
अन्य से अप्रभावी बनो सूर्य समऽऽऽ मोह क्षोभ शून्य साम्यऽऽऽ
साम्य ही तेरा स्वभावऽऽऽ/('कनक' का निज स्वभावऽऽऽ) जिया रे...(8)...

आत्म सम्बोधन-II

(मेरी समता से यदि कोई स्वयं दुःखी-पापी हो तो मैं दोषी नहीं!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे! तू आत्म कल्याण करोऽऽऽ
समता-शांति-निस्पृहता सेऽऽऽ आत्म विशुद्धि करोऽऽऽ(ध्रुव)...

राग-द्वेष-मोह-काम त्यागकरऽऽऽ समता भाव धरोऽऽऽ
ख्याति-पूजा-लाभ-तृष्णा त्यागकरऽऽऽ निस्पृह भाव धरोऽऽऽ
शान्ति से विशुद्धि करोऽऽऽ जिया रे...(1)...

इसी से तेरा होगा आत्म कल्याणऽऽऽ यह निश्चय करोऽऽऽ
अन्य सभी लंद-फंद त्यागकरऽऽऽ एकांत-मौन धरोऽऽऽ
'अहं' का ध्यान करोऽऽऽ जिया रे...(2)...

संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागकरऽऽऽ निर्विकल्प साधना करोऽऽऽ
आकर्षण-विकर्षण-विभाव त्यागकरऽऽऽ विराग भाव धरोऽऽऽ
सरल-सहज बनोऽऽऽ जिया रे...(3)...

अन्य की चिन्ता व निन्दा त्यजकरऽऽऽ आत्मा का ध्यान करोऽऽऽ
कौन क्या माने-कौन क्या करे/(कहे)ऽऽऽ इस से परे चलोऽऽऽ
स्वयं में स्वयं को तोलोऽऽऽ जिया रे...(4)...

स्वयं का कर्त्ता-भोक्ता स्वयं तूऽऽऽ स्वयं का उद्धार करोऽऽऽ
अन्य के अयोग्य व्यवहार के कारणऽऽऽ तू न अयोग्य/(कुभावी) बनोऽऽऽ
'अहं' में ही 'अहं' को पा लोऽऽऽ जिया रे...(5)...

तथापि यदि कोई तुझे निमित्त करऽऽऽ बने पापी व दुःखीऽऽऽ
उससे न होगा तेरा आत्म पतनऽऽऽ नहीं होगा पाप बंधनऽऽऽ
आत्म विशुद्धि के कारणऽऽऽ जिया रे...(6)...

आध्यात्मसार यह कर्म सिद्धांतऽऽऽ यह अलौकिक रहस्यऽऽऽ
मोक्षमार्ग यह मोह क्षोभ रहितऽऽऽ परम सकारात्मक भाव/(सुनियोजित लापरवाह)ऽऽऽ
'कनक' का आत्म स्वभावऽऽऽ जिया रे...(7)...

आचार्य गुरुवर से प्राप्त लाभ

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)
जीवन मेरा चल रहा है...प्रसन्नता उल्लास पूर्वक।
क्योंकि मुझे मिल गए है...कनकनन्दी जैसे गुरुवर।।

विद्यालयों में हमें पढ़ाया जाता...उससे न होता हमारा उद्धार।
उससे हमें मिल सकता है...धन लक्ष्मी जीवन के लिए।

तुम चाहे कितनी लक्ष्मी कमा लो...उससे न मिलेगा तुमको सुख।
सुख के लिए तुम्हें करना पड़ेगा...कुछ उत्तम धार्मिक काम।। (1)

तुम क्या समझो, तुम क्या जानो...गुरुवर के पास कितना ज्ञान।
यहाँ आते हैं बहुत बड़े...ज्ञानी व वैज्ञानिक जन।

यहाँ मिलता है सद्ज्ञान...धर्म-दर्शन-विज्ञान का।
स्व-पर-विश्व हित हेतु...मिलता है संपूर्ण ज्ञान।। (2)

अभी के लोग धन कमाने हेतु...करते हैं प्रतिस्पर्द्धा।
इससे नहीं होता तुम्हारा...आत्म चिन्तन व आत्म सुधार।

प्रतिस्पर्द्धा से बढ़ता है...ईर्ष्या-द्वेष एवं घृणा।
इससे बढ़ रही है हिंसा...वर्तमान के युग में।। (3)

रचनाकार-सृजन जैन, कक्षा-VIII

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 31.03.2016, मध्याह्न प्रायः 12.00 से 1.00

आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव की शिक्षाएँ

रचयिता-कुमार सृजन जैन, कक्षा-VIII

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

गुरुवर आप जानते हो, जन्म-मरण मुक्ति ज्ञान।
आप रखते समता भाव, बाल-वृद्ध व युवा में।।

हम है अज्ञानी जन, आप दो हमें मुक्ति ज्ञान।
यह ज्ञान आप दे सकते हो, क्योंकि आप है ज्ञान भण्डार।।

आप न सिर्फ अध्ययन करते, धार्मिक ग्रंथों का।
आप अध्ययन करते भी, देश-विदेशों के साहित्य का।। (1)

हमें मोक्ष प्राप्त करने हेतु, निभाने होंगे श्रावक षट् गुण।
गुण निभाने हेतु करना, देव पूजा स्वाध्याय सेवा दान।।

इन गुणों को निभाने के बाद, हमें लेनी होगी मुनि दीक्षा।
साधु दीक्षा से ही खुलेंगे, मोक्ष महल के द्वार।। (2)

आत्मज्ञानी बनने के लिए, करना होगा हमें स्वाध्याय।
हमें करना होगा निरंतर, आत्म शोधन व सुधार।।

चाहे वहाँ आ जाए तूफान, फिर भी न करो मरण चिंता।
क्योंकि हम कर रहे हैं, जन्म-मरण मुक्ति की तपस्या।। (3)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 01.04.2016, मध्याह्न 2.00 से 3.30

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	विश्व कल्याणी माँ जिनवाणी	2
2.	पृथ्वी पर ज्ञान-विज्ञान की महाविभूति-श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव	2
3.	मम शिक्षा-दीक्षा दाता आचार्य कुंथु-सिंधु	4
4.	आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव की अगवानी (स्वागत)	5
5.	आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव के भाव व्यवहार से उनकी आध्यात्मिकता झलकती है	6
6.	कनकनन्दी गुरु गुणमाल.....श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती	7
7.	मेरा भाव व उसका फल	7
8.	मैं व सभी जीव समतामय धर्म को पाने/पा ले	8
9.	मेरी शक्ति की आराधना व आवश्यकता	9
10.	मैं स्वयं को छोटा विद्यार्थी क्यों मानता हूँ	10
11.	मेरा लक्ष्य निर्बन्ध व सीमातीत	11
12.	परम सत्य को जानने की मेरी साधना	12
13.	ज्ञानानंद-समता रस मैं पाऊँ/पान करूँ	13
14.	मेरी (आ. कनकनन्दी की) स्वाध्याय-ज्ञानार्जन की पद्धति-अध्ययन-अध्यापन ग्रंथ लेखन आदि	14
15.	मेरी शक्तियों का सम्वर्द्धन चाहता हूँ	15
16.	आत्म संबोधन.....स्व-पात्रता से मिलती उपलब्धियाँ	16
17.	चिदानंद रूपं सिद्धोऽहं-शुद्धोऽहं-बुद्धोऽहं	17
18.	आत्म सम्बोधन.....मैं (स्वयं) के द्वारा मैं (स्वयं) को समझूँ, किन्तु अन्य प्रति संक्लेश न करूँ	18
19.	आत्म सम्बोधन.....मेरी समता से यदि कोई स्वयं दुःखी-पापी हो तो मैं दोषी नहीं	19
20.	आ. गुरुवर से प्राप्त लाभ	20
21.	आ. कनकनन्दी जी गुरुदेव की शिक्षाएँ	21

जैन धर्म-रहस्य गीताञ्जली

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	साधुओं की सामूहिक परमात्मा प्रार्थना	26
2.	मेरी महान् उपकारी/मेरी महान् उपलब्धि	26
3.	चारों अनुयोग रूपी धारा के संगममय तीर्थ	27
4.	श्रमण ही निश्चय से रत्नत्रय-10 धर्म-9 देवता-जीवन्त धर्म	28
5.	भगवान् आदिनाथ बनाम शिक्षा-संस्कृति	29
6.	साधु-उपाध्याय-आचार्य भी आंशिका भगवान्	30
7.	आचार्यों के महान् गुणों की स्तुति	32
8.	स्वाध्याय व अध्यापन गुण युक्त उपाध्याय की स्तुति	33
9.	ज्ञानदाता-शिक्षागुरु उपाध्याय की विशेषता व पूजनीयता	34
10.	विभिन्न उपमा व विशेषणों से श्रमण की स्तुति	35
11.	आध्यात्मिक एक : मुझे मिल रहे लाभ अनेक	36
12.	रत्नत्रय ही है मेरा परम वैभव	37
13.	मेरे आध्यात्मिक अनुभव में दृढ़ता बढ़ने के कारण व परिणाम	38
14.	मेरा शुद्ध स्वरूप ही मेरा सद्धर्म-स्वधर्म	40
15.	मैं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या देखता हूँ	40
16.	सिद्ध भगवान् से मुझे प्राप्त परम सुख के सूत्र	41
17.	मैं हूँ मोक्षमार्ग एवं मोक्ष	42
18.	मेरी शुद्धात्म-अनुप्रेक्षा	43
19.	व्यक्त या शक्ति रूप से मैं हर जीव को भगवान् मानता हूँ	44
20.	मेरी भविष्यवाणी-जिनवाणी माँ की जुबानी	45
21.	दिव्य ध्वनि से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ	46
22.	जिया रे ! तेरा शुद्ध-स्वभाव ही तेरा स्वधर्म !	47
23.	आत्म-विश्वासी Vs बनाम घमण्डी (आध्यात्मिक व व्यवहार से)	51
24.	उत्तरोत्तर सही सुंदरता (सत्य-शिवं-सुंदरम्)	52
25.	गुण-गुणी पूजक बनो न कि.....?	53
26.	दान पूजादि के उद्देश्य	54
27.	जैन धर्मालंबियों की भावना	57
28.	विनय-अतिक्रम-व्यतिक्रम से भ्रष्ट चारित्र	63
29.	'है' ही वास्तविक 'नहीं' है सापेक्ष	69
30.	मैं सब कुछ मेरे (स्व) हित हेतु कर रहा हूँ	81

31.	अध्यात्म ही है परम स्वावलंबन-स्वाधीन-अनुशासन-स्वसुसमय स्वामी	92
32.	गुणाधिक्य या गुणसाम्य साधु की संगति विधेय साधुओं को	105
33.	निर्ग्रंथ-श्रमण योग्य करणीय-अकरणीय	111
34.	जैन श्रमण का त्याग होता है सांसारिक कुटुम्ब	112
35.	आत्मा ही मूल व समता ही मूलगुण	113
36.	लौकिक से परे व विपरीत भी है : आध्यात्मिक	115
37.	मानव भौतिक-आर्थिक-सामाजिक आदि से परे आध्यात्मिक भी है	117
38.	मुनिसंघ की अलौकिक-पावन होली	126
39.	अज्ञानी मोही-लोभी के विपरीत भाव-व्यवहार	127
40.	दान-दया सेवा-सहयोग से प्राप्त 10 लाभ : वैज्ञानिक दृष्टि से	128
41.	ज्ञानी देखता जीव के अनंत रूप	129
42.	आत्मोपलब्धि हेतु	130
43.	पशु-पक्षी-देव-नारकी-नर-नारी भी होते है 'जैन' (सम्यग्दृष्टि आदि)	130
44.	संकीर्ण व विपरीत ज्ञानी	131
45.	'झूठे धार्मिक' व सच्चे धार्मिक के लक्षण	132
46.	मोक्ष प्राप्ति 'अत्यंत सरल' व 'अत्यंत कठिन'	133
47.	जीव का परम विकासवाद	134
48.	आध्यात्मिक में (से) ही परम विकास	135
49.	निर्दोष सर्वज्ञ भगवान् ही जानते हैं परम सत्य	136
50.	स्वानुभव से ही शुद्धात्मा का यथार्थ कथन संभव	137
51.	संपूर्ण धर्म व अधर्म का स्वरूप	138
52.	कर्त्ता व भोक्ता स्वयं जीव	139
53.	सभी संसारी जीव कर्माधीन व मुक्त ही स्वाधीन	140
54.	यथार्थ ज्ञान-अज्ञान-निवृत्ति हित-प्राप्ति, अहित-परिहार	141
55.	भाव विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म	142
56.	देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से स्व-शुद्धात्मा का श्रद्धान है 'सम्यग्दर्शन'	144
57.	प्राथमिक धार्मिक-सम्यग्दृष्टि का स्वरूप	146
58.	लौकिक-आत्मविश्वास व आध्यात्मिक-आत्मविश्वास : स्वरूप व फल	147
59.	स्व-शुद्धात्म श्रद्धान से होता है धर्म का शुभारंभ	148
60.	सम्यक्त्व (परम सत्य श्रद्धान) का स्वरूप	149
61.	अज्ञानी-मोही व निर्मोही-वैरागी के 'मैं' व 'मेरा'	150
62.	स्व-अस्तित्व से सिद्ध होता है विश्व का अस्तित्व	151

63.	व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय मोक्षमार्ग	152
64.	आनंद जीव का प्रमुख गुण व उससे प्राप्त अनंत लाभ	153
65.	परमागम से स्व-शुद्धात्मा का वेदन-सम्यग्ज्ञान	154
66.	भगवान् का निश्चय स्वरूप व व्यवहार आदि रूप	155
67.	शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनना ही जीव का परम विकास	157
68.	विश्व के सभी जीवों की अवस्थाएँ व मोक्ष अवस्था	158
69.	धर्म व अध्यात्म में समानता व अंतर	159
70.	सकारात्मक-वर्णन धर्मग्रंथों में सर्वाधिक	160
71.	आगम ज्ञान व शुद्धात्मा भावना बिना मुक्ति नहीं	161
72.	निन्दा दोष एक : पाप अनेक	162
73.	परिग्रह : महापाप क्यों?	164
74.	शुभ व शुद्ध भाव के अचिंत्य फल	165
75.	सद्गुण स्मरण-कीर्तन व अनुकरण ही यथार्थ से प्रार्थना	165
76.	धर्म का सच्चा स्वरूप व विकृत रूप	166
77.	स्व-आत्मा का परम ज्ञान सबसे कठिन भी सरल भी	167
78.	मोहात्मक प्रेम त्याग से शुभ प्रेम से अध्यात्म प्रेम की प्राप्ति	168
79.	भाव विशुद्धि ही परमो धर्म	169
80.	अल्प पापबंध कारक शुभ काम भी कारणीय	170
81.	रागी द्वेषी मोही के भाव व्यवहार तथा इनसे विपरीत आध्यात्मिक जन	171
82.	अज्ञानी-मोही के विपरीत भाव व व्यवहार	171
83.	अभव्य-पापी जीवों को आत्मज्ञान नहीं मिलता	172
84.	परमार्थ-I परमार्थ-II परमार्थ-III	173-175
85.	आगम व मेरे अनुभव से आत्म-श्रद्धा-प्रज्ञा की परिणति	182
86.	परम सत्य हेतु मेरा प्रयत्न	183
87.	ज्ञान-विज्ञान-आध्यात्मिक जागृति की होली मनी	192
88.	डॉ. जीवराज जैन के पत्र : आ. कनकनन्दी के लिए	193
89.	अयाचक निस्पृही संतप्रवर श्रमणाचार्य	195
90.	निवेदन-संभावना व चातुर्मास पद्धति	195
91.	उत्तम स्वात्म चिन्ता तो परचिन्ता अधमाधमा क्यों?	196
92.	झूठे धार्मिक व सच्चे धार्मिक	198
93.	धन्य हे ! श्रमण समता वाला !	198
94.	जैन धर्म की सर्वोत्तम विशिष्टता अहं (मैं)	199
95.	आध्यात्मिक प्रभावना युक्त दीर्घ प्रवास	200

जैन धर्म-रहस्य गीताञ्जली

साधुओं की सामूहिक परमात्मा प्रार्थना

(चाल : ऐ मालिक तेरे बन्दे हम.....)

हे! परमात्मन् तेरे भक्त हम...तेरी भक्ति से बने भगवन्...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...करे तेरा ही चिन्तन-मनन...
हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(ध्रुव)...

तव ज्ञानार्थे पढ़े आगम...तव ध्यानार्थे एकाग्र मन...
तव चिन्तन में प्रमुदित मन...तव प्राप्ति हेतु बने श्रमण...
अरिहंत-सिद्ध व आचार्य...उपाध्याय-साधु तेरे रूप...
तेरा ज्ञान करे...हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(1)...

अर्हन-सिद्ध पूर्ण परमातम...शेष तीनों आंशिक परमातम...
पूर्ण परमात्मा बनना चाहे हम...अतः अन्तर आतम बने हम...
आत्म विशुद्धि समता शांति (से)...हमें बनना है परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(2)...

ख्याति-पूजा-लाभ त्यागे हम...राग-द्वेष-मोह त्यागे हम...
ईर्ष्या-घृणा व तृष्णा त्यागे हम...कट्टर संकीर्णता त्यागे हम...
विकल्प-संक्लेश त्यागे हम...अपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागे हम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(3)...

तव आराधना-पूजा से...तव प्राप्ति के प्रयत्न से...
अहंकार त्याग स्वानुभवी बने...अशुभ से शुभ-शुद्ध बने हम...
अन्तर आतम से (बने) परमातम...'कनक' शुद्ध रूप परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(4)...

मेरे महान् उपकारी/मेरी महान् उपलब्धि

(चाल : आये हो मेरी जिन्दगी में.....)

आये हो मम जीवन में...उपकारी श्रेय बन केऽऽऽ
देव-आगम-गुरु व...आतम-धर्म बन केऽऽऽ आये हो...(ध्रुवपद)...

देव हैं मेरे लक्ष्य...शास्त्र पथ प्रदर्शक...
गुरु (हैं) आदर्श मेरे...स्वरूप आत्म धर्म...
मुझमें ही मुझे पाना...देवशास्त्र गुरु पा के...देव-आगम...(1)...

मुझमें ही मेरे धर्म...बीज में वृक्ष सम...
देवशास्त्र गुरु मेरे...भूमि पानी हवा सम...
जीव से जिन बनूँ मैं...त्रय संगति को पा के...देव-आगम...(2)...

हो रहा मेरा विकास...श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या में...
सत्य-समता-शांति...ध्यान व अध्ययन में...
निराडम्बर-निस्पृह...आत्मा की विशुद्धि में...देव-आगम...(3)...

अभूतपूर्व लाभ मिला...जो इन्द्र को भी दुर्लभ...
त्रिलोक सम्पदा से (भी)...क्रय नहीं है संभव...
'कनक' हुआ है धन्य...निज स्वभाव पा के...देव-आगम...(4)...

चारों अनुयोग रूपी धारा के संगममय तीर्थ

(तर्ज : गंगा तेरी धारा अमृत.....)

विद्या तेरी पावन धारा, अविरल बहती जाए।
चार अनुयोग धारा संगम से, पावन तीर्थ बन जाय।। (ध्रुव)

प्रथमानुयोग रूपी धारा में बहते है विविध दृष्टान्तपुरा।
पापी पुण्यशाली व पंच परमेष्ठी के, बहते दृष्टान्तपुरा।
इसी के द्वारा प्राथमिक विद्यार्थी (मुमुक्षु), सीखते धर्म की धारा।। (1)

प्रथम धारा मिलती जब, करुणानुयोग रूपी धारा में।
करण-परिणाम के मंथन से, विशुद्धि बढ़ती आत्मा में।
जिससे दृष्टांतों का परिज्ञान होता है सही-सही में।। (2)

दोनों धारा में जब मिलती, चरणानुयोग रूपी धारा में।
साधु-उपाध्याय-आचार्य बनते, विशुद्धि जिनमें।
विशुद्धि रूपी धारा प्रवाह से, गुणस्थान बढ़े उनमें।। (3)

तीनों धारा बहती जब, द्रव्यानुयोग रूपी धारा में।
क्षपकश्रेणी आरोहण करके, कर्मक्षय करते हैं ध्यान से।
अरिहंत व सिद्ध बनकर, स्व-द्रव्य को पाते स्वयं में।। (4)

ऐसी धारा संगम से ही, बनते है पावन तीर्थ।
इसी तीर्थ के माध्यम से ही, तरते हैं संसार चक्र।
इसी पावन तीर्थ के द्वारा 'कनक' करे आत्मविशुद्ध।। (5)

प्रथमानुयोग रूपी दृष्टांतों से, करणानुयोग से करो प्रमाण।
चरणानुयोगमय आचरण से, द्रव्यानुयोगमय करो रमण।
जिससे मिलेगा अनंत सुख, ज्ञान दर्शन वीर्यमय।। (6)

श्रमण ही निश्चय से रत्नत्रय-10 धर्म 9 देवता, जीवन्त धर्म

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया.....)
रत्नत्रयधारी समता साधक मुमुक्षु, श्रमण होते है जीवन्त धर्म।
ख्याति पूजा लाभ संक्लेश रहित, ध्यान-अध्ययन में रत श्रमण।।

''वस्तु स्वभावमय होता है धर्म'', तथाहि ''न धर्मो धार्मिकेर्विना''।
रत्नत्रय से पवित्र होते है श्रमण, मोक्ष न मिले श्रमण बिना।।

''साधुनां दर्शन पुण्य है'', ''तीर्थभूताहि होते हैं साधवः''।
''कालेन फलन्ति तीर्थः'' है किन्तु, ''सद्यः फलप्रद है साधु समागमः''।। (1)

श्रमण ही बनते हैं अरिहन्त, तथाहि अन्त में बनते हैं सिद्ध।
अतः पञ्च परमेष्ठी श्रमण ही बनते, मोक्षमार्ग व मोक्ष पर्यन्त।।

पञ्च महाव्रत पञ्च समिति त्रिगुप्ति, उत्तम क्षमादि होते हैं श्रमण धर्म।
नव देवता षट् आयतन भी होते हैं, प्रकारान्तर रूप में श्रमण।। (2)

रत्नत्रय तो आत्मा का स्वभाव, आत्मा को छोड़ न अन्यत्र सम्भव।
रत्नत्रय ही है मोक्षमार्ग व, इसकी पूर्णता ही होता है मोक्ष।।

ये सब चैतन्यमय होने से, इनसे युक्त श्रमण निश्चय चैत्य।

चैत्य का निवास होता है श्रमण में, अतएव श्रमण ही चैत्यगृह।। (3)

श्रमण के आधीन होते हैं कषाय, अतः श्रमण ही निश्चय आयतन।
श्रमण के आधीन मन वचन काय, अतः मुनि के देह ही आयतन।।

निश्चय से ये सब यथार्थ से होते, व्यवहार से होते चैत्य/(मूर्ति) आदि भी।
भावनापूर्वक मंत्र संस्कार से धातु, पाषाण आदि के चैत्य आदि भी।। (4)

निश्चय-व्यवहार व नाम-स्थापना, द्रव्य-भाव रूप से सत्य जानकर।
आत्मा को परमात्मा बनाना ही होता, परम लक्ष्य अन्य सभी हैं उपकार।।

यथार्थ के बिना केवल प्रतीक से, नहीं मिलता है परम मोक्ष।
मोक्ष हेतु बाह्य-अंतरंग चाहिये, मोक्ष ही 'कनक' का अंतिम लक्ष्य।। (5)

तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स य दंसण णाणं अस्थि धुवं चेयणाभावो।। (17) बोध प्राभृत

उन जिनबिम्ब रूप आचार्य परमेष्ठी को प्रणाम करो, सब प्रकार की पूजा करो, उनके प्रति विनय व वात्सल्य भाव प्रगट करो जिनके कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान तथा निश्चित रूप से चेतना भाव विद्यमान है।

भगवान् आदिनाथ बनाम भारतीय शिक्षा-संस्कृति

(चाल : सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों....., हाँ तुम बिल्कुल ऐसे हो....., है प्रीत जहाँ की रीत सदा.....)

सुनो! सुनो! हे! कथा सुनो...आदिनाथ भगवान् की...
जिससे तुम्हें ज्ञात होगी...महानता भारत भूमि की...2
जय हो...जय हो आदिनाथ/(आदिगुरु)...(ध्रुव)...

भोगभूमि के अंतकाल में...हुए आदिनाथ ऋषभदेव...
कर्मभूमि की व्यवस्था हेतु...ज्ञान दिया है अनेक विध...
असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प...सेवा का ज्ञान दिया उन्होंने...
जिससे सुरक्षा हुई प्रजा की...सभ्यता शुभारंभ किया उन्होंने...(1)...

ब्राह्मी सुंदरी को शिक्षा देकर...नारी शिक्षा का किया शुभारंभ...
शतपुत्रों को भी शिक्षा देकर...प्रथम शिक्षक बने पृथ्वी पर...
प्रथम राजा बनकर किया...राज्य शासन का शुभारंभ...

नीति-नियम व समाज व्यवस्था (हेतु)...न्यायशास्त्र का शुभारंभ...(2)...

अंत में राज्य शासन त्यागकर...निर्ग्रंथ बनकर हुए श्रमण...
ध्यान-अध्ययन-आत्मसाधना से...बने प्रभु सर्वज्ञ तीर्थंकर...
दिव्य ध्वनि द्वारा उनने विश्व को...दिया परम ज्ञान-विज्ञान...
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक...आत्म से लेकर परमात्म ज्ञान...(3)...

आत्मकल्याण से (लेकर) विश्वकल्याण...हेतु दिया आपने आत्म-ज्ञान...
अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य...अपरिग्रह-अनेकांत-स्याद्वाद...
अंत में सर्व कर्म बंधनों से...मुक्त होकर बने (वे) परम सिद्ध...
सत्य शिव सुंदर स्वरूप...सच्चिदानंद व शुद्ध-बुद्ध...(4)...

आदिनाथ के पुत्र भरत से...आर्यावर्त हुआ भारत देश...
ब्राह्मी के कारण ब्राह्मी लिपि...सुंदरी के कारण गणित ज्ञान...
यह है भारत का प्राचीन इतिहास...तथाहि सभ्यता संस्कृति...
आध्यात्मिक भारतीय संस्कृति...'कनक' की आत्म संस्कृति...(5)...

पञ्च-परमेष्ठी प्रार्थना

साधु-उपाध्याय-आचार्य भी आंशिक भगवान्

(साधु साधना अवस्था व सिद्ध साध्य अवस्था)

(चाल : ऐ! मालिक तेरे बंदे हम.....)

परमेष्ठी पञ्च तेरे भक्त हम...तेरी भक्ति से..बने भगवन्...
तव ज्ञान करे..तव ध्यान धरे...तव स्वरूप बन जाएँ हम...

/(पञ्च देवता तेरे भक्त...)...(ध्रुव)...

आ...आ...आ...आ...आ...

साधु पाठक सूरी भगवन्...अरिहंत-सिद्ध परम भगवन्...
परमेष्ठी पाँचों ही..हैं भगवन्...पाँचों देवता-गुरु भगवन्...
आद्य त्रय आंशिक भगवन्...अंत द्वय परम शुद्ध भगवन्.../(रत्नत्रयधारी पञ्च भगवन्)...
तव ज्ञान करे..तव ध्यान धरे...तव स्वरूप बन जाएँ हम...(1)...

आ...आ...आ...आ...आ...

पाँचों उत्तम-मंगल व शरण...पाँचों परमेष्ठी में गर्भित...

अंकुर से यथा बने है वृक्ष...साधु (पाठक, सूरी) से बनते अर्हन्-सिद्ध...
शिशु से बनता प्रौढ़-वृद्ध...श्रमण ही बनते अर्हन्-सिद्ध.../(मोक्षमार्गी कृतकृत्य सिद्ध)...
तव ज्ञान करे..तव ध्यान धरे...तव स्वरूप बन जाएँ हम...(2)...

आ...आ...आ...आ...आ...

श्रमण काल में तपते हैं तप...परीषह-उपसर्ग करते सहन...
इसी काल में करे ध्यान-अध्ययन...आहार इस काल में आवश्यक...
इसी काल में कष्ट सहन...करते व्रत-नियम पालन...

/(सिद्ध/(अरिहंत) काल में सुख अनंत)...

तव ज्ञान करे..तव ध्यान धरे...तव स्वरूप बन जाएँ हम...(3)...

आ...आ...आ...आ...आ...

अनेकांत नय-निक्षेप से...साधु ही होते नव देवता...
जीवन्त तीर्थ/(धर्म) स्वरूप साधु...निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग...
श्रमण परमेष्ठी पञ्चम काल के...जीवन्त परमेष्ठी साक्षात् हैं.../(णमो लोए सव्व साहूणम्)...
तव ज्ञान करे..तव ध्यान धरे...तव स्वरूप बन जाएँ हम...(4)...

आ...आ...आ...आ...आ...

आत्मिक विकास पञ्च परमेष्ठी...शुद्ध/(शुभ) से शुद्धतर-शुद्धतम्...
अरिहंत सिद्ध तो साध्य रूप...साधु पाठक सूरी साधन रूप...
साधन बिन न साध्य सिद्धि है...तीनों परमेष्ठी/(गुरु) साधन रूप...

/(पाँचों को वंदे 'कनकनन्दी')....

तव ज्ञान करे..तव ध्यान धरे...तव स्वरूप बन जाएँ हम...(5)...

आ...आ...आ...आ...आ...

णमो लोए सव्व साहूणम्...
णमो लोए सव्व उवज्झायाणम्...
णमो लोए सव्व आयरियाणम्...
णमो लोए सव्व अरिहंताणम्...
णमो लोए सव्व सिद्धाणम्...

यह कविता धवला एवं जयधवला के आधार पर है।

आचार्यों के महान् गुणों की स्तुति

(आचार्य प्राज्ञ-आगमज्ञ-लोकज्ञ-अनिन्दक आदि गुणों से युक्त होते)

(आचार्य के अधिकांश गुण उपाध्याय व साधु में भी होते हैं)

(चाल : तुम दिल की.....(शत-शत वंदन).....)

धन्य हे ! आचार्य...धन्य हो तुम...कितने महान् गुण युक्त हो...
छत्तीस मूल गुण सहित होकर भी...पाठक (व) साधु गुण युक्त हो...(स्थायी)...

महान् प्राज्ञ हो ! शास्त्रज्ञ तुम हो !...लोकज्ञता में प्रवीण हो...
ख्याति पूजा लाभ से विरक्त होकर...हित-मित-स्पष्ट बोलते हो...

महान् गुणी हो ! प्रशमवान् हो !...प्रश्न पूर्व ही उत्तर जानते हो...
प्रश्नों को तुम सहने वाले हो !...अनिन्दक मनोहारी कथक हो...(1)...

समर्थवान् हो ! ज्ञानवान् हो !...गुण-दोष ज्ञाता व लोकज्ञ हो...
तो भी गुणग्राही...दोषअपरिस्रावी/(अनिन्दक)...गुणनिधि तुम सूरीश्वर हो...

धर्मकथा/(परमागम) उपदेशक हो...विकथा व निन्दा से रिक्त हो...
द्रव्य क्षेत्र काल भाव अनुसार...उपदेश सम्यक् ही करते हो...(2)...

मन-वचन-काय व कृत कारितादि...नवकोटि से पावन भाव युक्त हो...
मोक्षमार्ग प्रवर्तन प्रतिबोधन में...सतत प्रयत्नशील रहते हो...

बुधजनों से भी वंदित होकर...अहंकार से आप रहित हो...
लोकेष्णा रहित लोकज्ञता सहित...मृदुता गुण से सहित हो...(3)...

आचार पालक आचरण प्रशिक्षक...शांति मर्यादा के पालक हो...
ज्ञान वैराग्य व समता क्षमा के...आप पालक उपदेशक हो...

निस्पृह निराडम्बर आत्मविशुद्धि में...आप तो सदा लीन रहते हो...
'कनकनन्दी' तो तव अनुयायी...आपको मेरा शत-शत वंदन...(4)...

उपाध्याय साधुओं में भी आपके...अनेक गुण होते हैं...
अट्ठावीस (28) मूलगुण भी तीनों...परमेष्ठी में होते हैं...

प्रायश्चित्त व दीक्षा के अतिरिक्त...आप सम उपाध्याय होते हैं...
मौन साधना में तो साधु परमेष्ठी...आत्म-साधना करते हैं...(5)...

संदर्भ-

वद-समिदि-गुत्ति-जुत्ता मुत्ति-पहे ठाविया पुणो अण्णे।
अज्झावय-गुण-णिलया साहु-गुणेणावि संजुत्ता।। (4)

आचार्य व्रत समिति गुप्ति से सहित होते हैं, वे मुक्तिपथ में अन्य को भी स्थापित करते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी के गुणों से सहित होते हैं व साधु गुण से भी संयुक्त होते हैं।

उत्तम-खमाए पुढवी पसण्ण-भावेण अच्छ-जल-सरिसा।
कम्मिंधण-दहणादो अगणी वाऊ असंगादो।। (5)

उत्तम क्षमा में पृथ्वी के समान आचार्य होते हैं, प्रसन्न भाव में स्वच्छ जल की सरिता के समान होते हैं, कर्मरूपी ईंधन को दहन करने के लिए आचार्य अग्नि के समान होते है व वायु के समान निसंग (परिग्रह रहित, निर्ग्रंथ व अनासक्त) होते हैं।

स्वाध्याय व अध्यापन गुण युक्त उपाध्याय की स्तुति

(स्व-पर मत ज्ञाता व तात्कालीन ज्ञान-विज्ञान युक्त उपाध्याय)

(चाल : तुम दिल की...(शत-शत वंदन.....))

धन्य उपाध्याय! धन्य हो तुम...कितना ज्ञानदान करते हो...
पच्चीस मूलगुण सहित होकर...अध्ययन-अध्यापन करते हो...धन्य...(स्थायी)...

प्रथमानुयोग व करणानुयोग...चरणानुयोग (व) द्रव्यानुयोग मय...
ग्यारह अंग व चौदह पूर्व का...अध्ययन-अध्यापन सहित हो...

स्व-पर मत व तात्कालिक ज्ञान...विज्ञानों से अभी सहित हो...
दीक्षा व प्रायश्चित्त से अतिरिक्त...आचार्य के गुण सहित हो...(1)...

आगम-अनुभव तात्कालीन ज्ञान सह...लोकज्ञता से भी युक्त हो...
साधु-साध्वी-मुमुक्षु श्रावक व...भव्यों को ज्ञानदान करते हो...

अनेकान्तात्मक ज्ञान संपदा को...स्याद्वाद पद्धति से कहते हो...
निन्दा-चुगली-अपमान रहित...हित-मित-सत्य कहते हो...(2)...

शान्त-गम्भीर-उदार गुणयुक्त...समता-सहिष्णु सहित हो...
सत्य गवेषी-आत्मानुशासी...प्रशम-संवेग सहित हो...

समीक्षा-समन्वय-विश्लेषण द्वारा...द्रव्य व तत्त्व के ज्ञाता/(उपदेष्टा) हो...
तुम्हारे गुणों का अनुयायी 'कनक'...शत-शत वंदन तुमको हो...(3)...

ज्ञानदाता-शिक्षागुरु-उपाध्याय की विशेषता व पूजनीयता

(शिक्षागुरु तप-दीक्षा-आयु में कम होने पर भी दीक्षागुरु के समान वंदनीय)

(चाल : तुम दिल की....., छोटी-छोटी गैया....., आत्म शक्ति.....)

शिक्षा गुरु-उपाध्याय होते हैं, पूजनीय दीक्षा गुरु समान।
दीक्षा-तप-आयु में भी यदि कम, तथापि होते हैं वंदनीय।।

विनयवन्त शिष्य-मुनि जिनके, पास करते हैं अध्ययन।
वे होते हैं शिक्षादाता गुरु, उपाध्याय भी होते पूजनीय।। (1)

ग्यारह अंग-चौदह पूर्व के ज्ञाता, होते हैं चतुर्थ काल के।
स्व-परमत व तात्कालीन ज्ञान से युक्त होते पंचम काल (वर्तमान) के।

आगम व परमागम की शिक्षा देते हैं उपाध्याय गुरु।
अनुयोग चार व परमागममय, स्व-शुद्धात्मा का उपदेश गुरु।। (2)

इसी से शिष्य को होता है बोध, जिससे बढ़ता ज्ञान-वैराग्य।
आत्मा-परमात्मा का परिज्ञान होता, जिससे बढ़ता है भेद-विज्ञान।।

'अहमेक्क खलुसुद्ध' का ज्ञान होता, मैं हूँ एक निश्चय से शुद्धात्मा।
द्रव्य भाव नोकर्म से रहित, शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय आत्मा।। (3)

तन-मन-इन्द्रियों से परे अनंत ज्ञान-दर्शन-सुखमय आत्मा।
कर्म से लेकर इन्द्रिय तक नहीं निश्चय से मेरा शुद्ध आत्मा।।

ये सभी तो अनादि परंपरा से, प्राप्त वैभाविक संबंध है।
वैभाविक से परे मेरा स्वरूप शुद्ध-बुद्ध व आनंद है।। (4)

वैभाविक को त्याग करना ही, यथार्थ से तप-त्याग-संयम है।
वैभाविक परे मेरा (शुद्ध) स्वरूप ही, आत्मोपलब्धि रूप मोक्ष।।

ऐसे परमज्ञाता गुरु होते हैं परम उपकारी।
इसी हेतु ही शिक्षा गुरु भी, दीक्षा गुरु सम उपकारी।। (5)

दीक्षा देने हेतु जितना श्रम व समय लगता दीक्षा गुरु को।
उससे भी बहुगुणित श्रम व समय लगता है शिक्षा गुरु को।।

दीक्षा व प्रायश्चित्त के अतिरिक्त, आचार्य-उपाध्याय के होते समान गुण।
यह वर्णन है सिद्धांत ग्रंथ (धवला) का, सामान्य साधु से अति महान्।। (6)

इसलिए आगम में शिक्षा गुरु को, माना गया साधु से भी वंदनीय।
भले अन्य साधु से दीक्षा तपादि से कम होने पर भी उपाध्याय/(शिक्षा गुरु)।।

ऐसा आगमोक्त विधि को नहीं जानते अधिकांश साधु-श्रावक।
उन्हें बताने के लिए काव्य रचा है उपाध्याय-सूरी 'कनक'।। (7)

संदर्भ-

महाव्रती-सहस्त्रेभ्यो वरमेको जिनागमी।
जिनागमी सहस्त्रेभ्यो वरमेकः स्वतत्त्ववित्।। (138) सम्यक्तकौमुदी

हजारों महाव्रतियों की अपेक्षा एक जिनागम का ज्ञाता अच्छा है और हजारों जिनागम के ज्ञाताओं की अपेक्षा एक आत्म तत्त्व को जानने वाला अच्छा है।

''विभिन्न उपमा व विशेषणों से श्रमण की स्तुति''

(विभिन्न पशु व भौतिक वस्तुओं से श्रमण की उपमा)

(चाल : तुम दिल की...(शत-शत वंदन...), सायोनारा.....)

धन्य हे! गुरुवर...धन्य हो तुम...कितने विशेषण सहित हो...
अनेक श्रेष्ठ विशेषणों के...भाव से आप सहित हो...(ध्रुव)...

समुद्र के सम गम्भीर हो...सुमेरू के सम अचल हो...
सूर्य सम तेजस्वी हो...चन्द्र के सम शीतल हो...
वायु के सम निःसंग हो...चन्दन के सम सुगन्ध हो...
सिंह के सम पराक्रमी हो...गज के सम स्वाभिमानी हो...अनेक...(1)

बैल के समान भद्र हो...मृग के समान सरल हो...
पशु (गो) सम निरीह गोचरी...भ्रामरी वृत्ति सहित हो...
मणि के सम प्रभापुञ्ज हो...क्षिति के सम सहिष्णु हो...

सर्प सम अनियत वासी हो...आकाश सम निरालम्बी/(निर्लिप्त) हो...(2)

यथाजात बालक सम नग्न...सरल-सहज दिगम्बर हो...
पदविहारी-कमण्डलधारी...मयूर पिच्छी सहित हो...
पाणिपात्र आहारी (शुद्ध) शाकाहारी...अयाचक वृत्ति सहित हो...
केशलोंचकारी स्वावलंबनधारी...धीर-वीर व गंभीर हो...अनेक...(3)

धैर्य जिनके पिता...क्षमा है माता...शान्ति ही जिनकी गृहिणी...
सत्य है पुत्र...दया ही भगिनी...भ्राता है मन-संयम...
शय्या है भूमितल...दिशा ही वसन...ज्ञान अमृत है भोजन...
भूषण रत्नत्रय...मोक्ष लक्ष्य...वैभव है आकिञ्चन्य...अनेक...(4)

ऐसे विविध गुण अलौकिक...अनुपम सह होते श्रमण गुरु...
आप साक्षात् जीवन्त धर्म...दशधा धर्म भी आप गुरु...
नवविध देवता तेरे ही रूप...विविध कार्य-कारण सम्बन्ध...
तव स्वरूप व भक्ति मैं चाहूँ...'कनक' श्रमण का अनुबंध...अनेक...(5)

सन्दर्भ-

धैर्य्य यस्य पिता क्षमाश्च जननी शान्तिश्चिर गृहिणी।
सत्य सुनूरयं दया च भगिनी भ्रातः मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्।
ये ते यस्य कुटुम्बिनी वद सखे कस्मात् भीतो योगिनः।। (रत्नत्रयभूषणम्)

(गाय के समान (गोचरी) भोजन (शाकाहार मोटा, रेशेदार भोजन) करना चाहिए, इस विषय में कुछ लोग समझ न पाये, इस कारण यह कविता बनी।)

आध्यात्मिक एक : मुझे मिल रहे लाभ अनेक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

आध्यात्मिक से विविध लाभ हो रहे हैं...आत्मविश्वास मेरा अगाध हो रहा है...
ज्ञान में भी वृद्धि मेरी हो रही है...आचरण भी सम्यक् मेरा हो रहा है...(स्थायी)...
इसी से ही मुझे मिली श्रद्धा व प्रज्ञा...मैं हूँ जीव द्रव्य मुझमें अनंत प्रज्ञा...

अनादि अनंत मैं हूँ सच्चिदानंद...अनंत दर्शन ज्ञान सुख व वीर्य...
राग द्वेष मोह व काम क्रोध रिक्त...ईर्ष्या तृष्णा घृणा क्षुधा तृषा रिक्त...
जन्म जरा रोग व मृत्यु से रिक्त... तन मन इन्द्रिय दिमाग (ब्रेन) रिक्त...(1)...
आत्मविश्वास मेरा इससे बढ़ रहा है...दीन-हीन अहंकार भी हट रहे हैं...
समता शांति निस्पृहता आ रही है...क्षमा सहिष्णुता विरागता आ रही है...
तेरा-मेरा भेद-भाव भी मिट रहे हैं...ख्याति पूजा लाभ भी घट रहे हैं...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश छूट रहे हैं...ध्यान-अध्ययन मेरे बढ़ रहे हैं...(2)...
शोध-बोध व अनुभव बढ़ रहे हैं...गद्य-पद्य लेखन भी बढ़ रहे हैं...
अध्यापन व ज्ञानदान भी बढ़ रहे हैं...नये-नये चिंतन भी हो रहे हैं...
आत्म विशुद्धि भी मेरी बढ़ रही है...आत्मानंद की अनुभूति बढ़ रही है...
एकाग्रता संतुष्टि तृप्ति हो रही है...चारित्र की विशुद्धि अतः हो रही है...(3)...
अन्य से ये सब लाभ होना न संभव...सत्ता-संपत्ति-डिग्री से भी नहीं संभव...
ख्याति पूजा लाभ से भी नहीं संभव...इसीलिए 'कनक' को आध्यात्मिक श्रेय/(प्रिय)...
राजनीति विज्ञान संकीर्ण पंथ/(धर्म) से...दिखावा आडम्बर युक्त क्रियाकाण्डों से...
तर्क-वितर्क व वाद-विवाद से...संभव नहीं है परोपदेशी पाण्डित्य से...(4)...

रत्नत्रय ही है मेरा परम-वैभव

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : पायोजी मैंने राम-रतन धन पायो.....)
पायोजी! मैंने रत्नत्रय धन पायो!
जिस रत्न हेतु चक्रवर्ती भी चौदह रत्न वैभव त्यागो।। (ध्रुव)
आत्म श्रद्धान है पहला रत्न, स्वयं को मानूँ मैं शुद्ध-बुद्ध।
द्रव्य भाव नोकर्म से रहित, मैं हूँ सच्चिदानंद रूप।।
व्यवहार से श्रद्धान मेरा षट् द्रव्य, नव पदार्थ का स्वरूप।
इनके कारणभूत मेरा श्रद्धान, सच्चे देव-शास्त्र गुरु रूप।। (1) पायोजी...
यह ही श्रद्धान यह ही प्रतीति, यह ही है आत्मविश्वास।
लौकिक जनों के आत्मविश्वास से, होता है पूर्ण विशेष।।

लौकिक जन तो शरीर मन (पर) मैं, करते है आत्मविश्वास।
मैं तो शरीर व मन से परे, करूँ स्व चैतन्य विश्वास।। (2) पायोजी...

द्वितीयरत्न है सम्यग्ज्ञान जो, आत्मविश्वास के अनुकूल।
ज्ञान-ज्ञेय, हेय-उपादेय जानकर, आत्मा को करूँ अंगीकार/(स्वीकार)।।

इसी हेतु भेद-विज्ञान करूँ, अणु से लेकर लोकालोक।
विज्ञान से लेकर आध्यात्मिक तक, स्व-मत परमत (व) लौकिक।। (3) पायोजी...

श्रद्धान-ज्ञानयुक्त भावना करूँ, शक्ति अनुसार आचरण।
पर-स्वरूप व विभाव त्याग हेतु, करूँ सम्यक् आचरण।।

राग-द्वेष मोह काम क्रोध त्यागूँ, ईर्ष्या तृष्णा संक्लेश।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्याग (कर), करूँ आत्मा को विशुद्ध।। (4) पायोजी...

समता शांति निस्पृहता धरूँ, करूँ मैं मौन साधना।
आत्म विशुद्धि आत्मानुभव करूँ, पाने हेतु ज्ञान चेतना।।

तीन रत्नों को मैं अभेद रूप से, स्वयं में ही करूँ अनुभव।
रत्नत्रय ही है मेरा स्वरूप, 'कनक' का परम शुद्ध भाव।। (5) पायोजी...

मेरे आध्यात्मिक अनुभव संबंधी आध्यात्मिक वीर रसयुक्त शोधपूर्ण कविता

मेरे आध्यात्मिक अनुभव में- दृढ़ता बढ़ने के कारण व परिणाम

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं.....)

आत्म अनुभव को मेरे...कदापि (मैं) त्याग सकता नहीं...
कोई माने या न माने...उसकी मुझे चिन्ता नहीं...2...(ध्रुव...)

मैं हूँ चैतन्य आत्मा...तन व मन से भी परे...2
राग-द्वेष-काम-क्रोध...मोह-मद से भी परे...2

ईर्ष्या तृष्णा ख्याति पूजा...द्वंद्व चिन्ता से परे...
ऊँच-नीच व भेद-भाव...संकीर्ण-संक्लेश परे...कोई माने...(1)...

सत्य-समता-सरलता...सहजता शुचिता क्षमा...2

निरालंब व निर्विकार...संतुष्टि व शांतता...2

आत्म अनुभव आत्म ध्यान...आत्म शुद्धता युत...
निर्विकल्प व निरपेक्ष...आत्म प्राप्ति ही लक्ष्य...कोई माने...(2)...

इससे अनुभव मेरा...बढ़ रहा है हर क्षण/(हरदम)...2
शोध-बोध-कल्पना भी...हर समय वर्द्धमान...2

ज्ञात-अनुमान-मिश्रित ज्ञान...हो रहा सत्य सिद्ध...
देश-विदेश के हर क्षेत्र में...हो रहा सत्य सिद्ध...कोई माने...(3)...

आत्मविश्वास मेरा...इससे हो रहा दृढ़तम...2
मम आत्मा परम सत्य...मुझमें बोध अनंत...2

सत्य-समता आदि से ही...बढ़ता है शोध-बोध...
आत्म शुद्धता से ही...बढ़ता है ज्ञानानंद...कोई माने...(4)...

इन सभी अनुभवों को मैं...प्रायोगिक सही पाता हूँ...2
मुझ से लेकर पृथ्वी भर में...गुण व दोष में पाता हूँ...2

अन्य जन अनुभव को मेरे...गलत माने पूर्व में...
सत्य सिद्ध होने पर वे...सत्य मान रहे अभी...कोई माने...(5)...

इससे मेरी दृढ़ता भी...दिनोंदिन है बढ़ रही...2
सहयोगी हो रहे हर दिन...विदेशों के शोध-बोध भी...2

आत्म सिद्धांतों में मेरा...श्रद्धान हो रहा दृढ़तम...
आध्यात्मिक (महा) पुरुषों को 'कनक'...माने परम महान्...कोई माने...(6)...

ढोंग या पाखण्डों से...ख्याति पूजा या लाभ से...2
संकल्प-विकल्प से...संक्लेश/(द्वंद्व) से अनुभव घटे...2

अंधश्रद्धा-संकीर्णता...चिन्ता से अनुभव घटे...
अपमान-परपीड़ा-निन्दा...द्वेष से अनुभव घटे...कोई माने...(7)...

वन्दे आत्मन्...वन्दे स्वात्मन्...वन्दे परमात्मन्...

मेरा शुद्ध स्वरूप ही मेरा सद्धर्म-स्वधर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा....., भातुकली.....)

मेरा स्वधर्म तो मुझ में ही स्थित, अन्य में नहीं है अवस्थित।
अतः स्वधर्म (ही) मुझ में ही, स्वयं को पाना है यह सत्य।। (1)

'सद् द्रव्यलक्षणम्' से सिद्ध होता है, मेरा स्वरूप है सत् स्वरूप।
'गुणपर्ययवत् द्रव्यम्' से सिद्ध है, मुझ में ही अरिहंत व सिद्ध।। (2)

'उत्पाद व्यय ध्रौव्य' स्वरूप द्रव्य है, अतः धर्म मुझ में भी तीनों रूप।
मुझमें ही मेरा धर्म उत्पन्न होता, मुझमें ही विलय व ध्रौव्य/(स्थित) होता।। (3)

मेरा रत्नत्रय मुझमें ही स्थित, अतएव मैं ही हूँ मोक्षमार्ग।
मुझमें ही रत्नत्रय पूर्ण होता, अतएव मैं ही हूँ मोक्षमय।। (4)

सत्य स्वरूप हूँ अतः (हूँ) सनातन, अनादि अनिधन स्वयंभू पूर्ण।
अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व आदि, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य।। (5)

यही मेरा रूप यही मेरा सर्वस्व, यही मेरा सद्धर्म व स्वधर्म।
इसी से भिन्न सभी राग द्वेष मोहादि, मुझसे परे सभी कर्मज भाव।। (6)

पर विभावों को त्यागकर मुझे ही, स्वभाव को पाना है मेरा स्वधर्म।
इसी हेतु ही व्यवहार धर्म विधेय, 'कनकनन्दी' हेतु स्वधर्म ही ध्येय।। (7)

(मेरी आध्यात्मिक अनुभव संबंधी कविता)

मैं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या देखता हूँ?!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., क्या मिलिये ऐसे लोगों से.....)

आध्यात्मिक दृष्टि से जब मैं देखता हूँ संसार को।
सिद्ध स्वरूप/(चिन्मय रूप) देखता हूँ संसार के हर जीव को।। (धृ.)

इसी दृष्टि से कोई न छोटा-कोई न बड़ा होता है।
कोई न उच्च कोई न नीच, भेद-भाव कुछ न होता है।।

कोई न पशु-कोई न नारकी, कोई न देव होता है।

कोई न मनुष्य कोई न स्त्री, कोई न नपुंसक होता है।। (1)

कोई न धनी कोई न निर्धनी, कोई न भिखारी होता है।
कोई न शत्रु कोई न मित्र, अपना-पराया न कोई होता है।।

जो कोई शरीर-इन्द्रिय-मन को, अपना/(मैं) स्वरूप मानता है।
उसकी प्रज्ञा-श्रद्धा को मैं, अंध श्रद्धादि रूप/(अहंकार रूप) मानता हूँ।। (2)

सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री को, मेरी है ऐसा जो मानता है।
उसकी ऐसी परिणति को मैं, ममकार रूप/(मोह रागरूप) मानता हूँ।।

धर्म जाति राष्ट्र भाषादि के कारण, अन्य से जो वैरत्व करते।
ऐसे भाव-व्यवहार को मैं, राग-द्वेष-मोह रूप मानता हूँ।। (3)

समता शांति आत्मविशुद्धि बिना, जो स्वयं को धार्मिक मानता है।
उसके ऐसे भाव को मैं अज्ञान, मोहाछन्न रूप से मानता हूँ।।

जन्म-मरण सांसारिक सुख-दुःखादि को मैं विभावमय देखता हूँ।
यथा आकाश के बादल-रंगादि को मैं, भौतिकमय जानता हूँ।। (4)

सच्चिदानंद-सत्य-शिव-सुंदरमय, हर जीव को मैं मानता हूँ।
ऐसा स्वरूप हर जीव प्राप्त करे, ऐसी भावना मैं ('कनक') भाता हूँ।। (5)

सिद्ध भगवान् से मुझे प्राप्त परम सुख के सूत्र

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : भावे वन्दू तो अरिहंत....., तुम दिल की धड़कन.....)

तन-मन-अक्ष से रहित भगवान्, भोगोपभोग रिक्त सिद्ध भगवान्।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि रहित होकर, अनंत सुख सम्पन्न सिद्ध भगवान्।। (ध्रुव)

इसी से सिद्ध (होता) सुख आत्म स्वभाव, शरीर मनादि तो है जड़ स्वभाव।
जड़ में न होता सुख वह तो अजीव रूप, अजीव में न होता सुख चैतन्य भाव।। (1)

सिद्ध का सुख तो पूर्ण चैतन्यमय, चैतन्य ही होता सुख ज्ञान स्वभाव।
सिद्ध का सुख अतः आत्म आश्रित, पराधीन रहित स्व आधीन युक्त।। (2)

राग द्वेष मोह रिक्त होते हैं सिद्ध, ईर्ष्या घृणा तृष्णा से भी रहित सिद्ध।
काम क्रोध मद रिक्त होते हैं सिद्ध, अनंत सुख सम्पन्न होते सिद्ध।। (3)

इसी से सिद्ध होता सुख विभाव रिक्त, विभाव तो विकृति न आत्म स्वभाव।
विभाव शून्य से होता स्वभाव प्रगट, स्वभाव ही है सुख रूप विभाव दुःख।। (4)

जन्म-जरा/(मृत्यु) रोग मुक्त सिद्ध स्वरूप, क्षुधा तृषा रूजा मुक्त सिद्ध स्वरूप।
खाना पीना सोना रिक्त सिद्ध स्वरूप, अनंत सुखमय सिद्ध स्वरूप।। (5)

इसी से सिद्ध होता सुख न जन्मादि रूप, खाना पीना सोना भी न सुख स्वरूप।
ये सभी तो संयोग वियोग रूप, सुख तो आत्म स्वभाव ध्रुव स्वरूप।। (6)

ख्याति पूजा यशोगान प्रसिद्धि परे, अर्चना वंदना व प्रार्थना परे।
स्तुति प्रणाम नमोऽस्तु भी परे, अनंत सुखी सिद्ध स्तवन परे।। (7)

इसी से सिद्ध (होता) सुख अपेक्षा परे, अनुशंसा प्रशंसा प्रोत्साहन परे।
प्रशस्ति पुरस्कार समर्थन परे, आत्मलीन स्वानुभव (है) सुख विकल्प परे।। (8)

सिद्ध भगवान् से मुझे मिले सुख के सूत्र, स्वाधीनता आत्माधीनता ही परम सुख।
पवित्रता समता व शांति ही सुख, 'कनकनन्दी' का शुद्ध स्वभाव ही सुख।। (9)

आत्म चिन्तन

मैं हूँ मोक्षमार्ग एवं मोक्ष

(मैं हूँ एक निश्चय से शुद्ध ज्ञानदर्शनमय अमूर्तिक द्रव्य)

-आ. कनकनन्दी

गाथा- ''अहमेक्क खलु शुद्ध दंसणणाणमय सयारूवी''

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

मैं हूँ एक निश्चय से शुद्ध, ज्ञानदर्शनमय अमूर्तिक द्रव्य।
परमाणु नहीं एक भी मेरे अंदर, यह मेरा स्वरूप है द्रव्यार्थिक।।

द्रव्यदृष्टि से मैं एक जीव द्रव्य, जीव होता है चैतन्यमय।
चेतन होता है अमूर्तिकमय, दर्शनज्ञानादि अनंतगुणमय।।

ऐसा श्रद्धान होता सम्यग्दर्शन, जो आत्मा का शुद्ध अमूर्तिक गुण।
संज्ञी जीव को होता सम्यग्दर्शन, मन द्वारा उत्पन्न मन से भिन्न।।

उपशम क्षयोपशम व क्षय से, दर्शनमोहनीय अनंतानुबंधी के।
तथापि कर्म से परे सम्यक्त्व, अमूर्तिकमय शुद्धात्मा भाव।।

देव-शास्त्र-गुरु का होता श्रद्धान, उनसे भिन्न/(परे) निज शुद्धात्मा गुण।
द्रव्य तत्त्वादि/(पदार्थ) का होता श्रद्धान, उनसे परे निज शुद्धात्म गुण।।

योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल के द्वारा, पंचलब्धियों के संयोग द्वारा।
होता सम्यक्त्व विशुद्धि द्वारा, तो भी सम्यक्त्व अन्य से न्यारा।।

सम्यक्त्व से होता सम्यग्ज्ञान स्व-संवित्ति रूप निज का गुण।
आगम अध्ययन भी होता कारण, निश्चय से निज आत्म गुण।।

दोनों से युक्त होता सम्यक् चारित्र तीनों के योग से बने मोक्षमार्ग।
तीनों की पूर्णता से होता मोक्ष, शुद्ध-बुद्धमय जीव का स्वरूप।।

सम्यक्त्व से लेकर मोक्ष पर्यंत, जीव के गुण ही होते गर्भित।
अतएव स्वयं जीव होता प्रमुख, अन्य सभी सहयोगी बाह्य निमित्त।।

अतएव स्व का स्वयं कर्त्ता-धर्त्ता, स्वयं का स्वयं ही उद्धार कर्त्ता।
इसी हेतु अनिवार्य होते निमित्त, स्व-उपलब्धि ही 'कनक' का ध्येय।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 05.02.2016, प्रातः 7.10

मेरी शुद्धात्म-अनुप्रेक्षा

-आ. कनकनन्दी

(चाल : भावे वन्दु तो अरिहंत.....)
मैं आत्मा हूँ परमात्मा हूँ...मैं द्रव्य-गुण-पर्याय हूँ।
मैं शुद्ध-बुद्ध आनंद हूँ...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हूँ।।

सत्य समता शांति हूँ मैं...निर्मल व निर्विकार हूँ।
क्षमा-मार्दव-शौच हूँ मैं...सरल-सहज-सुख मैं हूँ।।

संयम-तप-त्याग हूँ मैं...आकिंचन्य ब्रह्मचर्य हूँ मैं।
अहिंसा अपरिग्रह निर्भय हूँ मैं...अचौर्य, निराबाध हूँ मैं।।

श्रद्धा-प्रज्ञा-चारित्र हूँ मैं...अस्तित्व-वस्तुत्व भी हूँ मैं।
मोक्षमार्ग-मोक्ष भी हूँ मैं...पुण्य-पाप रिक्त विशुद्ध हूँ मैं।।

द्रव्य-भाव-नोकर्म (से) परे मैं...तन-मन व इन्द्रिय परे हूँ।
धन-जन व नाम से (भी) परे मैं...जाति-लिंग व भाषा परे हूँ।।

क्षेत्र-काल सीमा से परे मैं...पंथ-मत सीमा से परे।
भेद-भाव से रहित हूँ मैं...शत्रु-मित्र से भी मैं परे।।

मुझमें ही मेरी अनंत शक्ति...मुझमें ही मेरी सभी उपलब्धि।
मुझमें ही मेरे सभी धर्म है...'कनक' मुझमें (ही) मेरे सभी तीर्थ।।

व्यक्त या शक्ति रूप से मैं हर जीव को भगवान् मानता हूँ

(स्व-पर समस्त जीवों को मैं एक समान मानता हूँ)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का.....(एकान्त मौन में.....))
स्व-पर को मानता हूँ मैं आत्म स्वरूप,
निगोद से लेकर मानव तक।
यथा भौतिकवादी मानते सभी (ही) जड़ रूप,
तथाहि मैं मानता हूँ हर जीव चैतन्य रूप।। (1)

अणु से लेकर जीव व ब्रह्माण्ड तक,
सभी को मानते भौतिकवादी जड़ रूप।
तथाहि मैं मानता हूँ हर जीव सच्चिदानंद,
एकेन्द्रिय से लेकर सिद्ध जीव पर्यंत।। (2)

अणु से लेकर संपूर्ण ब्रह्माण्ड भौतिक रूप,
हवा पानी (व) सूर्य चन्द्र निहारिका तक।
बैक्टेरिया वाइरस व पशु-पक्षी मानव,
भौतिकवादी माने सभी को भौतिक तत्त्व।। (3)

तथाहि मैं मानता हर जीव चैतन्य,
चैतन्य दृष्टि से हर जीव (तो) समान।
भौतिक कर्म के कारण (भले) जीवों में भिन्नता,
भौतिक कर्म रहित हर जीव में समानता।। (4)

शरीर-मन-इन्द्रियादि कर्म जनित,

इसी से परे हर जीव चैतन्य रूप।
मैं तो अध्यात्मवादी देखता हूँ चैतन्य रूप,
कर्म से परे सभी जीव अमूर्त/(चैतन्य) रूप।। (5)

अतः मेरी दृष्टि में सभी जीव जिन/(भगवान्) रूप,
बीज में यथा सुप्त रूप में वृक्ष निहित।
(अतः) छोटा-बड़ा नहीं मेरी दृष्टि से/(में),
परम साम्य भाव आध्यात्मिक दृष्टि से/(में)।। (6)

अतएव किसी से भी नहीं (मेरा) राग-द्वेष,
ईर्ष्या-घृणा-मोह आसक्ति विषम-भाव।
व्यवहार से जानता हूँ (मैं) विभिन्न/(विकृत) रूप,
भिन्न से परे मेरा भाव अभिन्न रूप।। (7)

इसी से सर्वोदय-अन्त्योदय होती भावना,
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य माध्यस्थ भावना।
समता शान्ति वात्सल्य भावना होती,
'कनक' की आध्यात्मिक विशुद्धि होती।। (8)

काव्यमय अभिनय/एकांकी

मेरी भविष्यवाणी...जिनवाणी माँ की जुबानी

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : माँ मुझे अपने आँचल में छिपा ले....., बहुत प्यार करते हैं.....)

माँ मुझे सुनाओ मेरी भविष्यवाणी...उत्थान/(विकास) कहानी...
सर्वज्ञ देव से जो जानीऽऽऽ...(स्थायी)...

भविष्यवेत्ता व विज्ञानी जन...नहीं जानते मेरा भावी जीवन...
मैं तो अमूर्तिक चेतन रूपऽऽऽ
आत्म विकास की बताओ कहानी...उत्थान कहानी...(1)...

भौतिकमय ही मेरा नहीं विकास...भौतिक परे मेरा आत्म विकास...
आत्म विशुद्धि की भविष्यवाणीऽऽऽ
उसे बता रही है श्री जिनवाणी...उत्थान कहानी...(2)...

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रमय...तेरा है स्वरूप इसे करो विकास...
भावी निर्माण ही तेरा सच्चा प्रयासऽऽऽ
तेरा प्रयास ही तेरी भविष्यवाणी...उत्थान कहानी...(3)...

इसी हेतु करो राग-द्वेष-त्याग...मद मोह माया को करो विनाश...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागोऽऽऽ
विभाव त्यागकर स्वभाव भजो...उत्थान कहानी...(4)...

सतत करो है तू आत्म विशुद्धि...समता शांति व निस्पृह वृत्ति...
ध्यान-अध्ययन व आत्म चिन्तनऽऽऽ
निर्विकार व वीतराग विज्ञानी...उत्थान कहानी...(5)...

'कनक' को यह सब स्वीकार हुआ...श्रद्धा व प्रज्ञा से इसे स्वीकारा...
भावी का पूर्वाभास अभी हो रहा हैऽऽऽ
अंकुर से वृक्ष के भान समानी...उत्थान कहानी...(6)...

दिव्य-ध्वनि से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ

(दिव्य-ध्वनि को गणधर तक अनंतवाँ भाग समझते हैं अतः मेरे सत्य कथन को अन्य लोग न समझने पर भी मैं सत्य को नहीं त्यागूँगा)

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा....., तुम दिल की धड़कन.....)

सर्वज्ञ की दिव्य-ध्वनि से, मुझे मिलती है महान् शिक्षाएँ।
विनम्र उदार सत्यग्राही, बनने की महान् शिक्षाएँ।। (1)

अनंत सत्य (को) केवली जानते हैं, अनंतानंत स्व-ज्ञान से।
दिव्य-ध्वनि में सात सौ भाषा में, प्रतिपादन करते हैं अनेकांत (स्याद्वाद) से।। (2)

दिव्य-ध्वनि को गणधर तक, केवल जानते हैं अनंतवाँ भाग।
लाखों-करोड़ों वर्षों में भी, गणधर न जान पाते समस्त भाग।। (3)

गणधर जब बनते सर्वज्ञ, तब जानते हैं अनंत सत्य।
गणधर अवस्था में नहीं, जान पाते हैं सम्पूर्ण सत्य।। (4)

इसी से मुझे शिक्षा मिलती है, ज्ञानार्जन करूँगा मैं तब तक।
जब तक मैं सर्वज्ञ बनकर, जान पाऊँगा अनंत तक।। (5)

भाषा से ही सम्पूर्ण सत्य का, नहीं हो पाता है पूर्ण ज्ञान।
इन्द्रिय-मन से भी न, हो पाता है अनंत ज्ञान।। (6)

और भी अनेक शिक्षाएँ, मुझे मिलती हैं दिव्य-ध्वनि से।
सत्य को यदि कोई न समझ पाता, मैं न होऊँगा दूर सत्य से।। (7)

सत्य ही बोलूँगा सत्य ही लिखूँगा, सत्य को ही मैं मानूँगा।
कोई माने या न माने इसी से, न मैं सत्य को त्यागूँगा।। (8)

हर मानव की क्षमताएँ भी, होती हैं अलग-अलग।
हर मानव मेरे कथन को, समझने में न होता योग्य।। (9)

बुद्धिलब्धि व एकाग्रता, सब की होती है अलग-अलग।
भाषा ज्ञान व लक्ष्य श्रद्धान, पुरुषार्थ भी अलग-अलग।। (10)

शिक्षा संस्कार व वातावरण, संगति चर्चा भी न होता समान।
रूढ़ि-परंपरा व संकीर्णता से, ग्रसित होते हैं अनेक जन।। (11)

अहंकार या उदासीनता से भी, ग्रसित होते हैं अनेक जन।
समय शक्ति व बुद्धि का भी, सदुपयोग न करते अधिक जन।। (12)

लौकिक शिक्षा व व्याकरण, गणित भाषा व विज्ञान।
रूढ़ि परंपरागत धार्मिक ज्ञान, से न समझ पाते मेरे कथन/(लेखन)।। (13)

इन सब कारणों से मेरे कथन, लेखन को न समझ पाते।
कोई-कोई तो अति देरी से, धीरे-धीरे ही समझ पाते।। (14)

तथापि मुझे शांति समता से, परम सत्य को पाना है।
सच्चिदानन्द सत्य शिव, सुन्दर स्वरूप को पाना है।। (15)

आत्म-सम्बोधन **आध्यात्मिक का पूर्ण रहस्य**

जिया रे! तेरा शुद्ध-स्वभाव ही तेरा स्वधर्म!

(धर्म हेतु राग-द्वेष-मोह भी अधर्म)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)
जिया रे! तू धर्म/(स्वयं) को सही समझोऽऽऽ

''वस्तु स्वभाव धर्म'' होने सेऽऽऽ स्व-वस्तु (को) सही समझोऽऽऽ
/(स्व-धर्म सही समझोऽऽऽ)...(ध्रुव)...

तेरा वस्तु ही तेरा स्वभावऽऽऽ तेरा स्वभाव ही तेरा धर्मऽऽऽ
तेरा स्वभाव तो 'सच्चिदानंद'ऽऽऽ यह ही है तेरा स्व-धर्मऽऽऽ
सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रऽऽऽ
अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्यऽऽऽ...(1)...

स्व-स्वभाव से भिन्न अन्य सभीऽऽऽ नहीं है तेरा स्वधर्मऽऽऽ
कर्मजनित विकार या अधर्मऽऽऽ अथवा अन्य के होते स्वधर्मऽऽऽ
ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्धऽऽऽ...(2)...

सचित्त-अचित्त व मिश्र परिग्रहऽऽऽ द्रव्य-भाव व नोकर्मऽऽऽ
ये सब नहीं तेरे स्वभावऽऽऽ अतः ये न तेरे स्वधर्मऽऽऽ
(इनसे) राग-द्वेष-मोह अधर्मऽऽऽ
(इनके) त्याग से मिले स्वधर्मऽऽऽ...(3)...

राग-द्वेष-मोह त्याग हेतु जोऽऽऽ पालनीय होते व्रत-नियमऽऽऽ
स्तुति-वंदना व तप त्याग आदिऽऽऽ होते धर्म प्राप्ति निमित्त/(साधन)ऽऽऽ
साधन से पाओ स्वधर्मऽऽऽ
साधक न बने बाधकऽऽऽ...(4)...

रीति-रिवाज व क्रिया-काण्ड हीऽऽऽ नहीं होते हैं पूर्ण धर्मऽऽऽ
इसीलिये तो राग-द्वेष-मोहऽऽऽ होता पूर्णतः अधर्मऽऽऽ
अधर्म से न मिले स्वधर्मऽऽऽ...(5)...

भेद विज्ञान व आत्मानुभव सेऽऽऽ करो हे! तू आत्म विशुद्धिऽऽऽ
आत्म विशुद्धि से स्वधर्म प्राप्तिऽऽऽ यह ही है परम मुक्तिऽऽऽ
'कनक' की अंतिम परिणतिऽऽऽ...(6)...

(धर्म के नाम पर हो रही अधार्मिक प्रवृत्तियों से बचने के लिए व आत्म दृढ़ता हेतु यह कविता बनी।)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 19.03.2016, रात्रि 10.30

संदर्भ-

परमध्यान के कारण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।। (56)
मा चेष्ठत मा जल्पत मा चिन्तयत किमपि येन भवति स्थिरः।
आत्मा आत्मानि रतः इदं एव परं भवति ध्यानं।।

Do not act, do not talk, do not think, so that the soul may be attached to and fixed in itself. This only is excellent meditation.

हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो। जिससे कि तुम्हारी आत्मा अपनी आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होता है वही परम ध्यान है।

जिस प्रकार स्थिर जल में बड़ा पत्थर डालने पर जल अस्थिर होता है और छोटा पत्थर डालने पर भी जल अस्थिर होता है भले अस्थिरता में अंतर हो। उसी प्रकार किसी भी प्रकार के संकल्प-विकल्प, चिंतन, कथन, क्रियादि से आत्मा में अस्थिरता/कम्पन्न/चंचलता/क्षोभ हो जाता है। इसलिये श्रेष्ठ ध्यान के लिए समस्त संकल्पादि को त्याग करके आत्मा में ही पूर्ण निश्चल रूप से स्थिर होना चाहिए। अतः आचार्यश्री ने कहा है कि-

'मा चिठ्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि' हे विवेकी पुरुषों! नित्य निरंजन और क्रिया रहित निज-शुद्ध-आत्मा के अनुभव को रोकने वाला शुभ-अशुभ चेष्टा रूप काय की क्रिया को तथा शुभ-अशुभ अंतरंग-बहिरंग रूप-वचन को और शुभ-अशुभ विकल्प समूह रूप मन के व्यापार को कुछ मत करो।

'जेण होइ थिरो' जिन तीनों योगों के रोकने से स्थिर होता है। वह कौन? 'अप्पा' आत्मा। कैसा होकर स्थिर होता है? 'अप्पम्मि' स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान आचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक परम ध्यान के अनुभव से उत्पन्न सर्व प्रदेशों को आनंददायक ऐसे सुख के अनुभव रूप परिणति सहित स्व-आत्मा में रत, तल्लीन, तच्चित्त तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। 'इणमेव परं हवे ज्झाणं' यही जो आत्मा के सुख स्वरूप में तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परम ध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानंद सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या-क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वही शुद्ध आत्म-स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटता रूप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चयनय से निज-शुद्ध आत्मानुभव से उत्पन्न सुख रूपी अमृत जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है। परमात्मा ध्यान की भावना की नाममाला में इस एक देश व्यक्ति रूप शुद्ध नय के व्याख्यान को यथासंभव सब जगह लगा लेना चाहिए ये नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अपेक्षित है।

वही परम ब्रह्म स्वरूप है, वही परम विष्णु रूप है, वही परम शिव रूप है, वही परम बुद्ध स्वरूप है, वही परम जिन स्वरूप है, वही परम निज आत्मोपलब्धि रूप सिद्ध स्वरूप है, वही निरंजन स्वरूप है, वही शुद्धात्म दर्शन है, वही परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्म दर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुद्ध पारिणामक भाव रूप है, वही ध्यान भावना रूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतरंग तत्त्व है, वही परम तत्त्व है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है, वही शुद्ध निर्मल स्वरूप है, वही स्वसंवेदन ज्ञान है, वही परम तत्त्वज्ञान है, आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म संवित्ति आत्म-संवेदन है, वही निज आत्म स्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य आनंद है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति हैं, वही परम समाधि है, वही परम आनंद है वही नित्य आनंद है वही स्वाभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्म पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वह ही परम-योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य रूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय षट् आवश्यक स्वरूप है, वह ही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है वही वीतराग सामायिक है, वह ही परम शरण रूप उत्तम मंगल है, वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, आराधना स्वरूप है वही परमात्मा भावना रूप है, वही परम अद्वैत है, वही अमृत स्वरूप परम धर्म ध्यान है, वही शुक्ल ध्यान है, वही राग आदि विकल्प रहित ध्यान है, वही निष्फल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही

परम वीतरागता है, वही परम समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम अह्लाद एक सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्व तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

आत्मविश्वासी Vs/(बनाम) घमण्डी
(आध्यात्मिक व व्यवहार से)

(चाल : भातुकली....., छोटी-छोटी गैया.....)

आत्मविश्वासी व घमण्डी लोग होते हैं परस्पर विलोमी लोग।
आत्मविश्वासी होते (सनम्र) सत्यग्राही, घमण्डी उद्दण्ड हठग्राही।।

स्वयं को जो माने 'सच्चिदानंदमय', आत्मविश्वासी होते निश्चय।
इसी से विपरीत वे घमण्डी होते, अष्ट मदों से सहित होते।। (1)

गुण-गुणी से जो विनम्र होते, आत्मविश्वासी गुणग्राही वे होते।
इसी से विपरीत घमण्डी होते, गुण-गुणी से भी घृणा वे करते।।

मैत्री-प्रमोद-करुणा-साम्य भाव, आत्मविश्वासी में ये होते स्वभाव।
इससे विपरीत घमण्डी लोग, अन्य से न रखते वे सद्भाव।। (2)

स्व-सुधारक होते आत्मविश्वासी, इससे विपरीत होते घमण्डी।
परोपकारी भी (सो) होते आत्मविश्वासी, इससे विपरीत होते घमण्डी।।

(अन्य के) उचित राय को माने आत्मविश्वासी, स्व-राय को ही थोपते घमण्डी।
सकारात्मक ऊर्जा युक्त आत्मविश्वासी, नकारात्मक ऊर्जा युक्त घमण्डी।। (3)

अंगुर-रस सम आत्मविश्वासी, अंगुर-मद्य सम होते घमण्डी।
आत्म गौरवशील स्वाभिमानी, मद-मत्सर युक्त दुराभिमानी।।

परनिन्दा-अपमान रिक्त आत्मविश्वासी, परनिन्दा अपमान युक्त घमण्डी।
स्व-दोष स्वीकारते आत्मविश्वासी, गुणी में भी दोषारोपण करते घमण्डी।। (4)

धैर्य से सुनते है आत्मविश्वासी, बीच में ही बोलते/(टोकते, काटते) हैं घमण्डी।
स्व-पर का (सही) मूल्यांकन करते स्वाभिमानी, अन्य को न महत्व देते घमण्डी।।

शालीनता से अन्य की आँखों को देखते, वे होते आत्मविश्वास युक्त।
आँखों से आँखें न मिलाते घमण्डी, अन्य के सिर पर रखे स्वदृष्टि।। (5)

सरल शांत होते आत्मविश्वासी, धैर्य-क्षमाशील मधुर भाषी।
अन्याय अत्याचार दिखावा रिक्त, आत्म गौरव रक्षा हेतु प्रयत्न युक्त।।

उक्त गुणों से रिक्त घमण्डी, स्वार्थ पर ख्याति पूजा (प्रसिद्धि) अभिलाषी।
(स्व) सुगुणों से प्रसिद्ध आत्मविश्वासी, आत्मविश्वास चाहते हैं 'कनकनन्दी'।। (6)

उत्तरोत्तर सही सुंदरता (सत्यं-शिवं-सुंदरम्)

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

केवल नहीं होता सुंदर तन, तन से भी अधिक होता सुंदर मन।
मन से भी अधिक सुंदर भाव, सबसे सुंदर होते परमात्मन्।। (1)

तन तो माँसादि का होता पिण्ड, चर्म से आच्छादित जैविक पिण्ड।
कामुक ही शरीर को माने सुंदर, उसे भोगने हेतु करे पाप प्रचुर।। (2)

सुंदर तन (शरीर) से होता सुंदर मन, उन्नत विचार से सुंदर मन।
इसी से भी सुंदर पावन भाव, सनम्र सत्यग्राही उदार भाव।। (3)

सबसे सुंदर होते परमात्मन्, बहुविध सुंदर होते मध्यम।
आत्मविश्वास-ज्ञान-सदाचरण, दान दया सेवा ध्यान-अध्ययन।। (4)

शालीनता मधुरता हित भाषण, स्व-पर-विश्व के मंगल चिन्तन।
सरल-शांत व सादा जीवन, आत्म संतुष्टी पर प्रसन्न/(वचन) वदन।। (5)

करुणा, मैत्री पूर्ण समता भाव, क्षमा मृदुतापूर्ण धैर्य स्वभाव।
परनिन्दा अपमान रहित भाव, गुण प्रशंसा प्रोत्साहन स्वभाव।। (6)

कृतज्ञता जताना व धन्यवाद कहना, पर अहितकर काम नहीं करना।
अनुशासन पालन व प्रामाणिक होना, तनाव व चिन्ता से रहित होना।। (7)

आहार-विहार भी सम्यक् होना, उठना-बैठना-व्यवहार करना।
वाद-विवाद कलह नहीं करना, हित-मित-प्रिय भाव-व्यवहार करना।। (8)

मन (आदि) की सुंदरता से तन सुंदर, अन्यथा तन न लगे सुंदर।
सत्य-शिव-सुंदर यह सूत्र बताता, सत्य-शिव बिन न सुंदर होता।। (9)

शरीर सुंदर हेतु न करने योग्य, फैशन व शरीर मद भी अयोग्य।
तन को स्वरूप मानना मिथ्यात्व, जीव का स्वरूप चैतन्य स्वभाव।। (10)

सच्चिदानंदमय सुंदर आत्मा, शुद्ध-बुद्ध-आनंद (कंद) परमात्मा।
इसे प्राप्त करना हो जीवों का लक्ष्य, आत्मोपलब्धि ही 'कनक' का लक्ष्य।। (11)

गुण-गुणी पूजक बनो न कि...!?

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

आध्यात्मिक-गुण युक्त गुणी की होती है पूजा गुण प्राप्ति हेतु।
'वंदे तद्गुणलब्धये' भाव से, होती प्रशंसा गुण वृद्धि हेतु।।

इसे ही कहते 'गुणेषुप्रमोद' विनय, बहुमान-स्तुति-वंदना।
आरती प्रार्थना गुण-कीर्तन, आध्यात्मिक पुरुषों की आराधना।। (1)

आध्यात्मिक गुण-गुणी की स्तुति, होती है यथार्थ से प्रशंसा।
नैतिक सदाचार परोपकार (आदि) गुण, युक्त की होती उपाचार से प्रशंसा।।

इसी से भिन्न सत्ता-संपत्ति-डिग्री, प्रसिद्धि युक्त की प्रशंसा।
वह नहीं है सही प्रशंसा (वह है) चापलुसी या स्वार्थ अंधश्रद्धा।। (2)

(अतः) नेता अभिनेता खेल नेता खल नेता, धर्म नेता धनी मानी की प्रशंसा।
आध्यात्मिक व नैतिक दृष्टि से, होती पाप-पापी की प्रशंसा।।

आध्यात्मिक देश भारत में अभी, आध्यात्मिक गुण-गुणी की कम प्रशंसा।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि वालों की, होती है अधिक पूजा प्रशंसा।। (3)

उन्हें भगवान् रूप में संबोधा जाता, मूर्ति-मंदिर में पूजा जाता।
उन्हें देखने-सुनने हेतु भीड़ होती, धन व समय बर्बाद होता।।

इसी से नैतिक आध्यात्मिक गुणों का विकास नहीं विनाश होता।
इसलिये तो भारत में हर प्रकार के, भ्रष्टाचार सर्वत्र विस्तार होता।। (4)

उत्तम गुण-गुणी की प्रशंसा, उत्तम गुण संवर्द्धन हेतु तो विधेय।
इसी हेतु ही 'कनक' काव्य रचा है, सत्यार्थ प्रकाशन के लिए।। (5)

दान-पूजादि के उद्देश्य

(गृहस्थ संबंधी हर कार्य से उपार्जित पाप दूर हेतु, सातिशय-पुण्य व मोक्ष प्राप्ति हेतु)

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

देव-शास्त्र-गुरुओं की जो उपासना करते, श्रद्धा-भक्ति सहित जो आराधना करते।
(दया) दान-सेवा-पूजा व मंदिर निर्माण, नवकोटि से जो करते बांधे सातिशय पुण्य।। (1)

गृहस्थ संबंधी हर कार्य के द्वारा, अवश्य ही पाप बंधे नवकोटि द्वारा।
पढ़ाई व्यापार कृषि शिल्प-नौकरी शादी से, निश्चय ही पाप बंधता है नवकोटि से।। (2)

उपार्जित पाप को दूर करने हेतु, दान-सेवा-पूजादि करते आत्म शुद्धि हेतु।
सिंधुसम होता पुण्य बिन्दु सम पाप, परंपरा से मोक्ष हेतु बने पुण्य कारण।। (3)

दानादि जो नहीं करते वे न होते श्रावक, श्रद्धा-विवेक क्रिया युक्त होते श्रावक।
मोक्ष प्राप्ति हेतु पालन करते हैं धर्म, आगम अनुकूल दान-पूजादि श्रावक धर्म।। (4)

आगमोक्त दान पूजादि को नहीं करते, करने वालों को जो सही नहीं मानते।
निन्दा-विरोध या कलह आदि करते, घोरातिघोर पापी उसे आगम बताते।। (5)

आगम अनुकूल पावन भावना सहित, समता शांति उदार भावना युक्त।
मोक्ष प्राप्ति के महान् लक्ष्य से युक्त, 'कनक' सेवनीय धर्म आत्मविशुद्धि युक्त।। (6)

गलियाकोट पुनर्वास कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 14.03.2016, रात्रि 8.25

संदर्भ-

देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्वदुःख निर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतोनित्यम्।।119।। (र.श्रा.)

श्रावक को आदर से युक्त होकर प्रतिदिन मनोरथों को पूर्ण करने वाली और काम को भस्म करने वाली पूजा करनी चाहिए। अरहंत भगवान् के चरणों में समस्त दुःखों को दूर करने वाली पूजा करनी चाहिए। समंतभद्र स्वामी दान, जिनार्चना को वैयावृत्ति में अंतर्निहित करके यह बताये हैं कि तीनों परस्पर परिपूरक, अनुपूरक हैं। उपरोक्त कार्य से यथार्थतः पाप संचय नहीं होता है परन्तु संचित पाप कर्म का प्रक्षालन होता है। कहा भी है-

गृह कर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृह विमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रूधिरमलं धावते वारि।। (114)

जिन्होंने अंतरंग और बहिरंग से घर का त्याग कर दिया है तथा सब तिथियाँ जिन्हें एक समान हैं, किसी खास तिथि से राग-द्वेष नहीं है ऐसा मुनियों के लिए जो दान किया जाता है वह सावद्य-व्यापार-सपाप कार्यों से उत्पन्न बहुत कर्म को भी उसी तरह नष्ट कर देता है जिस तरह कि स्वच्छ जल, मलिन, रूधिर को धो देता है-नष्ट कर देता है।

वस्तुतः गृहस्थ लोग कर्म की निर्जरा एवं पुण्य बंध की अपेक्षा पापास्रव एवं पाप बंध अधिक करते हैं। इसीलिये यहाँ पर समंतभद्र स्वामी-गृहस्थों को रूधिर से लिप्त विशेषण दिया है। दान-पूजा आदि को स्वच्छ जल का विशेषण दिया है। जिस प्रकार रूधिर से लिप्त अवयव या वस्त्र को धोने के लिए स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार कृषि, वाणिज्य आदि व्यापार क्रोध, लोभादि कषाय, भोग, विषय आदि वासना से अर्जित पाप रूपी रूधिर को प्रक्षालन करने के लिए देव पूजा, आहार दानादि पुण्य रूपी स्वच्छ जल की आवश्यकता होती हैं। जब तक गृहस्थ-संबंधी संपूर्ण विषय-वासनाओं को त्याग नहीं करता है तब तक दान-पूजादि त्याग करने वाला, मुनि धर्म से भी भ्रष्ट तथा श्रावक धर्म से भी भ्रष्ट अर्थात् वह उभय भ्रष्ट है। जब वह गृहस्थ संबंधी समस्त आरंभ, परिग्रहादि का त्याग कर देगा और मुनि धर्म को स्वीकार करेगा तब दान-पूजादि स्वयमेव छूट जायेंगे। गृहस्थ होते हुए भी अल्प सावद्य भय से दान नहीं करना, मानो बीज के नष्ट होने के भय से कृषक बीजारोपण नहीं करने के सदृश है। निश्चय से कृषि कार्य के लिए पहले कुछ बीजों को भूमि में रोपण किया जाता है। इस दृष्टि से यदि कृषक बीजारोपण नहीं करेगा तब वह स्व पर भरण-पोषण स्वरूप अनाज उत्पन्न नहीं कर सकता है। उसी प्रकार गृहस्थ आनुषंगिक अनिच्छ पाप के भय ये यदि दान-पूजा आदिक नहीं करेगा तब वह इहलोक-परलोक संबंधी आत्म-कल्याण रूपी फल से वंचित हो जायेगा क्योंकि जैसे बीज को उपयुक्त योग्य उपजाऊ भूमि में रोपण करने से फलित होता है उसी प्रकार धर्म क्षेत्र में दान, पूजादि रूपी बीजरोपण करने से वह बीज योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव को प्राप्त कर अंकुरित पल्लवित होकर उभय लोक सुखदायक फल पुष्प से भरित होता है। स्वामी समंतभद्र ने कहा भी है-

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।

फलतिच्छाया विभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्।। (116)

उचित समय में योग्य पात्र के लिए दिया हुआ थोड़ा भी दान उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए वट वृक्ष के बीज के समान प्राणियों के लिए माहात्म्य और वैभव से युक्त, पक्ष में छाया की प्रचुरता सहित बहुत भारी अभिलषित फल को देता है।

आचार्यश्री ने संक्षिप्ततः इसका फल लिखकर विराम नहीं लिए परन्तु प्रत्येक प्रकार भक्ति आदि से क्या-क्या फल की उपलब्धि होती है बताये हैं। यथा-

उच्चैर्गोत्रे प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।

भक्तेः सन्दररूपं स्तवनात्कीर्ति स्तपोनिधिषु।। (115)

तपस्वियों को प्रणाम करने से उच्च गोत्र, दानादिक देने से भोग, सेवा से पूजा-प्रभावना, भक्ति अर्थात् गुणानुराग से उत्पन्न श्रद्धा विशेष सुंदर रूप तथा आप ज्ञान के सागर है इत्यादि स्तुति करने से कीर्ति प्राप्त होती है।

यदि छठे-सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनियों को नमस्कार आदि करने से उपर्युक्त फल प्राप्त होता है तब क्या तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहंत भगवान् तथा नव देवताओं की पूजा-अर्चना, भक्ति, आदर, सत्कार, नमस्कार, आरती आदि करने से उभय लोक सुखदायक फल की प्राप्ति नहीं होगी? निश्चय से होगी ही। इसीलिये किंचित् प्रासंगिक सावद्य भय से उभय लोक सुखदायक दान-पूजादिक का त्याग नहीं करना चाहिए। यह मत केवल मेरा ही नहीं है यह अभिप्राय स्वामी समंतभद्र, जयधवला, धवलाकार आचार्य वीरसेन से लेकर सभी पूर्वाचार्यों के है जिसका वर्णन इसी पुस्तक में यत्र-तत्र-सर्वत्र आपको देखने में मिलेगा तो भी संक्षिप्ततः समंतभद्र स्वामी की एक कारिका उद्धृत कर रहा हूँ। यथा-

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।

दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीत शिवाम्बु राशौ।।

हे जिनेन्द्र भगवान्! आप ही निर्दोष होने के कारण पूज्य है। आपकी पूजा करने वाले को लेशमात्र पाप संचय होता है एवं विपुल मात्रा में पुण्य संचय होता है इसीलिए आपकी पूजा दोष कारक नहीं है। जैसे शीतल अगाध समुद्र की जल राशि में एक कण विषय डालने से वह विष-कण विपुल जल राशि को दूषित नहीं बना सकता है उसी प्रकार इहलोक-परलोक, अभ्युदय एवं मोक्ष सुख को देने वाली पूजा

से यत्किंचित् पाप होते हैं किन्तु वह दोषकारक नहीं है।

जैन धर्मावलम्बिओं की भावना

''स्व-पर-विश्व व स्वधर्मी-विधर्मी-अधर्मी प्रति''

(मैत्री-प्रमोद, कारुण्य-माध्यस्थ भाव)

सुनो! सुनो! हे! दुनिया वालों, जैन धर्मियों की उदार वृत्ति।
स्व-पर-विश्व स्वधर्मी-विधर्मी-अधर्मी जीव प्रति जो होती प्रवृत्ति।। (1)

जैन धर्मी के लक्ष्य होते हैं, स्वयं को शुद्ध-बुद्ध बनाने के।
सत्य-समता शान्ति के उपासक, अनेकान्तमय भाव से।। (2)

हर जीव प्रति मैत्री भावना, अदुःख जननी भावना मैत्री।
क्षुद्र जीव से पंचेन्द्रिय (जीव) तक में, सदा रखते हैं भावना मैत्री।। (3)

किसी से भी न रखते राग द्वेष मोह पक्षपात ईर्ष्या व घृणा।
हर जीव की शुद्ध अवस्था है, ''सव्वे सुद्धाहु सुद्ध णथा''।। (4)

किसी भी जीव से राग द्वेषादि करना ये तो होती, भाव की हिंसा।
भाव हिंसा ही तो निश्चय हिंसा भाव अहिंसा से न होती हिंसा।। (5)

भाव हिंसा ही स्व आत्मा की हिंसा, अन्य जीवों की हो हिंसा या अहिंसा।
अतः जैन धर्मावलंबी विश्वकल्याण की करते मंगल आकांक्षा।। (6)

गुणीजनों में करते हैं प्रमोद, जिसे कहते है ''विनय तप''।
पूजा आरती, बहुमान प्रशंसा, वैयावृत्ति दान आदि होते प्रमोद।। (7)

देव-पूजा व गुरु उपासना जैनों के होते प्राथमिकी कर्म (धर्म)।
इसी से होती सम्यग्दर्शन विशुद्धि, विनय होता मोक्ष का द्वार।। (8)

दुःखी-रोगी व संकट ग्रस्थ जीवों के प्रति करते हैं, वे 'करुणा भाव'।
दयादत्ति रूप में करते दान, व रक्षा रूप में करते ''अभयदान''।। (9)

करुणाभाव धरते हर दुःखी जीव प्रति, भले वे होते विधर्मी या अधर्मी।
मनुष्य सह पशु-पक्षी कीट-पतंग आदि प्रति, उदार जैन धर्मी।। (10)

विपरीत प्रति माध्यस्थ भाव रखते, जो होते हैं जैन धर्मावलंबी।

विपरीत वालों के प्रति नहीं करते, ईर्ष्या द्वेष घृणा आदि जैन धर्मी।। (11)

ईर्ष्या द्वेष घृणा आदि को अधर्म स्वरूप जानकर त्यागते नवकोटि से।
सत्य-समता शांति को धर्म मानकर सेवन करते हैं नवकोटि से।। (12)

इन सब गुणों से जो रहित होते, वे न होते सच्चे जैन धर्मी।
सच्चे जैन धर्मी के महान् गुणों को, संक्षेप से लिखा है कनकनन्दी।। (13)

सन्दर्भ-

विश्व के विविध जीवों के प्रति आत्मिक भावना

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदाममात्मा विदधातु देव।। (1)

O lord! make myself that I may always have love for all beings, pleasure in the company of learned (good) men, unstinted sympathy for those in pain, and tolerance towards those perversely inclined.

भावार्थ-हे भगवान्! विश्व के सम्पूर्ण जीवों के प्रति मैत्री-भाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोद भाव, दुःखी जीवों के प्रति कृपा-भाव, विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव मेरा सदा हो।

प्राप्त शिक्षाएँ-स्व-पर-विश्व कल्याण के लिए हमें सतत उपर्युक्त भाव-व्यवहार करना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त केवल बाह्य शिक्षा-धर्म-संविधान-प्रवचन-चर्चा-कानून-विज्ञान-सत्ता-संपत्ति से भी स्व-पर-विश्व कल्याण संभव नहीं है। उपर्युक्त भाव-व्यवहार ही यथार्थ से शिक्षा-धर्म-संविधान-कानून-विज्ञान-आध्यात्मिक भावना आदि है। इससे ही सर्वोदय-साम्यवाद-विश्वमैत्री-विश्वशांति-निरस्त्रीकरण, पर्यावरण सुरक्षा, सर्वजीव अधिकार, मानवाधिकार संभव है। मैत्री भाव से प्रत्येक जीवों की रक्षा होती है, तो प्रमोद भाव से गुण ग्रहण होता है। कृपा भाव से दूसरों की सहायता होती है तथा माध्यस्थ भाव से वैर, विद्वेष, कलह, हत्या, आतंकवाद, युद्ध तक नहीं होता है।

आत्मदोषों को दूर करने के लिए प्रार्थना

शरीरतः कर्त्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः।। (2)

May Thy grace enable me, Jinendra! to separate, like the sword-stick from its scabbard, the self, which is faultless and possessed of infinite powder from the body.

भावार्थ–हे भगवन्! आपके प्रसाद से मुझे इतनी शक्ति प्राप्त हो जिससे मैं मेरे अनंत शक्ति सम्पन्न आत्मा से दोषों को दूर करके शरीर से भी पृथक् करने के लिए समर्थ बनूँ। जैसा कि तलवार को म्यान से पृथक् किया जाता है, वैसा ही मैं मेरे आत्मा को दोष एवं शरीर से पृथक् करूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ–भगवान् से सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-भोग-बाह्य शत्रु पर विजय प्राप्त करने की याचना करके याचक, भिखारी, दीन-हीन बन के संसार में चिर दुःखी बनने की प्रार्थना नहीं करना चाहिए अपितु स्वयं में निहित दोष, कमियाँ, अपराध, कर्म, अंतरंग शत्रु को दूर/परास्त करने के साथ-साथ स्व-शरीर को भी पृथक् करके स्व-आत्मा को पवित्र-निर्दोष-अनंत शक्ति-वैभव सम्पन्न बनाकर अनंत सुख-शांति के मालिक/प्रभु/स्वामी बनने की प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रत्येक जीव स्व-दोषों से ही दुःखी होते हैं तथा असफल होते हैं तथा दोष दूर करने से सुखी होते हैं, विकास करते हैं। जिस प्रकार विज्ञान के अनुसार $E=MC^2$ या परमाणु विघटन से ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जीव जब स्वदोष से स्वयं को पृथक् करता है तब स्व में निहित अनंत शक्तियों का उद्भव, प्रकटीकरण/विस्फोट होता है।

समस्त अनुकूल-प्रतिकूलताओं में साम्य भाव

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वन वा।
निराकृताशेष ममत्वबुद्धेः, समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ।। (3)

O lord! may my mind, after a complete destruction of all sense of attachment, be always at equilibrium, in plesure and pain, among friends and foes, in gain and loss, at home and forest.

भावार्थ–हे प्रभु! मेरा मन समस्त ममत्व बुद्धि (मोहासक्ति) से रहित होकर दुःख-सुख, शत्रु-मित्र, संयोग-वियोग, भवन-वन में सदा समता में रहे।

प्राप्त शिक्षाएँ–अनुकूलता-प्रतिकूलता, आकर्षण-विकर्षण, शत्रुता-मित्रता आदि में अप्रभावित होकर संतुलित-तटस्थ रहने से मन में भाव में तनाव-क्षोभ-चञ्चलता-अस्थिरता आदि दुःख कारक तत्त्व उत्पन्न नहीं होते हैं, पापकर्म का आस्रव-बंध नहीं

होता। इससे व्यक्ति शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक दुःख, रोग, समस्या से मुक्त हो जाता है। इसके साथ-साथ व्यापक साम्यभाव से व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैश्विक समस्या-संघर्ष-युद्ध आदि समाप्त हो जायेंगे। ऐसा ही भाव-व्यवहार दैनिक चर्या, भोजन, जीवन चर्या, गृह, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में, प्रकृति आदि में संतुलन होना स्वास्थ्य, सुख-शांति, विकास, व्यवस्था आदि के कारण है।

परमात्म चिन्तन में चित्तलीनता की भावना

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपिकाविव।। (4)

O Revered of all saints! may Thy feet be ever enshrined in my heart and act as a light to remove all darkness and three be engraved and impressed, and fixed, and imaged, and unified with it.

भावार्थ–हे मुनियों के स्वामी ! आपके चरण कमल मेरे हृदय में लीन, समावेश, स्थिर, उत्कीर्ण, बिम्बित, प्रकाशित होकर सदा विराजमान रहे।

प्राप्त शिक्षाएँ–केवल भगवान् का भजन, स्मरण, पूजन बाह्य-दिखावा रूप से करने से समय-साधन-श्रम का केवल दुरुपयोग होता है। क्योंकि इससे भाव में पवित्रता-स्थिरता नहीं आती है, पाप आस्रव एवं बंध नहीं रुकता है, सातिशय पुण्य बंध नहीं होता है, कर्म की निर्जरा नहीं होती है, किन्तु भगवत् स्मरण आदि पवित्रता-स्थिरता से करने से मन प्रसन्न होता है, तनाव-संक्लेश-भय-संदेह आदि दूर होते हैं, पापस्रव-बंध रुकता है, सातिशय पुण्य बंध होता है, कर्म की निर्जरा होती है, जिससे शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग दूर होते हैं, परंपरा से मोक्ष मिलता है। भाव की पवित्रता-एकाग्रता से आध्यात्मिक महापुरुषों के गुणानुवाद-गुण स्मरण से धीरे-धीरे वे आध्यात्मिक गुण भी भक्त के भाव में प्रगट होते जाते हैं जिससे भक्त धीरे-धीरे भगवान् बनता जाता है। जैसा कि सूर्य किरण लैन्स के माध्यम से केन्द्रीभूत होकर स्थिर होने पर तापमान में वृद्धि होते-होते अग्नि उत्पन्न हो जाती है; वैसा ही आध्यात्मिक महापुरुषों के ध्यान, मनन, स्मरण, पूजन, पवित्रता-एकाग्रता से करने से स्वयं में निहित आध्यात्मिक गुण (ज्ञान, समता, सुख, शांति) धीरे-धीरे प्रगट होते जाते हैं और भव्य-भक्त भगवान् बनता जाता है।

एकेन्द्रियादि जीवों के प्रति कृत दोषों के परिशोधन

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः सञ्चरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिताः, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा।। (5)

O lord! if I have, by carelessly moving hither and thither, destroyed, cut as under brought in (incompatible) connection, or otherwise injured any organism possessed of one or more senses, may wrong action of mine by annuled.

भावार्थ-हे देव ! यदि प्रमाद से इधर-उधर सञ्चरण करते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रियादि जीव नष्ट हुए हों, अलग किये गये हों, मिलाये गये हों, पीड़ित किये गये हों, तो वह दुष्कृत मिथ्या/व्यर्थ/दूर हो।

प्राप्त शिक्षाएँ-प्रत्येक जीव जीना चाहता है, सुखी होना चाहता है, क्योंकि जीव का मूल स्वभाव शाश्वतिक एवं सुखमय है। इसलिए किसी भी जीव को किसी भी प्रकार के कष्ट नहीं देना चाहिए। जानबूझकर (संकल्प, इच्छापूर्वक, लक्ष्य) किसी भी जीव को कष्ट देना सदा-सर्वदा-सर्वथा अपराध/पाप/हानिकारक होने से अविधेय है, किन्तु प्रमादवशतः भी किसी भी जीव को कष्ट पहुँचने पर पश्चात्ताप करना चाहिए, प्रायश्चित्त लेना चाहिए और ऐसे कुकृत्य से निवृत्त होना चाहिए। यह ही यथार्थ से अहिंसा, सहअस्तित्व, पर्यावरण सुरक्षा, जीओ और जीने दो, उदार पुरुषाणां वसुधैव स्वकुटुम्बकम्, विश्वमैत्री, विश्व बंधुत्व, आत्मवत् सर्वभूतेषु, परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्, वैश्विक संविधान-कानून है।

चारित्र संबंधी दोषों के परिशोधन

विमुक्तिमार्ग प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो।। (6)

Moving away from the path of salvation, if I, over-powered by passions and senses, have, owing to perversity, omited to observe the rules of purity of conduct, may such errors of mine, O master! be set at naught.

भावार्थ-हे प्रभु ! मोक्षमार्ग से विपरीत प्रवृत्ति करने वाला, दुर्बुद्धि वाला मेरे द्वारा कषाय एवं इन्द्रियों के वश होकर चारित्र की शुद्धि में जो कुछ लोप किया गया है, वह सब मेरा दुष्कृत व्यर्थ/नष्ट होवे।

प्राप्त शिक्षाएँ–मोक्षमार्ग (स्वतंत्रता, मुक्ति, परिनिर्वाण) कषाय से रहित, इन्द्रियासक्ति से परे पवित्र चारित्र वाला है। इसलिए जो मोक्षपथ के पथिक है उसे विषय-कषाय, दुष्चारित्र, दुर्बुद्धि से परे होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त केवल बाह्य धार्मिक क्रिया-काण्ड, वेश-भूषा, परंपरा, रीति-रिवाज, पर्व, त्यौहार, तीर्थयात्रा, पूजा-पाठ, जप-तप, भजन, कीर्तन, भाषण, कथा-वाचन आदि से मुक्ति मिलना संभव नहीं है। यदि निष्कषाय, इन्द्रिय संयम, सद्बुद्धि के लिए या इनसे युक्त होकर धार्मिक क्रिया-काण्ड किया जाता है तो वह सब मोक्षमार्ग के लिए साधक है अन्यथा बाधक/व्यर्थ/अनुपयोगी है।

दोष परिशोधन के उपाय

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनो वचः काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम्।। (7)

I destroy sin, from which all ills in the cosmos proceed, whether committed through mind, or word, or body, or passion, by self analysis, self censure, and repentance, just as a doctor completely removes all effects of poison by the force of incantation.

भावार्थ–यथा मांत्रिक वैद्य मंत्र के गुणों के द्वारा संपूर्ण विष को दूर कर देता है तथा मैं मन-वचन-काय तथा कषाय से निर्मित पाप जो कि संसारके दुःख के कारणभूत हैं उसे निंदा, गर्हा, आलोचना के द्वारा नष्ट करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ–जिस प्रकार शरीर में विष प्रवेश करने पर पीड़ा से लेकर मृत्यु तक संभव है परन्तु मंत्र, औषधि आदि के द्वारा उस विष को दूर/नष्ट करके स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते है उसी प्रकार मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना तथा क्रोध-मान-माया-लोभ से उत्पन्न पाप (कर्म) जो संसार के विभिन्न दुःखों के कारण हैं उसे दूर/नष्ट करके सांसारिक दुःखों को भी नष्ट करके अक्षय, अनंत सुख प्राप्त कर सकते हैं। स्व-दोष को दूर करने के लिए निन्दा (आत्म साक्षी पूर्वक स्वयं-दोष विश्लेषण) गर्हा (गुरु-साक्षी पूर्वक स्व-दोष-विश्लेषण), आलोचना करना चाहिए। यह आध्यात्मिक शुद्धिकरण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामाजिक-न्यायिक प्रक्रिया से भी सरल-सहज-शुद्ध-गुणकारी-चिरस्थायी-सर्वदोष निवारक तथा शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए अभौतिक रामबाण औषधि है।

विनय-अतिक्रम-व्यतिक्रम से भ्रष्ट चारित्र

(अधिक गुणी साधु से कम गुणी साधु यदि विनय चाहे तो वह भ्रष्ट व कम गुणी साधु का विनय अधिक गुणी साधु करे तो वह भी भ्रष्ट)

(चाल : तुम दिल की....., आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

विनय से खुलता है मोक्ष का द्वार, विनय है संयम-तप का सार।
गुण-गुणी में होता मोक्ष विनय, गुणहीन में न होता मोक्ष विनय।। (ध्रुव)

देव-शास्त्र-गुरु का करो विनय, गुण ग्रहण हेतु होता विनय।
गुण अधिक का करो हे! विनय, अधिक गुणी से न चाहो विनय।।

अधिक गुणी जो होते श्रमण ज्ञान चारित्र से होते सम्पन्न।
उनका विनय पहले करणीय श्रेय स्वागत वंदना उच्चासन देय।। (1)

ज्ञान-चारित्र आदि से जो कम होते ऐसे श्रमण हीन गुणधारी होते।
हीन गुणधारी श्रमणों के द्वारा पहले वंदनीय होते अधिक गुणी।।

गुणहीन साधु यदि श्रेष्ठ साधु से विनय यदि चाहते हैं पहले से।
वे गुणहीन साधु होते है भ्रष्ट अहंकारी अविनयी सम्यक्त्व भ्रष्ट।। (2)

गुणाधिक्य मुनि यदि गुणहीन का विनय करते हैं यदि पहले।
वे भी हो जाते हैं भ्रष्ट चारित्र ये सभी वर्णन आगम प्रणीत।।

अतः मर्यादा पालन सदा विधेय अतिक्रम-व्यतिक्रम न हो विनय।
राग द्वेष मोह मद त्यागना श्रेय मोक्ष प्राप्ति करना 'कनकनन्दी' का ध्येय।। (3)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 04.03.2016, रात्रि 11.17

संदर्भ-

गुणाधिक मुनि से विनय चाहने वाला मुनि अनंत संसारी है

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जो वि होमि समणो त्ति।
होज्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी।। (266) प्र.सा.

If a monk of inerior merits, thinking (proudly) that he is a Sramana, expects reverence from one who is more merited, he wanders in wordly existence till infinity.

वो मुनि अपने उपकरण भी ऐसे रखते हैं जिनसे किसी प्रकार के चारित्र का भंग न होता हो तथा वे मुनि अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार किसी के द्वारा दिए हुए शास्त्र वा पुस्तक भी ग्रहण कर लेते हैं।

(जदि) यदि (जोवि) जो कोई साधु भी (समणो त्ति होमि) मैं साधु हूँ ऐसा मानकर (गुणदोधिगस्स) अपने से गुणों में जो अधिक है उसके द्वारा (विणयं) अपनी विनय (पडिच्छगो) चाहता है तो (सो) वह साधु (गुणाधरों) गुणों से रहित (होज्जं) होता हुआ (अणंतसंसारी होदि) अनंत संसार में भ्रमण करने वाला होता है। मैं श्रमण हूँ, इस गर्व से जो साधु अपने से व्यवहार निश्चय रत्नत्रय के साधन में अधिक है ऐसे उन अन्य साधु के द्वारा अपनी वंदना आदि विनय की इच्छा करता है और वह स्वयं निश्चय व्यवहार रत्नत्रयरूपी गुण से हीन है तो वह साधु कथंचित् अनंत संसार में भ्रमण करने वाला होता है। यहाँ यह भाव है कि यदि कोई गुणाधिक से अपने विनय की वांछा गर्व से करे परन्तु पीछे भेदज्ञान के बल से अपनी निंदा करे तो अनंत संसारी न होवे अथवा कालांतर में भी अपनी निंदा करे तो भी दीर्घ संसारी न होवे, परन्तु जो मिथ्या अभिमान से अपनी बड़ाई, पूजा व लाभ के अर्थ दुराग्रह या हठ धारण करे सो अवश्य अनंतसंसारी हो जावेगा।

समीक्षा-जो स्वयं गुणों से हीन होते हुए भी गुणाधिक श्रमण से विनय चाहता है वह जिनमार्ग से बाह्य है क्योंकि उसने जिनागम के रहस्य को और मुनि मर्यादा को नहीं जानता है। विनय करने का मुख्य उद्देश्य ''वन्दे तद्गुण लब्धये'' है अर्थात् उनके गुणों की उपलब्धि के लिए वंदना करता हूँ। जिनके पास अधिक गुण नहीं हैं वह गुण कैसे दे सकता है। यदि गुण नहीं दे सकता है तो हीन गुणों की वंदना गुणाधिक कैसे कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता है तथापि जो अहंकार वश, अज्ञानता वश, ख्याति, पूजा प्रसिद्धि के लिए गुणहीन श्रमण भी गुणाधिक श्रमण से विनय चाहता है, वंदना चाहता है, तो वह मिथ्यादृष्टि है एवं अनंत संसार में भ्रमण करने वाला है। पूर्वाचार्यों ने कहा है कि मनुष्य गति में मान कषाय का तीव्र उदय रहता है। इसलिए मानवशतः जीव स्वयं को दूसरों से बड़ा मानता है और तदनुकूल प्रदर्शन भी करता है परन्तु जो ऐसी भावना रखता है उसके लिए रयणसार में कहा है-

खाई पूया लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई।
इच्छसि जदि परलोयं तेहिं किं तुज्झपरलोयं।। (122) पृ. 209

हे भव्ययोगी! ख्याति, पूजा और इष्ट वस्तु के लाभ होने सत्कारादि की क्यों इच्छा करता है? यदि परलोक की इच्छा करता है तो तेरे द्वारा क्या तेरा परलोक है।

हे मुनि! यदि तू अपने परलोक को सुधारने की इच्छा करता है तो फिर अपनी प्रसिद्धि की इच्छा क्यों करता है? अपना बड़प्पन प्रकट करने की इच्छा क्यों करता है? किसी से लाभ की इच्छा क्यों करता है? किसी से भी आदर-सत्कार कराने की इच्छा क्यों करता है? इन सब बातों से तेरा परलोक कभी नहीं सुधर सकता है।

गुणहीन श्रमण होकर पहले गुणाधिक श्रमण से विनय चाहना तो दोषयुक्त है ही उसी प्रकार श्रावक होकर भी साधु से अयोग्य अत्याधिक विनय चाहना भी जैनागम से बाह्य तथा श्रावक के लिए पापबंध का कारण है। आगमोक्त पद्धति यह है कि यदि श्रमण को श्रावक विनयपूर्वक नमोस्तु करता है तब उसे धर्मवृद्धिरस्तु, आशीर्वाद देते हैं यही श्रावक के लिए श्रमण का विनयाचार है। हाँ यदि श्रावक विनयपूर्वक कुछ धार्मिक प्रश्न करता है तो उसका योग्य आगमोक्त उत्तर श्रमण को देना चाहिए परन्तु श्रावक के साथ गृह, व्यापार, विवाह, हानि-लाभ की चर्चा श्रमण श्रावक के साथ न कर सकते हैं और न ही श्रावकों को इस प्रकार की अपेक्षा रखनी चाहिए। इतना ही नहीं, श्रमण से न स्वयं की प्रशंसा या पदवी की इच्छा रखनी चाहिए और न ही श्रमण को ऐसे कार्य करना चाहिए। श्रमण की सेवा सुश्रुषा उनके लिए आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान एवं अन्य-अन्य किसी भी प्रकार की व्यवस्था करके उनसे किसी प्रकार ऐहिक, भौतिक, यंत्र-तंत्र या नाम की कामना नहीं करनी चाहिए। जो ऐसा करता है वह वस्तुतः धर्म के रहस्य एवं फल को नहीं जानता है। ऐसा व्यक्ति तो वैसा है जो राख के लिए कल्पवृक्ष को जलाता है, कौआ को उड़ाने के चिंतामणि रत्न फेंकता है एक रोटी के लिए कामधेनु को बेचता है। क्योंकि सच्चे श्रमण की सेवा से प्राप्त धन, संपत्ति, चक्रवर्ती की पदवी तो बहुत तुच्छ उपलब्धि है। इससे तो मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। जो ऐहिक लाभ के लिए गुरुओं की पूजा करता है उसके लिए कड़ा प्रहार रयणसार में निम्न प्रकार से किया है-

जसकित्ति पुण्णलाहे देइ सुबहुमपि जत्थतत्थेव।
सम्मायसुगुणभायण पत्तविसेसं ण जाणंत्ति।। (27)

यश, कीर्ति, पुण्य का लाभ लेने के लिए जहाँ-तहाँ हो बहुत-सा रुपया-पैसा (गाय, बछड़ादि) देता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्त्वचारित्रादि विशेष गुणों

का भाजन होते हुए पात्र विशेष को नहीं जानते है।

जंतं मंतु तंतं परिचरियं पक्खाय पियवयणं।
पडुच्चपंचम काले भरहे दोणं ण किं पि मोक्खस्स।। (28)

यंत्र, मंत्र, तंत्र, प्रति-उपकार, पक्षपात से मीठे व मृदु वचनों के लिए इस भरत क्षेत्र के पंचम काल में प्रतीति कुछ भी दान दिया गया मोक्ष के लिए नहीं है।

सम्मविसोही तव गुण चारित्र सण्णाणदाणपरिहीणं।
भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदं।। (37)

इस दुषमा काल भरत क्षेत्र में मानवों के निश्चय निरंतर विशुद्ध सम्यक्त्व सहित तप मूलगुण और चारित्र सम्यग्ज्ञान, दानादि शुभ कार्यों में हीनता होती है।

वर्तमान युग में यह भी देखने में आता है कि कुछ व्यक्ति स्वयं को पूर्ण जैन धर्मावलम्बी मानते हुए भी और बताते हुए भी वे न श्रमणों को नमस्कार करते हैं नहीं विनय करते हैं, न आहारदान देते हैं और नही उनकी किसी प्रकार की सेवा करते हैं तथापि वे श्रमणों की निंदा करते हैं, उनसे ईर्ष्या करते हैं उनसे द्वेष भी करते हैं और कभी-कभी ऐसे जैनियों के द्वारा उपसर्ग भी होने का समाचार सुनते हैं और जैन-अजैन पत्रिका में पढ़ने मिल जाता है। कुछ आध्यात्म के नाम से एक दो आध्यात्मिक शास्त्र व गाथा पढ़ लेते हैं और स्वयं को सच्चा सम्यग्दृष्टि सच्चा जैन मानकर श्रमण को मिथ्यादृष्टि, द्रव्यलिंगी, भ्रष्टाचारी मानते हैं और उनकी निंदा भी करते हैं। वे लोग न श्रावकाचार का ठीक से अध्ययन करते हैं, न ही समझते हैं और न ही तदनुसार आचरण करते हैं परन्तु श्रमणाचार की चर्चा करेंगे और श्रमण की चर्चा करेंगे और ऐसे वे व्यक्ति श्रावक की क्रियाओं को तथा श्रमणों की क्रियाओं को पुण्य मानकर हेय मानते हैं और पुण्य को संसार का कारण मानकर पुण्य एवं पुण्य क्रियाओं को हेय तथा त्यजनीय मानते हैं तथा दूसरे को भी उसी प्रकार उपदेश व प्रेरणा देते हैं। ऐसे व्यक्ति सर्वतः भ्रष्ट हैं। वे न तो श्रावक क्रिया करते हैं और न ही श्रमण की क्रिया न उन्होंने शुभोपयोग की क्रिया को प्राप्त किया है और न अशुभपयोग की क्रिया को छोड़ी। ऐसे व्यक्ति के लिए मैंने (कनकनन्दी) एक छन्द बनाया है। यथा-

वीतराग की चर्चा, राग की चर्या, पुण्य की निंदा, पाप का धंधा।
मुमुक्षु की गोष्ठी, बुभुक्षु की दृष्टि, वातानुकूल में वास, मतानुकूल शास्त्र।।

हीन गुण वाले मुनि को वंदना करने वाला गुणाधिक मुनि भी भ्रष्ट

अधिगगुणा सामण्णे वट्टंति गुणाधरेहिं किरियासु।

जदि ते मिच्छुवजुत्ता हंवति पब्भट्टचारित्ता।। (267) प्र.सा.

If monks possessing of more merits with regard to their asceticism, remain practising (their duties) with (or in the company of) those of inferior merits, they are victims of false fait and lose their conduct.

(सामण्णे) मुनिपने के चारित्र में (अधिगगुणा) उत्कृष्ट गुणधारी साधु (जदि) जो (गुणाधेरेहिं) गुणहीन साधुओं के साथ (किरियासु) वंदना आदि क्रियाओं में (वट्टंति) वर्तन करते हैं (ते) वे (मिच्छुवजुत्ता) मिथ्यात्व-सहित तथा (पब्भट्ट चारित्ता) चारित्र रहित (हवंति) हो जाते हैं। यदि कोई बहुत शास्त्र के ज्ञाताओं के पास स्वयं चारित्र गुणों में अधिक होने पर भी अपने ज्ञानादि गुणों की वृद्धि के लिए वंदना आदि क्रियाओं में वर्तन करे तो दोष नहीं है। परन्तु यदि अपनी बड़ाई व पूजा के लिए उनके साथ वंदनादि क्रिया करे तो मर्यादा उल्लंघन से दोष है। यहाँ पर तात्पर्य यह है कि जिस जगह वंदना आदि क्रिया के व तत्त्व विचार आदि के लिए वर्तन करे परन्तु राग-द्वेष की उत्पत्ति हो जावे उस जगह सर्वत्र दोष ही है। यहाँ कोई शंका करे कि यह तो तुम्हारी ही कल्पना है, आगम में यह बात नहीं है?

समाधान-ऐसा नहीं हैं, क्योंकि सर्व ही आगम राग-द्वेष के त्याग के लिए ही है किन्तु जो कोई साधु उत्सर्ग और अपवाद रूप (निश्चय व्यवहाररूप) आगम में कहे हुए नय विभाग को नहीं जानते हैं वे ही राग-द्वेष करते हैं, अन्य राग-द्वेष नहीं करते।

समीक्षा-जैन धर्म में जो वंदन, नमस्कार, पूजादि क्रियाएँ हैं उसमें महान् आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धांत समाहित है। वह सिद्धांत यह है कि-'वंदे तद्गुण लब्धये' अर्थात् उनके गुणों की उपलब्धि के लिए वंदन करता हूँ क्योंकि यह सुप्रसिद्ध सिद्धांत है कि, जिसके पास जो है वह दूसरों को दे सकता है परन्तु जिसके पास जो नहीं है वह दूसरों को नहीं दे सकता है। परमाणु सिद्धांत के अनुसार तथा बंध सिद्धांत के अनुसार भी जो परमाणु या स्कंध अधिक गुण वाला होता है वह कम गुण वाले को अपने स्वरूप बना लेता है। यथा-

बन्धेऽधिकौ परिणामिकौ च। त.सू.अ.5 सू.37

बंध होने पर अधिक गुण वाला न्यून गुण वाले को अपने रूप में परिणमन करा

लेता है।

जैसे-अधिक गरम पानी कम गरम पानी में मिलाने पर अधिक गरम पानी का ताप कम गरम पानी में प्रवेश करता है और दोनों का ताप जब तक समान नहीं होता है तब तक अधिक गरम पानी का ताप कम गरम पानी में प्रवेश करता रहता है परन्तु यह कभी संभव नहीं है कि कम गरम पानी का ताप अधिक गरम पानी में प्रवेश करे। इसी प्रकार कम गुण वाला अधिक गुण वाले का विनय आदि गुण प्राप्त करने के लिए करता है। परन्तु अधिक गुण वाला कम गुण वाले को पहले अधिक गुण वाले के जैसी विनय करेगा तो वह अधिक गुण वाला भी अयोग्य आचरण करने के कारण भ्रष्ट है। इस गाथा की टीका में जयसेन आचार्य ने यह सिद्ध किया कि एक श्रमण अधिक चारित्र वाला होते हुए भी यदि कम चारित्र वाले परन्तु अधिक ज्ञानी श्रमण की वंदना आदि क्रिया करने पर दोषी नहीं है क्योंकि उनका उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना है। इसका सविस्तृत वर्णन मैंने इसी पुस्तक ब्रह्मचारिणी हैं ज्ञान प्राप्ति के लिए भी श्रमण उनको नमन आदि न करें। कुंदकुंद देव ने दर्शन पाहुड में कहा भी है-

अस्संजदं ण वंदे वच्छविहीणोवि सो ण वंदिज्ज।
दुण्णिवि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि।। (26) पृ. 45

असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिए और जो वस्त्र रहित होकर भी असंयमी है वह भी नमस्कार के योग्य नहीं है। ये दोनों ही समान हैं, दोनों में एक भी संयमी नहीं है।

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुण हीणो ण हु सवणो णेव सावओ होइ।। (27)

न शरीर की वंदना की जाती है, न कुल की वंदना की जाती है। किस गुणहीन की वंदना करूँ? क्योंकि गुणहीन मनुष्य न मुनि है और न श्रावक ही है।

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो।। (28) पृ. 3

जिनेन्द्र भगवान् ने शिष्यों के लिए सम्यग्दर्शनमूलक धर्म का उपदेश दिया है। सो उसे अपने कानों से सुनकर सम्यग्दर्शन से रहित मनुष्य की वंदना नहीं करना चाहिए।

जे पि पंडति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभयेण।

तेसिं पि णत्थि बोहि पावं अणुमोअमाणाणं।। (13 पृ. 28)

जो जानते हुए भी लज्जा, गर्व और भय के कारण उन मिथ्यादृष्टियों के चरणों में पड़ते हैं उन्हें-'नमोस्तु' आदि करते हैं। पाप की अनुमोदना करने वाले उन लोगों को रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती है।

अथ सागारेतरयत्यत्योरवन्दनीयात्रिर्दिशति-

श्रावकेणापि पितरौ गुरू राजाऽप्यसंयताः।

कुलिंगिनः कुदेवाश्च न वन्द्याः सोऽपि संयतैः।। (52) पृ. 591 अ.ध.

श्रावकेणापि-यथोक्तानुष्ठाननिष्ठेन सागारेणापि किं पुनरगोरेणेत्यपि शब्दार्थः। गुरूः दिक्षागुरुश्च। कुलिंगिनः-तपसादयः पार्श्वस्थादयश्च। कुदेवाः-रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च। सोऽपि-शास्त्रोपदेशादिकारी श्रावकोऽपि।

देश संयमी श्रावकों और मुनियों को जिनकी वंदना नहीं करनी चाहिए उनका निर्देश करते हैं-

मुनि की तो बात क्या, यथोक्त अनुष्ठान करते हुए श्रावकों को भी माता-पिता शिक्षा-दीक्षा गुरु और राजा यदि असंयमी हो तो उनकी वंदना नहीं करना चाहिए तथा तापस आदि और पार्श्वस्थ आदि कुलिंगियों की व रूद्रआदि और शासन देवता आदि कुदेवों की भी वंदना नहीं करना चाहिए और श्रावक यदि शास्त्रोपदेश का अधिकारी भी हो तो भी उसकी वंदना को नहीं करनी चाहिए।

आचारसार में वंदन अयोग्य साधुओं का वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

ये दोषान्वेषिणोऽन्येषां सद्गुणावर्णवर्णनाः।

तपस्विनोऽपि पार्श्वस्था ये च वंद्या न ते यतेः।। (63) पृ. 33

जो मुनि दूसरों के दोषों का कथन करता है तथा उनके सद्गुणों का आच्छादन करता है अथवा जो पार्श्वस्थ मुनि हैं वे साधुओं के द्वारा वंदनीय नहीं है।

रहस्यात्मक शोधपूर्ण कविता

'है' ही वास्तविक, 'नहीं' है सापेक्ष!

(विश्व में केवल सत्य है, असत्य का अस्तित्व नहीं!)

(चाल : सायोनारा....., आत्मशक्ति....., छोटी-छोटी.....)

सत्य का ही अस्तित्व होता है विश्व में...सत्य बिन कुछ न होता है विश्व में...

शुद्ध-अशुद्ध व सापेक्ष दृष्टि से...अनेक/(अनंत) रूप होता सत्य ही विश्व में...(स्थायी)...
संपूर्ण विश्व होता महान् सत्तामय...षट् द्रव्य होते अवान्तर सत्तामय...
सप्त तत्त्व होते शुद्ध-अशुद्धमय...इनके (ही) भेद-प्रभेद हैं अनंत सत्तामय...
अनेकांतमय होता है यह सत्य...स्याद्वाद द्वारा ही होता है कथित...
अस्ति-नास्ति आदि होते हैं सप्तभंग...अस्ति के सापेक्ष/(विकल्प) ही होते सभी भंग...(1)...
द्रव्य तत्त्व व पर्याय होते हैं सत्य/(सत्, अस्तित्व)...स्व-चतुष्टय में वे होते हैं अस्तित्व...
पर-चतुष्टय में वे होते हैं नास्तिरूप...युगपत् कथन में होते हैं अवक्तव्य...
यथा जीव स्वयं में होता है सत्य...पुद्गल आदि भी स्वयं होते हैं सत्य...
जीव न होता पुद्गल आदि स्वरूप...इसी अपेक्षा जीव है नास्ति स्वरूप...(2)...
आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष...जीव-पुद्गल के होते मिश्र स्वरूप...
मिश्र स्वरूप भी है अशुद्ध स्वरूप...शुद्ध की दृष्टि से ये नास्ति स्वरूप...
नास्ति स्वरूप भी नहीं है मिथ्या/(शून्य) रूप...मिथ्या होने से संसार होगा मिथ्या
रूप/(अवास्तविक)
प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है संसार रूप...अज्ञान-मिथ्यात्व आदि हैं सापेक्ष सत्य...(3)...
प्रकाश व तम यथा दोनों अस्ति रूप...अस्ति-नास्ति तथा ही सापेक्ष सत्य...
(संपूर्ण) अस्तित्वहीन का न होना संभव...मिथ्या/(नास्ति) का भी न संपूर्ण अस्तित्वहीन...
पूर्ण असत्य का कभी न ज्ञान संभव...परिकल्पना-अनुमान भी नहीं संभव...
ज्ञान-ज्ञेय संबंध है यह सिद्धांत...वाच्य-वाचक संबंध है यह सिद्धांत...(4)...
मिथ्या कथन भी सदा सापेक्ष होता...निरपेक्ष कथन भी सदा मिथ्या ही होता...
सत्य-असत्य सभी हैं सापेक्ष सत्य...अनंत स्वरूप होता है परम सत्य...
सर्वज्ञ ज्ञानगम्य यह पूर्ण विषय...आगम-अनुभव से भी ये सब गम्य...
सामान्यजन से परे है यह विषय...'कनकनन्दी' को प्रिय है यह विषय...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 05.03.2016, रात्रि 8.38

(यह कविता प्रवचनसार व नयचक्र से भी प्रभावित है।)

संदर्भ-

वैश्विक-सार्वभौम-परम सत्य का लक्षण

द्रव्य का लक्षण

सद्द्रव्य लक्षणम् ।।29।।

The differentia of a substance or Reality is sat, isness or being.

द्रव्य का लक्षण सत् है।

यह विश्व शाश्वतिक है। क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक है। आधुनिक विश्व में भी सिद्ध हो गया है कि शक्ति या मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती है, परन्तु परिवर्तन होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है-

Matter and energy neither be created nor destroyed. Each can be completely changed into another form or into one another.

विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त हैं कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियदि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।

दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।। (9) (पंचास्तिकाय)

What flows or maintains its identity through its several qualities and modifications and what is not different from satta or substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है-प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं-जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्ययधुवत्तसंजुत्तं।

गुणंपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।। (10)

Whatever has substantiality, has the dialectical triad of birth, death and permanence, and is the substratum of qualities and modes is Dravya. So say the all-knowing.

जो सत् लक्षण वाला है, जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुण पर्यायों को आश्रय-आधार है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं।

प्रवचनसार में भी कुन्दकुन्द देव ने कहा है-

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं।

दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं।। (96) (प्रवचनसार, पृ. 227)

अनेक प्रकार के गुण तथा अनेक प्रकार की अपनी पर्यायों से और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से सर्वकाल में द्रव्य का जो अस्तित्व है वह वास्तव में स्वभाव है।

अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है और वह (अस्तित्व)

(1) अन्य साधन से निरपेक्ष होने के कारण से,

(2) अनादि-अनन्त, अहेतुक, एकरूप वृत्ति से सदा ही प्रवृत्त होने के कारण से,

(3) विभाव धर्म से विलक्षण होने से,

(4) भाव और भाववानता के भाव से अनेकत्व होने पर भी प्रदेश-भेद न होने से, द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न हो? (अवश्य होवे) वह अस्तित्व, जैसे भिन्न-भिन्न द्रव्यों में प्रत्येक में समाप्त नहीं हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्य, गुण और पर्याय एक-दूसरे से परस्पर सिद्ध होते हैं-यदि एक न हो तो दूसरे दो भी सिद्ध नहीं होते, (इसीलिये) उनका अस्तित्व एक ही है।

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।

उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं।। (97)

धर्म का उपदेश करने वाले जिनवर वृषभ के द्वारा इस विश्व में विविध लक्षण वाले द्रव्यों का वास्तव में 'सत्' ऐसा सर्वगत (सबमें व्यापने वाले) एक लक्षण कहा गया है। वास्तव में इस विश्व में विचित्रता को विस्तारित करते हुए (विविधता अनेकत्व को दिखाते हुए) अन्य द्रव्यों से व्यावृत्त (भिन्न) रहकर वर्तमान और प्रत्येक द्रव्य की सीमा को बाँधते हुए ऐसे विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्व से लक्षित भी सर्व द्रव्यों की विचित्रता के विस्तार को अस्त करता हुआ सर्व द्रव्यों में प्रवृत्त होकर रहने वाला और प्रत्येक द्रव्य की बँधी हुई सीमा को भेदता (तोड़ता) हुआ 'सत्' ऐसा जो सर्वगत सामान्य लक्षणभूत एक सादृश्यास्तित्व है, वह ही वास्तव में एक ही जानने योग्य है। इस प्रकार 'सत्' ऐसा कथन और 'सत्' ऐसा ज्ञान सर्व पदार्थों का परामर्श (स्पर्श ग्रहण) करने वाला है। यदि वह ऐसा (सर्व पदार्थ परामर्शी) न हो तो कोई पदार्थ सत्, कोई असत् और कोई अवाच्य होना चाहिए, किन्तु वह तो निषिद्ध ही है और यह (सत् ऐसा कथन और ज्ञान के सर्व पदार्थ परामर्शी होने की

बात) तो सिद्ध हो सकती है।

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादा। (98)

द्रव्य स्वभाव से ही सिद्ध और स्वभाव से ही सत् है-ऐसा जिनेन्द्र देव ने यथार्थतः कहा है, इस प्रकार आगम से सिद्ध है।

वास्तव में द्रव्यों से द्रव्यान्तरों की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सर्व द्रव्यों के स्वभावसिद्धपना है (सर्व द्रव्य पर द्रव्य की अपेक्षा बिना अपने स्वभाव से ही सिद्ध है) उनकी स्वभावसिद्धता तो उनकी अनादिनिधनता है, क्योंकि अनादिनिधन अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखता। वह (द्रव्य) गुण-पर्यायात्मक अपने स्वभाव को ही जो कि मूल साधन है, धारण करके स्वयंमेव सिद्ध और सिद्धि वाला हुआ वर्तता है। जो द्रव्यों में उत्पन्न होता है वह तो द्रव्यान्तर नहीं है, (किन्तु) कदाचित् अर्थात् कथंचित् (अनित्यता) के होने से वह पर्याय है। जैसे-द्वि-अणुक आदि तथा मनुष्य इत्यादि द्रव्य तो अनवधि (मर्यादारहित) त्रिसमय-अवस्थायी (त्रिकाल-स्थायी) है, (इसीलिये) वैसा (कादाचित्क-क्षणिक-अनित्य) नहीं है।

ण हवदि जदि सद्दव्वं असद्धुव्वं हवदि तं कहं दव्वं।
हवदि गुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता।। (105)

यदि द्रव्य स्वरूप से ही सत् न हो तो निश्चित असत् होगा। जो असत् होगा वह द्रव्य कैसे हो सकता है? (अर्थात् नहीं हो सकता) अथवा यदि असत् न हो तो वह सत्ता से अन्य पृथक् होगा? सो भी कैसे हो सकता है? इसीलिये द्रव्य स्वयं ही सत्ता रूप है। यदि द्रव्य स्वरूप से ही सत् न हो तो उसकी दो गति यह होगी कि वह (1) असत् होगा अथवा (2) सत्ता से पृथक् होगा। उनमें से यदि असत् होगा तो ध्रौव्य के असम्भव होने से स्वयं को स्थिर न रखता हुआ द्रव्य ही लोप हो जाएगा और यदि सत्ता से पृथक् होगा तो सत्ता के बिना भी अपनी सत्ता रखता हुआ इतने द्रव्य की सत्ता रखने मात्र प्रयोजन वाली सत्ता का लोप कर देगा।

स्वरूप से ही सत् होता हुआ (1) ध्रौव्य के सद्भाव के कारण स्वयं को स्थिर रखता हुआ द्रव्य उदित होता है (अर्थात् सिद्ध होता है) और (2) सत्ता से पृथक् रहकर (द्रव्य) स्वयं को स्थिर (विद्यमान) रखता हुआ इतने ही मात्र प्रयोजन वाली सत्ता को उदित (सिद्ध) करता है। इसीलिये द्रव्य स्वयं ही सत्व (सत्ता) रूप से स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि भाव और भाववान (द्रव्य) का अपृथक्त्व द्वारा

अन्यत्व है प्रदेश भेद न होते हुए संज्ञा-संख्या लक्षण आदि द्वारा अन्यत्व है।

पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स।

अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं होदि कधमेगं।। (106)

जिसमें प्रदेशों की अपेक्षा अत्यन्त भिन्नता हो वह पृथक्त्व है। ऐसे श्री महावीर भगवान् की आज्ञा है। स्वरूप की एकता का न होना अन्यत्व है। ये सत्ता और द्रव्य एक स्वरूप नहीं है तब किस तरह दोनों एक हो सकते हैं? जहाँ प्रदेशों की अपेक्षा एक-दूसरे से अत्यन्त पृथक्पना हो अर्थात् प्रदेश भिन्न-भिन्न हो जैसे दण्ड और दण्डी में भिन्नता है। इसको पृथक्त्व नाम का भेद कहते हैं। इस तरह पृथक्त्व या भिन्नपना शुद्ध आत्मद्रव्य की शुद्ध-सत्ता गुण के साथ नहीं सिद्ध होता है, क्योंकि इनके परस्पर प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं हैं। जो द्रव्य के प्रदेश हैं वे ही सत्ता के प्रदेश हैं। जैसे-शुक्ल वस्त्र और शुक्ल गुण का स्वरूप भेद है, परन्तु प्रदेश भेद नहीं है-ऐसे गुणी और गुण के प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं होते। ऐसे श्री वीर नाम के अन्तिम तीर्थंकर परमदेव की आज्ञा है। जहाँ संज्ञा लक्षण प्रयोजन आदि से परस्पर स्वरूप की एकता नहीं है वहाँ अन्यत्व नाम का भेद है ऐसा अन्यत्व या भिन्नपना मुक्तात्मा द्रव्य और उसके शुद्ध सत्ता गुण में है। यदि कोई कहे कि जैसे सत्ता और द्रव्य में प्रदेशों की अपेक्षा अभेद है वैसे संज्ञादि लक्षण रूप से भी अभेद हो ऐसा मानने से क्या दोष होगा? इसका समाधान करते हैं कि ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं है। वह मुक्तात्मा द्रव्य शुद्ध अपने सत्ता गुण के साथ प्रदेशों की अपेक्षा अभेद होते हुए भी संज्ञा आदि के द्वारा सत्ता और द्रव्य तन्मयी नहीं है। तन्मय होना ही निश्चय से एकता का लक्षण है, किन्तु संज्ञादि रूप से एकता का अभाव है। सत्ता और द्रव्य में नानापना है। जैसे यहाँ मुक्तात्मा द्रव्य में प्रदेश के अभेद होने पर भी संज्ञादिरूप से नानापना कहा गया है, तैसे ही सर्व द्रव्यों का अपने-अपने स्वरूप सत्ता गुण के साथ नानापना जानना चाहिए, ऐसा अर्थ है।

परम सत्य की परिणमनशीलता

सत् का लक्षण

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।। (30)

Sat (is a) simultaneous possession (of) (उत्पाद) Coming into existence birth.

व्यय-Going out of existence, decay, and

ध्रौव्य-Continuous sameness of existence, permanence.

जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है वह सत् है।

द्रव्य सत् स्वरूप है। सत् स्वरूप होने के कारण द्रव्य अनादि से है तथा अन्त तक रहेगा। तथापि यह सत् अपरिवर्तन नहीं है, बल्कि नित्य परिवर्तनशील है। नित्य परिवर्तनशील होते हुए भी इनका नाश नहीं होता है, इसीलिये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का सदा सद्भाव होता है, इसीलिये ये सदा सत् स्वरूप ही रहते हैं।

उत्पाद-स्वजाति को न छोड़ते हुए भावान्तर (पर्यायान्तर) की प्राप्ति उत्पाद है। चेतन या अचेतन द्रव्य का स्वजाति को न छोड़ते हुए भी जो पर्यायान्तर की प्राप्ति है वह उत्पाद है। जैसे-मृत्पिण्ड में घट पर्याय अर्थात् मिट्टी जैसे अपने स्वभाव को छोड़कर घट पर्याय से उत्पन्न होती है। वह घट उसका उत्पाद है। उसी प्रकार जीव या पुद्गलादि अजीव पदार्थ अपने स्वभाव को न छोड़कर पर्यायान्तर से परिणमन करते हैं।

व्यय-उसी प्रकार स्वजाति को न छोड़ते हुए पूर्व पर्याय के विनाश को व्यय कहते हैं। स्वजाति को न छोड़ते हुए चेतन वा अचेतन पदार्थ की पूर्व पर्याय का जो नाश होता है वह 'व्यय' है। जैसे कि घट की उत्पत्ति होने पर मिट्टी के पिण्डाकार का नाश होता है।

ध्रौव्य-ध्रुव-स्थैर्य कर्म का स्थिर रहना ध्रौव्य है। अनादि परिणामिक स्वभाव से व्यय और उत्पाद का अभाव है। अर्थात् अनादि परिणामिक स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य का उत्पाद-व्यय नहीं होता है, द्रव्य ध्रुव रूप से रहता है अर्थात् स्थिर रहता है, उसको ध्रुव कहते हैं और ध्रुव का जो भी भाव या कर्म है, वह ध्रौव्य कहलाता है। जैसे कि पिण्ड और घट दोनों अवस्थाओं में मृदुपना का अन्वय रहता है।

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो।
दव्वगुण पज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो।। (10) (प्रवचनसार)

लोक में परिणाम के बिना पदार्थ नहीं है और पदार्थ के बिना परिणाम नहीं है। द्रव्य, गुण व पर्याय में रहने वाला पदार्थ अस्तित्व से बना हुआ है।

उत्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स।
पज्जाएण दु केणवि अट्ठो खलु होदि सब्भूदो।। (18)

जैसे इस लोक में शुद्ध स्वर्ण के बाजूबन्द (रूप) पर्याय से उत्पाद देखा जाता है, पूर्व अवस्था रूप से वर्तने वाली अँगूठी इत्यादि पर्याय से विनाश देखा जाता है और पीलापन आदि पर्याय से तो दोनों में (बाजूबन्द और अँगूठी में) उत्पत्ति विनाश को प्राप्त न होने वाले (सुवर्ण) ध्रौव्यत्व दिखाई देता है, इसी प्रकार सर्व द्रव्यों के किसी पर्याय से उत्पाद, किसी (पर्याय) से विनाश और किसी पर्याय से ध्रौव्य होता है। ऐसा जानना चाहिए।

अपरिच्चत्त सहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं।
गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वं ति वुच्चंति।। (95)

स्वभाव को छोड़े बिना जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है तथा गुणयुक्त और पर्याय सहित है 'द्रव्य' ऐसा कहते हैं।

यहाँ (इस विश्व में) वास्तव में जो स्वभाव भेद किये बिना उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य त्रय से और गुण, पर्याय द्वय से लक्षित होता है। इनमें से (स्वभाव, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, गुण और पर्याय में से) वास्तव में द्रव्य का स्वभाव अस्तित्व सामान्य रूप अन्वय है, अस्तित्व को तो दो प्रकार का आगे कहेंगे-(1) स्वरूप अस्तित्व, (2) सादृश्य अस्तित्व। उत्पाद, प्रादुर्भाव (प्रगट होना-उत्पाद होना) है, व्यय प्रच्युति (नष्ट होना) है, ध्रौव्य अवस्थिति (टिकना) है। गुण, विस्तार विशेष हैं। वे सामान्य-विशेषात्मक होने से दो प्रकार के हैं। इनमें अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, भोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व इत्यादि सामान्य गुण हैं। अवगाहहेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिकारणत्व, वर्तनायतनत्व, रूपादिमत्व, चेतनत्व इत्यादि विशेष गुण हैं। पर्याय आयत विशेष हैं। द्रव्य का उन उत्पादादि के साथ अथवा गुण पर्यायों के साथ लक्ष्य लक्षण भेद होने पर भी स्वरूप भेद नहीं है (सत्ता भेद नहीं है) स्वरूप से ही द्रव्य वैसा होने से (अर्थात् द्रव्य ही स्वयं उत्पादादि रूप तथा गुण-पर्याय रूप परिणमन करता है, इस कारण स्वरूप भेद नहीं है।)

सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो।। (99)

स्वभाव में अवस्थित सत् द्रव्य है, द्रव्य का गुण-पर्यायों में जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित परिणाम है वह उसका स्वभाव है।

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।

उत्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण।। (100)

वास्तव में उत्पाद, व्यय के बिना नहीं होता और व्यय, उत्पाद के बिना नहीं होता तथा उत्पाद और व्यय स्थिति (ध्रौव्य) के बिना नहीं होते और ध्रौव्य उत्पाद तथा व्यय के बिना नहीं होता।

अविनश्वरत्व का सिद्धान्त

नित्य का नियम

तद्भावाव्ययं नित्यम्।। (31)

Parmanence means indestructibility of the essence or the quality of the substance.

उसके भाव से (अपनी जाति से) च्युत न होना नित्य है।

जो प्रत्यभिज्ञान का कारण है वह तद्भाव है, 'वही यह है' इस प्रकार के स्मरण को 'प्रत्यभिज्ञान' कहते हैं। वह अकस्मात् तो होता नहीं, इसीलिये जो इसका कारण है वही तद्भाव है। इसकी निरुक्ति 'भवनं भावः, तस्य भावः तद्भावः' इस प्रकार होती है। तात्पर्य यह है कि पहले वस्तु को जिस रूप देखा है उसी रूप उसके पुनः होने से 'वही यह है' इस प्रकार का प्रत्यभिज्ञान होता है। यदि पूर्व वस्तु का सर्वथा नाश हो जाये या सर्वथा नई वस्तु का उत्पाद माना जाये तो इससे स्मरण की उत्पत्ति नहीं हो सकती और स्मरण की उत्पत्ति न हो सकने से स्मरण के आधीन जितना लोक-संव्यवहार चालू है वह सब विरोध को प्राप्त होता है, इसीलिये जिस वस्तु का जो भाव है उस रूप से च्युत न होना तद्भावाव्यय अर्थात् नित्य है ऐसा निश्चित होता है, परन्तु इसे कथंचित् जानना चाहिए। यदि सर्वथा नित्यता मान ली जाये तो परिणमन का सर्वथा अभाव प्राप्त होता है और ऐसा होने से पर संसार और इसकी निवृत्ति के कारण रूप प्रक्रिया का निषेध (अभाव) प्राप्त होता है।

तत्त्वार्थसार में कहा भी है-

द्रव्याण्येतानि नित्यानि तद्भावान्न व्ययन्ति यत्।
प्रत्यभिज्ञानहेतुत्वं तद्भावस्तु निगद्यते।। (14)

ये द्रव्य नित्य हैं, क्योंकि अपने स्वभाव से नष्ट नहीं होते। अपना स्वभाव ही प्रत्यभिज्ञान का कारण कहा जाता है।

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।

गुणपज्जयेसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति।। (15) (पंचास्तिकाय)

सत् द्रव्य का द्रव्यरूप से विनाश नहीं है, अभाव का असत् अन्य द्रव्य का द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है, परन्तु भाव सत् द्रव्ये, सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही, गुणपर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में गोरस का-सत् का-विनाश नहीं है तथा गोरस से भिन्न पदार्थान्तर का-असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु गोरस को ही सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही पूर्व अवस्था से विनाश को प्राप्त होने वाले और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होने वाले स्पर्श-रस गंध-वर्णादिक परिणामी गुणों में मक्खन पर्याय विनाश को प्राप्त होती है तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है, सर्वभावों का भी उसी प्रकार वैसा ही है (अर्थात् समस्त द्रव्यों का नवीन पर्याय की उत्पत्ति में सत् का विनाश नहीं है तथा असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही पहले की (पुरानी) अवस्था से विनाश को प्राप्त होने वाले और बाद की (नवीन) अवस्था से उत्पन्न होने वाले परिणामी गुणों में पहले की पर्याय का विनाश और बाद की पर्याय की उत्पत्ति होती है।)

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकाल अत्थपज्जाये।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो।। (581)

अवस्थान-स्थिति छहों द्रव्यों की समान है। क्योंकि त्रिकाल सम्बन्धी अर्थपर्याय वा व्यंजनपर्याय के मिलने से ही उनकी स्थिति होती है।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं।। (582)

एक द्रव्य में जितनी त्रिकाल सम्बन्धी अर्थपर्याय और व्यंजन पर्याय हैं उतना ही द्रव्य है। (गोम्मट्टसार जीवकाण्डम्, पृ. 265)

विश्वगुरु सापेक्ष (अनेकान्त सिद्धान्त)

वस्तु स्वरूप की सिद्धि

अर्पितानर्पितसिद्धेः।। (32)

The contradictary characteristics are established from different points of view.

मुख्यतया और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी मालूम पड़ने

वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है।

द्रव्य में अनन्त गुण एवं पर्याय होती हैं। उन अनन्त गुणों एवं पर्यायों का कथन एक साथ नहीं हो सकता है, परन्तु उस द्रव्य को जानना अनिवार्य है, क्योंकि द्रव्य के यथार्थ ज्ञान बिना रत्नत्रय की उपलब्धि नहीं हो सकती एवं रत्नत्रय के बिना मोक्षमार्ग नहीं हो सकता, मोक्षमार्ग के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता और मोक्ष के बिना शाश्वतिक सुख नहीं मिल सकता है। इसीलिये यहाँ पर वस्तु स्वरूप के यथार्थ परिज्ञान की सर्वश्रेष्ठ व्यावहारिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक प्रणाली का वर्णन किया गया है।

धर्मान्तर को विवक्षा से प्राप्त प्राधान्य अर्पित कहलाता है। अनेक धर्मात्मक वस्तु के प्रयोजन वश जिस धर्म की विवक्षा की जाती है या विवक्षित जिस धर्म को प्रधानता मिलती है, उसे-अर्थरूप को अर्पित (मुख्य) कहते हैं।

अर्पित से विपरीत अनर्पित (गौण) है। प्रयोजक के प्रयोजन का (वक्ता की इच्छा का) अभाव होने से सत् (विद्यमान) पदार्थ की भी अविवक्षा हो जाती है। अतः उपसर्जनीभूत (गौण) पदार्थ अनर्पित (अविवक्षित) कहलाता है। वस्तु स्वरूप को जानने की जो गौण-मुख्य व्यवस्था है उसका व्यावहारिक सटीक वर्णन अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थसिद्धि ग्रन्थ में वर्णन किया है। यथा-

एकेनाकर्षती श्लथयंती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मथाननेत्रमिव गोपी।। (225)

जिस प्रकार ग्वालिन दही को बिलोती हुई एक रस्सी को अपनी ओर खींचती है, दूसरी रस्सी को ढीली करती है। यद्यपि रस्सी एक होने पर भी रई में लिपटी हुई रहने के कारण दो भागों में बँट जाती है, उसे गोपिका दोनों हाथों में पकड़कर दही बिलोती है। जिस समय वह एक हाथ से एक ओर की रस्सी को अपनी ओर खींचती है, उसी समय दूसरे हाथ की रस्सी को ढीली कर देती है अर्थात् उसे आगे बढ़ा देती है, इस प्रकार परस्पर एक को खींचने से दूसरी को ढीली करने से वह मक्खन (लोणी) निकाल देती है। यदि ग्वालिनी एक साथ दोनों छोर को समान बल से खींचती एवं छोड़ती तो मथनी गतिशील नहीं बनती और मक्खन भी नहीं निकलता। इसी प्रकार वस्तु स्वरूप के परिज्ञान के लिए विवक्षित विषय को मुख्य कर दिया जाता है एवं अविवक्षित विषय को गौण किया जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि विवक्षित गुण, धर्म वस्तु में है एवं अविवक्षित गुण, धर्म वस्तु से पृथक् होकर लोप हो

गये हो। इसको ही जैन धर्म में नयवाद या स्याद्वाद कहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक युग के महामेधावी वैज्ञानिक आईंस्टीन ने भी इस अनेकान्त सिद्धान्त को स्वीकार किया है। वे भी मानते हैं कि प्रत्येक वस्तु का कथन सापेक्ष दृष्टि से होना चाहिए। आईंस्टीन यहाँ तक मानते हैं कि जब तक जीव असर्वज्ञ रहेगा तब तक वह सम्पूर्ण सत्य को नहीं जान सकता, केवल आंशिक सत्य को जान सकता है। इस आंशिक सत्य को आंशिक सत्य मानना सम्यक् है एवं आंशिक सत्य को ही पूर्ण सत्य मान लेना मिथ्या है। यथा-

Einstain says, 'we can only know the relative truth the real truth is know only to the universal observer.

आईंस्टीन के सापेक्षवाद के अनुसार हम जब जो जानते हैं, वह सम्पूर्ण सत्य (Absolute truth) नहीं है, किन्तु सापेक्षिक सत्य है। (Relative truth) है, सम्पूर्ण सत्य सर्वदर्शी सर्वज्ञ के द्वारा ही जाना जा सकता है।

सन्मति सूत्र में सिद्धसेन दिवाकर ने बताया कि अनेकान्त केवल वस्तु स्वरूप को प्रतिपादन करने वाली दार्शनिक प्रणाली नहीं है, परन्तु लोक व्यवहार को सुचारू रूप से व्यवस्थित करने के लिए लौकिक प्रणाली भी है।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडई।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स।। (69)

जिस अनेकान्तवाद के बिना लोकव्यवहार भी नहीं चलता है उस जगत् का एकमेव गुरु अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार हो।

जैसे रामचन्द्र एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे लव, कुश की अपेक्षा पिता, दशरथ की अपेक्षा पुत्र, लक्ष्मण की अपेक्षा बड़े भाई, सीता की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई), सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण की अपेक्षा शत्रु, हनुमान की अपेक्षा प्रभु आदि अनेक धर्म से युक्त थे। राम एक होते हुए भी दशरथ की अपेक्षा पुत्र होते हुए भी लव-कुश की अपेक्षा पिता रूप विरोधी गुण से युक्त थे। तो भी अपेक्षा की दृष्टि से कोई प्रकार का विरोध नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य गुण अपने-अपने स्थान पर अविरुद्ध एवं उपयुक्त है। विशेष ज्ञान के लिए मेरा 'अनेकान्त दर्शन' का अध्ययन करें।

100 संख्या 10 संख्या की अपेक्षा अधिक होते हुए भी 1000 संख्या की अपेक्षा कम है। जैसे-सेवफल नारियल से छोटा होते हुए भी आँवले की अपेक्षा बड़ा

है। आँवला सेवफल से छोटा होने पर भी इलायची की अपेक्षा बड़ा है। घी निरोगी के लिए शक्तिदायक होते हुए भी ज्वर रोगी के लिए हानिकारक है। अग्नि चिमनी में रहते हुए उपकारक है, परन्तु पेट्रोल-टंकी में डालने पर अपकारक है। अग्नि एक होते हुए भी पाचकत्व, दाहकत्व, प्रकाशकत्व आदि गुणों के कारण अनेक भी हैं।

यह अनेकान्त मानसिक अहिंसा है, क्योंकि इसमें एकान्तवाद, हठाग्रह, पूर्वाग्रह नहीं है। अनेकान्त सिद्धान्त दूसरों के सत्यांश को भी स्वीकार करता है। अनेकान्त का सिद्धान्त है Right is Mine अर्थात् जो सत्य है वह मेरा है। उसका दावा यह नहीं कि Mine is Right अर्थात् मेरा जो है वह सत्य है। अनेकान्त वस्तु स्वरूप तथा भावात्मक अहिंसा है तथा स्याद्वाद कथन प्रणाली या वचनात्मक अहिंसा है। इस अनेकान्त का स्पष्टीकरण करने के लिए और कुछ सरल उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसे-दो इंच लंबी वाली रेखा एक इंच वाली रेखा से लंबी है तथा तीन इंच लंबी रेखा से छोटी भी है। अनामिका अंगुली कनिष्ठा से बड़ी है, परन्तु मध्यमा से छोटी भी है। इसी प्रकार दिशा आदि में भी जान लेना चाहिए। जैसे एक व्यक्ति के लिए दूसरा व्यक्ति पूर्व में है तो पहला व्यक्ति उसके लिए पश्चिम में होगा।

मनोवैज्ञानिक-कर्म सैद्धांतिक व आध्यात्मिक शोधपूर्ण कविता

मैं सब कुछ मेरे (स्व) हित हेतु कर रहा हूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : छोटी-छोटी गैया....., यमुना किनारे.....)

(स्व) आत्महित हेतु ही मैं सभी करता हूँ, ध्यान-अध्ययन व लेखन करता हूँ।
अध्यापन-प्रवचन-शिविर-संगोष्ठी, शंका समाधान (आदि) स्वहित में करता हूँ।। (1)

ज्ञान-वैराग्य व तप त्याग संयम, क्षमादि दश धर्म रत्नत्रय आराधन।
स्व-परहित हेतु मेरी जो भावना, देश-विदेशों में धर्म की प्रभावना।। (2)

गुण-गुणी-प्रशंसा व दोष अकथन, निंदा-चुगली व वाद-विवाद वर्जन।
ख्याति-पूजा-लाभ व प्रसिद्धि वर्जन, भौतिक-निर्माण (व) परिग्रह-विसर्जन।। (3)

सामाजिक लंद-फंद (व) चंदा-चिट्ठा वर्जन, भीड़ व वर्चस्व हेतु धर्म के काम।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा-विसर्जन, एकांत-मौन-निस्पृह-निष्काम।। (4)

धर्म-दर्शन व विज्ञान का अध्ययन, न्याय राजनीति-संविधान का ज्ञान।

इतिहास पुराण व तर्क-व्याकरण, सब कुछ ज्ञान करता हूँ स्वहित प्रयोजन।। (5)

स्व-पर गुण दोष भी जानूँ स्वहित हेतु, चिंतन-मनन भी करूँ स्वहित हेतु।
शोध-बोध अनुभव भी करूँ स्वहित हेतु, पर दोष सुधार हेतु कहूँ स्वहित हेतु।। (6)

प्रकृति-पर्यावरण जानूँ स्वहित हेतु, कर्म-सिद्धांत-मनोविज्ञान (जानूँ) स्वहित हेतु।
पाप-पापी को भी जानूँ स्वहित हेतु, द्रव्य-गुण-पर्याय भी जानूँ स्वहित हेतु।। (7)

देव-दर्शन-प्रार्थना-वंदना-स्तुति, प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रायश्चित्त आदि।
वंदना-प्रतिवंदना-आशीष आदि, सब कुछ करता हूँ मैं आत्म विशुद्धि हेतु।। (8)

अशुभ से निवृत्ति शुभ में प्रवृत्ति हेतु, शुभ से शुद्ध की प्राप्ति के हेतु।
मद से निवृत्ति 'आत्म गौरव'/(सोऽहं) हेतु, सब कुछ करता हूँ मैं 'अहं' के हेतु।। (9)

आत्मा की उपलब्धि हेतु ही सेवूँ/(करता) धर्म, इसी हेतु अंतरंग बहिरंग के धर्म।
निमित्त-उपादान व साध्य-साधन, आत्महित हेतु ही करता हूँ सकल कर्म।। (10)

आहार-विहार व निहार-निवास, तन-मन व अक्ष के स्वास्थ्य के प्रयास।
व्यायाम-प्राणायाम-भ्रमण-तेल मर्दन, शयन-विश्राम व दैनिक काम।। (11)

जीवन-मरण व वर्तमान के काम, अनंत भविष्यत के मेरे समस्त काम।
स्वहित हेतु ही मैं करता हूँ विसर्जन/(आयोजन/प्रयोजन),
आत्मा को परमात्मा बनाने हेतु 'कनक' करे काम।। (12)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, 05.03.2016, रात्रि 8.45

संदर्भ-

कर्त्ता के विभिन्न रूप

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।। (8)
पुद्गलकर्मादीनां कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम्।।

According to Vyavhara Naya is the doer performer of the Pudgala Karmas. According to Nischaya Naya (Jiva is the doer performer of) Thought Karmas. According to Shuddha Naya (Jiva is the doer) of Shuddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्तृत्व भावों का वर्णन किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से ''स्वतंत्र कर्त्ता'' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्त्ता कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्त्ता बनता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का तथा आदि शब्द से औदारिक, वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो/ईषत् कर्म है उसका कर्त्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, ईंट, मूर्ति आदि का भी जीव कर्त्ता है। निश्चय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, घृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृत्ति, अहं प्रवृत्ति का कर्त्ता है परंतु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानंद स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्त्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से स्वभाव का कर्त्ता भी होता है परंतु केवली एवं मुक्त अवस्था में तो शुद्ध निश्चय नय से पूर्ण रूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः यहाँ जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ, शुद्ध भावों का जो परिमणन है, उसी का कर्तृत्ववपना यहाँ कहा गया है, न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्त्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनाता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्त्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा-

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमदि।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदे।। गा. 18 समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार दैव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष

उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।
मंसवसारुहिरादिभावे उदराग्गे संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार माँस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावो कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं।। गा. 60 पंचास्तिकाय

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है, उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है, उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व है, उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बंधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव संबंधी रागादि भावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्त्ता जीव ही है तथा द्रव्य कर्मों का उपादानकर्त्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किए जाने पर जीव रागादि भावों का कर्त्ता है यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मिलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।
तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामे।। 121 प्रवचनसार

''संसार'' नामक जो यह आत्मा का तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्यकर्म की संयुक्तता से ही वह बंध है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से द्रव्य कर्म ही

है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।। (86)
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि।। (87)

यद्यपि जीव के राग-द्वेष परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीवकर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किन्तु मात्र इन दोनों का परस्पर एक-दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण।
पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। गा. 88 समयसार

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के राग-द्वेष निमित्त पाकर कर्म परमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म उत्पन्न होते हैं परन्तु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है-

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो
जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्त्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है।

यदि एकांततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं होने पर कर्म बंधन नहीं होगा, कर्मबंध के अभाव से संसार का अभाव हो जाएगा। संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, जो कि आगम, तर्क, प्रत्यक्ष एवं

अनुभव विरुद्ध है। निश्चयनय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य कुंदकुंदाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।

किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।। गा. 63 पंचास्तिकाय प्राभृत

आगे पूर्वोक्त प्रकार के अभेद छह कारक का व्याख्यान करते हुए निश्चयनय से यह व्याख्यान किया गया है। इसे सुनकर 'नयो' के विचारों को न जानता हुआ शिष्य एकांत का ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है।

यदि द्रव्यकर्म एकांत से बिना जीव के परिणाम की अपेक्षा करता है और वह आत्मा अपने को ही करता है-द्रव्यकर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा का उस बिना किए हुए कर्म के फल को भोगता है और यह जीव से बिना किया हुआ कर्म आत्मा को फल कैसे देता है? इस प्रश्न का आगमोक्त यथार्थ प्रत्युत्तर देते हुए कुंदकुंद स्वामी बताते हैं-

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढ़गहणपडिबद्धा।

काले विभुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजन्ति।। (67)

संसारी जीवों के अपने-अपने रागादि परिणामों के निमित्त से तथा पुद्गलों में स्निग्ध-रुक्ष गुण के कारण द्रव्य-कर्मवर्गणाएँ जीव के प्रदेशों में जो पहले से ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थिति के पूरे होते हुए उदय में आती हैं तब अपने-अपने फल को प्रगट कर झड़ जाती है, उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलता को उत्पन्न करने वाले सुख तथा दुःख उन जीवों का मुख्यता से देती है, जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जो निर्विकार चिदानंदमयी एक स्वरूप भाव जीव को और मिथ्यात्व रागादि भावों को एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव राग-द्वेष-मोहादि रूप ही होते हैं तथा जो मिथ्या चारित्री हैं अर्थात् जो अपने को रागादि के परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतर में अशुद्ध निश्चय से ही हर्ष या विषाद रूप तथा व्यवहार से बाहरी पदार्थों में नाना प्रकार इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों के प्राप्ति रूप मधुर या कटुक विष के रस के आस्वादन रूप सांसारिक सुख या दुःख की वीतराग परमानंदमयी सुखामृत के रसास्वाद के भोग को न पाते हुए भोगते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।

हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।।

इस प्रकार अपने कर्मों से कर्त्ता भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

इस प्रकार प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्त्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्मा को अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए यह शांत अथवा अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

जं जं जे जे जीवा पज्जाणं परिणमंति संसारे।
रायस्स य दोसस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा।। (988)

संसार में जो जीव जिस-जिस पर्याय में परिणमन करते हैं वे सब राग-द्वेष और मोह के वशीभूत होकर ही परिणमते हैं, ऐसा जानना।

भोक्ता के विभिन्न रूप

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।। (9)
व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गल कर्मफलं प्रभुङ्क्ते।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः।।

According to Vyavahara Naya, Jiva enjoys happiness and misery as fruits of Pudgala karmas, According to Nischaya Naya, Jiva has conscious Bhavas only.

आत्मा व्यवहार से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों को भोगता है और निश्चय नय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है।

क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन के तृतीय गति सिद्धांतानुसार-

To every action, there is an equal and opposite reaction.

अर्थात् जहाँ क्रिया है, वहाँ पर उसकी प्रतिक्रिया भी होती है एवं प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होती है। जो जैसा करता है, वह उसी प्रकार उसका भोक्ता भी होता है। जैसे बबूल के वृक्ष बोने पर बबूल का वृक्ष उत्पन्न होगा और उसमें बबूल की ही फलियाँ लगेंगी, आम के बीज बोने पर आम के वृक्ष ऊगेंगे एवं उसमें आम के फल लगेंगे। इसलिए कहते हैं "As you sow, sow you reap" अर्थात् जैसा बायेंगे वैसा काटेंगे व पायेंगे। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा

भी है-

यत्प्राग्जन्मनि संचितं तनुभृतां कर्माशुभं व शुभं।
यद्दैव यदुदीरणादनुभवन् दुःख सुख वागतम्।।

जीव ने पूर्व भव में जिस अशुभ भाव रूप कर्त्तापने से पापकर्म का एवं शुभ भाव रूप कर्त्तापने से पुण्य कर्म का संचय किया है वह दैव है उसकी उदीरणा उदय से यथाक्रम से दुःख एवं सुख का अनुभव करता है।

गोस्वामी तुलसी दास ने भी कहा है-

कर्म प्रधान विश्व करिराखा।
जो जस करहि फलहि तस चाखा।।

अमितगति आचार्य ने कहा भी है-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।। (30)

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा किए गए शुभ एवं अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जाएगा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददापि किंचन्।
विचार यन्नेवमनन्य मानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।। (3)

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तू एकाग्रचित्त हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

जीव उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से इष्ट तथा अनिष्ट पाँचों इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न सुख एवं दुःख को भोगता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से अंतरंग में सुख तथा दुःख को उत्पन्न करने वाला द्रव्यकर्म पुण्य एवं पाप का उदय है उसको भोगता है। अशुद्ध निश्चयनय से हर्ष तथा विषाद रूप सुख-दुःख को भोगता है और शुद्ध निश्चयनय से रत्नत्रय से उत्पन्न अविनाशी अतीन्द्रिय अक्षय आनंद रूप सुखामृत को भोगता है।

पुण्य एवं पाप के स्वरूप एवं प्रभेद

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीव।

सादं सुहाउणामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च।। (38)

शुभाशुभभाव युक्ताः पुण्यं पापं भवंति खलु जीवाः।

सातं शुभायुःनाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च।।

The Jivas consist of Punya and Papa surely having auspicious and inauspicious Bhavas (respectively). Punya is Satavedaniya, auspisious life, name and class, While Papa is (exactly) the opposite (of these).

शुभ तथा अशुभ परिणामों से युक्त जीव पुण्य और पाप रूप होते हैं। सातावेदनी, शुभ आयु, शुभ नाम तथा उच्च गोत्र नामक कर्मों की जो प्रकृतियाँ हैं, वे तो पुण्य प्रकृतियाँ हैं और शेष सब पाप प्रकृतियाँ हैं।

इस गाथा में आचार्यश्री ने आस्रव एवं बंध के उत्तर भेद स्वरूप पुण्य-पाप का स्वरूप एवं उसके भेद-प्रभेद का कथन किया है। 'सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पांवहवति खलु जीवा' अर्थात् शुभ एवं अशुभ भावों से युक्त होकर जीव निश्चय से पुण्य-पाप रूप में परिणमन करता है यह प्रतिपादन करके आचार्यश्री ने भाव पुण्य एवं भाव पाप का प्रतिपादन किया है। अर्थात् जो शुभोपयोग से युक्त जीव है वह पुण्य जीव है और जो अशुभोपयोग से युक्त जीव है वह पाप जीव है। शुभोपयोग का आरंभ वस्तुतः सम्यग्दर्शन होने के बाद अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान में होता है। मिथ्यात्व गुणस्थान में शुभोपयोग नहीं हो सकता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना शुभोपयोग संभव नहीं है। गोम्मट्टसार में कहा भी है-

जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा।

वदसहिदा वि य पावा, तव्विरीया हवंति त्ति।। (622)

जीव के दो भेद हैं-एक पुण्य और दूसरा पाप। जो सम्यक्त्व गुण से या व्रत से युक्त है उनको पुण्य जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत हैं उसको पाप कहते हैं।

'मिच्छाइट्ठी पावा' - मिथ्यादृष्टि पाप जीव है।

इससे सिद्ध होता है कि वैभवशाली राजा, महाराजा, देव भी मिथ्यात्व से सहित है तो पापी जीव है परंतु सम्यग्दर्शन से सहित पशु, नारकी, गरीब मनुष्य भी पुण्यात्मा जीव है। वस्तुतः भाव पुण्य ही पुण्य है और भाव पुण्य के कारण जो कर्म परमाणु द्रव्य रूप में परिणमन करता है वह द्रव्य पुण्य है। ऐसे भाव पुण्य करने के लिए हमारे पूर्वाचार्य भी उपदेश करते हैं एवं प्रेरित करते हैं।

उद्धम मिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम्।

भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि।। (1) वृहद्द्रव्य संग्रहः पृ. 124

मिथ्यात्व रूपी विष का वमन कर दो, सम्यग्दर्शन की भावना करो, उत्कृष्ट भक्ति को करो और भाव नमस्कार में तत्पर होकर सदा ज्ञान में लगे रहो।

पंचमहाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम्।

दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपः सिद्धिविधौ कुरूद्योगम्।। (2)

पाँच महाव्रतों की रक्षा करो, क्रोध आदि चार कषायों का पूर्ण रूप निग्रह करो, दुर्दांत प्रबल इन्द्रिय रूप शत्रुओं पर विजय करो तथा बाह्य और अभ्यंतर भेद से दो प्रकार का जो तप है उसको सिद्ध करने में उद्योग करो। इस प्रकार दोनों आर्याच्छंदों से कहे हुए लक्षण सहित शुभ उपयोग रूप भाव परिणाम से तथा उसके विपरीत अशुभ उपयोग रूप परिणाम से युक्त परिणत जो जीव है वे पुण्य-पाप को धारण करते हैं अथवा स्वयं पुण्य पाप रूप हो जाते हैं

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है-

शुभः पुण्यास्याशुभः पापस्य। (3)

Asrva of 2 kinds : शुभ or good which is the inlet of virtue or meritorious karms अशुभ of bad which is the inlet of vice or demeritorious karmas.

शुभोपयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है।

शुभयोग पुण्य और अशुभ योग पापस्रव का कारण है। हिंसा, असत्य भाषण, वध आदि की चिन्ता रूप अपध्यान अशुभ योग है। हिंसा, दूसरे की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण चोरी, मैथुन-प्रयोग आदि अशुभ काययोग है। असत्य भाषण, कठोर मर्मभेदी वचन बोलना आदि अशुभ वचन योग है। हिंसक परिणाम, ईर्ष्या, असूया आदि रूप मानसिक परिणाम अशुभ मनोयोग है।

अशुभ योग से भिन्न अनंत विषय विकल्प वाला शुभ योग है। जैसे-अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन आदि शुभ काययोग है। अर्हंत भक्ति तप की रुचि, श्रुत का विनय आदि विचार शुभ मनोयोग है। सत्य, हित-मित वचन बोलना शुभ वाग्योग है।

शुभ परिणामपूर्वक होने वाला योग शुभयोग है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग अशुभ योग कहलाता है। '**पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्।**

कर्मणः स्वतंत्र्य विवक्षायां पुनात्यात्मानं प्रीणयतीति पुण्यम्।'

पारतन्त्र्यविवक्षायां करणत्वोपपत्तेः पूयतेऽनेनेति।

वा पुण्यम् तत्सद्वैद्यादि। तत्त्वार्थवार्तिके।।

जो आत्मा को पवित्र करे या जिससे आत्मा पवित्र किया जाता है, वह पुण्य कहलाता है। अथवा जिसके द्वारा आत्मा सुखसाता अनुभव करे, वह सातावेदनीय आदि कर्म पुण्य है। स्वतंत्र विवक्षा में जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य से निष्पन्न पुण्य शब्द है। परातन्त्र्य विवक्षा में कारण साधन से पुण्य शब्द निष्पन्न होता है जैसे जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है, वह पुण्य है।

''तत्प्रतिद्वन्द्विरूपं पापम्। तस्यप्रतिद्वन्द्विरूपं पापमिति विज्ञायते। पाति रक्षत्यात्मानम् अस्माच्छुभपरिणामादिति पुण्यस्य पापभिधानमा तदसद्वेद्यादि।'' तत्त्वार्थवार्तिके

पुण्य का प्रतिद्वंद्वी (विपरीत) पाप है। जो आत्मा को शुभ से रक्षा करे अर्थात् आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे वह पाप कहलाता है, वह असातावेदनीय आदि पापकर्म है।

प्रश्न-जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों ही का अविशेषता से तुल्य (समान) फल है प्राणी का परतंत्र करना, वैसे ही पुण्य-पाप दोनों ही आत्मा को परतंत्र करने में निमित्त कारण है। इन पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, यह पुण्य (शुभ) है, यह अशुभ है, पाप है, यह तो केवल संकल्प मात्र भेद है।

उत्तर-पुण्य-पाप को सर्वथा एक रूप कहना उपयुक्त नहीं है क्योंकि सोने या लोहे की बेड़ी की तरह दोनों ही आत्मा की परतंत्रता में कारण है तथापि इष्ट फल और अनिष्ट फल के निमित्त से पुण्य और पाप में भेद है। जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय विषय आदि का निवर्तक है, वह पुण्य है तथा जो अनिष्ट गति जाति, शरीर, इन्द्रियों के विषय आदि का कारण है वह पाप है। इस प्रकार पुण्य कर्म और पाप कर्म में भेद है। इनमें शुभ योग पुण्यास्रव का कारण है और अशुभ योग पापस्रव का।

आध्यात्म ही है परम स्वावलंबन, स्वाधीन, अनुशासन, स्वसुसमय, स्वामी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)

आध्यात्म ही है परम स्वावलंबन, अनुशासन व सुस्वसमय।
इसी से भिन्न लौकिक स्वावलंबन, व्यवहारमय व स्वार्थपूर्ण।। (ध्रुव)

स्व-अवलंबन है आत्मा अवलंबन, जिसमें अन्य का नहीं सहारा।
द्रव्य-भाव नोकर्म सहित तन-मन इन्द्रियों का भी नहीं सहारा।।

जानने देखने सुख-वैभव हेतु भी, आत्मा के अतिरिक्त नहीं सहारा।
भोजन-पानी-औषधि अस्त्र-शस्त्र, धन-जन परे आत्मा का ही सहारा।। (1)

इसी अवस्था में होते हैं अनंत ज्ञान, दर्शन सुख वीर्य आदि अनंत गुण।
यह अवस्था ही जीव की परमावस्था, सत्य-शिव-सुंदर आनंदमय।।

इसी अवस्था में होता परमानुशासन, जो स्व के द्वारा ही स्व में होता।
भय-आशा-काम-क्रोधादि रहित, अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रभुत्व युक्त होता।। (2)

यह अवस्था ही परमसुसमयमय, व्यवहारसमय से यह परे होता।
संस्था-समाज या कानूनी व्यवस्था, परे जैविक-भौतिक घड़ी से भी परे होता।।

इस अवस्था में ही जीव स्वयं का, स्वयं ही होता है पूर्णतः स्वामी।
अन्य सभी अवस्था में जीव नहीं, होता है पूर्णतः स्वयं का भी स्वामी।। (3)

अन्य अवस्था में कोई भी जीव नहीं, होता है पूर्णतः उक्त गुण युक्त।
क्षुद्र जीव से लेकर राजा-महाराजा, चक्री से लेकर तानाशाही तक।।

किसी न किसी दृष्टि से वे होते हैं, परावलंबी परानुशासी आदि।
तन-मन-इन्द्रिय व काम-क्रोधादि के, वे भी होते है वशवर्ती।। (4)

इसलिए तो चक्रवर्ती भी इसी, अवस्था के लिए बनते हैं वैरागी।
आत्म साधना के बल पर क्रमशः, बनते हैं वे पूर्ण स्वावलंबी।।

संसारी जीव जो स्वयं को मानते हैं, पूर्ण स्वावलंबी व पूर्ण अनुशासी।
उनकी यह है भ्रांत धारणा जो, राग द्वेष मोहादि से अनुशासी।। (5)

जो जीव जितने-जितने अंश से, राग द्वेष मोहादि से परे होता जायेगा।

वह जीव उतने-उतने अंश से, स्वावलंबी आदि होता जायेगा।।

यह परम स्वावलंबी अवस्था ही है, परम स्वतंत्रता व परम सत्तावान्।
इसी अवस्था की प्राप्ति हेतु ही, 'कनक' सतत करे ध्यान-अध्ययन।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 26.03.2016, रात्रि 8.35

संदर्भ-

अरहंत भगवान् का स्वरूप

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो।। (50)
नष्टचतुर्घातिकर्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः।
शुभदेहस्थः आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीय।।

That pure soul existing in an auspicious body, possessed of (infinite) faith, happiness, knowledge and power which has destroyed the four Ghatiya Karmas, is to be meditated on as an Arhat.

चार घातिया कर्मों को नष्ट करने वाला, अनंत दर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्य का धारक, उत्तम देह में विराजमान और शुद्ध ऐसा जो आत्मा है वह अरिहंत है उसका ध्यान करना चाहिए।

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अनंत विरति, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग और क्षायिक उपभोग आदि प्रगट हुए अनंत गुण स्वरूप होने से जिन्होंने यही पर सिद्ध स्वरूप प्राप्त कर लिया है, स्फटिकमणि के पर्वत के मध्य से निकलते हुए सूर्य बिंब के समान जो देदीप्यमान हो रहे हैं, अपने शरीर प्रमाण होने पर भी जिन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा संपूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया है, अपने ज्ञान में ही संपूर्ण प्रमेय रहने के कारण प्रतिभासित होने से जो विश्वरूपता को प्राप्त हो गये हैं। संपूर्ण आमय अर्थात् रोगों के दूर हो जाने के कारण जो निरामय है, संपूर्ण पापरूपी अंजन के समूह के नष्ट हो जाने से जो निरंजन है और दोषों की कलाएँ अर्थात् संपूर्ण दोषों से रहित होने के कारण जो निष्फल है, ऐसे उन अरिहंतों को नमस्कार हो।

सिद्ध भगवान् का स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो ज्झाएह लोयसिहरत्थो।। (51)
नष्टाष्टकर्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञायकः दृाष्ट।
पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायेत लोकशिखरस्थः।।

Maditate on the Siddha the soul which is bereft of the bodies produced by eight kinds of Karmas, which is the seer and knower of Loka and Aloka, which has a shape like a human being and which stays at the summit of the universe.

नष्ट हो गया है अष्ट कर्मरूप देह जिसके, लोकाकाश तथा अलोकाकाश का जानने देखने वाला, पुरुष के आकार का धारक और लोक के शिखर पर विराजमान ऐसा जो आत्मा है वह सिद्ध परमेष्ठी है इस कारण तुम उसका ध्यान करो।

अन्याकाराप्ति हेतु र्न च भवति परो, येन तेनाल्पहीनः।
प्रागात्मोपात्तदेह, प्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।।
क्षुतृष्णाश्वासकास, ज्वरमरणजरानिष्ट योग प्रमोहः।
व्यापत्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।। (6)

जिस मनुष्य शरीर से यह जीव मुक्त होता है वह उस जीव का अंतिम शरीर कहलाता है। उसी को चरम शरीर कहते हैं। मुक्त होने पर इस जीव का आकार चरम शरीर के आकार से भिन्न आकार नहीं हो सकता, न तो वह समस्त लोक में व्यापक हो सकता है और न वटवृक्ष के बीज के समान अणुमात्र ही हो सकता है। क्योंकि वहाँ आकार बदलने का कोई कारण नहीं है। किन्तु अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ आकार कम होने का कारण है और वह यह है कि संसार परिभ्रमण में इस जीव का आकार कर्मों के उदय से बदलता था। अब कर्मों के नष्ट हो जाने से आकार बदलने वाला कोई कारण नहीं रहा तथा उसका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम रहता है। क्योंकि शरीर के जिन-जिन भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं है उतना परिमाण घट जाता है। शरीर के भीतर, पेट, नाक, कान आदि भाग ऐसे हैं जिनमें पोले भाग में आत्मा के प्रदेश नहीं हैं। इसलिये आचार्य कहते हैं कि अन्य ऐसे कारण हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि मुक्त जीव का परिमाण अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ कम है। यह कमी आकार की अपेक्षा से नहीं है लेकिन घन फल की अपेक्षा से है तथा मुक्त

अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के समान अत्यंत दैदीप्यमान रहता है।

एव शब्द निश्चयवाचक है और हि शब्द स्पष्टता सूचित करने के लिए है, इससे सिद्ध होता है कि मुक्त अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के आकार समान है और उनका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम है। मुक्त जीव का यह आकार और यह परिमाण निश्चित है, स्पष्ट है। इसके सिवाय अन्य कोई आकार तथा अन्य कोई परिमाण हो नहीं सकता। इसके सिवाय मुक्त अवस्था में वह शुद्ध आत्मा अमूर्तिक रहता है। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द रूप पुद्गल परिणति को मूर्ति कहते हैं। ऐसी मूर्ति जिसके न हो उसको अमूर्ति कहते हैं। सिद्धों में रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूप मूर्ति नहीं है। इसलिये वे अमूर्ति स्वरूप हैं अथवा अमूर्ति भी पाठ है जिनके रूप रसादि स्वरूप मूर्ति हो उनको मूर्त कहते है तथा जिनके ऐसी मूर्ति न हो उनको अमूर्त कहते हैं। उन सिद्ध परमेष्ठी की परिणति रूप, रस, गंध स्पर्श स्वरूप नहीं है इनसे सर्वथा रहित है इसलिए वे अमूर्त हैं।

इसके सिवाय वे भगवान् क्षुधा, तृषा, श्वास, कास, दमा ज्वर, मरण, जरा (बुढ़ापा) अनिष्ट योग, मोह अनेक प्रकार की आपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं ऐसे संसार के परिभ्रमण को उन सिद्ध भगवान् ने नाश कर दिया है अथवा कर्मों के नाश होने से वह संसार अपने आप नष्ट हो गया है। उस संसार के नष्ट होने से सिद्धों को अनंत सुख की प्राप्ति हो गई है, उस सुख का परिमाण भला कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं। सिद्धों का सुख अनंत है उनका परिमाण कभी किसी से नहीं हो सकता।

सिद्धों का सुख

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतवाधं विशालं।
वृद्धिह्रासव्यपेतं, विषयविरहितं, निःप्रतिद्वंदभावम्।।
अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरुपममममितं, शाश्वतं सर्वकालं।
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्यजातम्।। (7)

भगवान् सिद्ध परमेष्ठी के जो सुख होता है वह केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है। अन्य किसी प्रकृति आदि से उत्पन्न नहीं होता इसीलिये वह सुख अनित्य नहीं होता वह सुख स्वयं अतिशय युक्त होता है। समस्त बाधाओं से रहित होता है। अत्यंत विशाल वा विस्तीर्ण होता है। आत्मा के समस्त प्रदेशों में व्याप्त होकर कभी घटता है न बढ़ता है। वृद्धि और ह्रास दोनों से रहित हो सांसारिक सुख विषय से

उत्पन्न नहीं होता किन्तु सब प्रकार के विषयों से रहित स्वाभाविक होता है। सुख का प्रतिद्वंदी दुःख है। उन दुःखों-से मिला हुआ है। परन्तु सिद्धों का सुख सदा सुख रूप ही रहता है, जीवों का सुख, सातावेदनीय कर्म के उदय से होता है तथा पुष्पमाला चंदन, भोजन आदि बाह्य सामग्री से उत्पन्न होता है परन्तु सिद्धों का सुख उपमा रहित है, अनंत है। विनाश रहित है इसीलिये वह सदा बना रहता है। वह सुख परम सुख कहलाता है अर्थात् इन्द्रादिक के सुख से भी अत्यंत अतिशय युक्त वा बढ़कर है। जिन सिद्धों का लक्षण वा उनके गुण पहले निरूपण कर चुके हैं और जो लोकाकाश के अग्रभाग पर विराजमान हैं, ऐसे सिद्धों का अनंत सुख ऊपर लिखे अनुसार होता है। अभिप्राय यह है कि सिद्धों का सुख संसारी जीव के सुखों से अत्यंत विलक्षण है। सिद्धों का सुख वास्तविक सुख है और इसीलिये वह सर्वोत्तम है।

रत्नत्रय और राग का फल

येनांऽशेन सुदृष्टिस्तेनाऽशेनाऽस्य बंधनं नाऽस्ति।
येनांऽशेन तु राग स्तेनाऽशेनाऽस्य बंधनं भवति।। (212)
येनांऽशेन तु ज्ञानं, तेनांऽशेनाऽस्य बंधनं नास्ति।
येनांऽशेन तु रागस्तेनाऽशेनाऽस्य बंधनं भवति।। (213)
येनांऽशेन चारित्रं, तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।
येनांऽशेन तु रागस्तेनांऽशेनास्य बंधनं भवति।। (214)

(In every thought activity) there is no bondage so far as there is right belief; there is bondage so far as there is passion. (In every thought activity) there is no bondage so far as there is knowledge; there is bondage so far as there is passion. (In every thought activity) there is no bondage so far there is conduct; there is bondage so far as there is passion.

व्याख्या-भावानुवाद-जिस अंश से सुदृष्टि होता है उस अंश से सम्यक्दर्शन होता है। उस सुदृष्टि रूप अंश से उस सम्यक्त्व का कर्मबंध नहीं होता है। किन्तु जिस अंश से उस सम्यक् दृष्टि में भी राग होता है उस अंश से उस सम्यक् दृष्टि को भी कर्मबंध होता है।

जिस अंश से ज्ञान होता है उस अंश से कर्मबंध नहीं होता परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस ज्ञानी को कर्मबंध होता है।

जिस अंश से चारित्र होता है उस चारित्र अंश से कर्मबंध नहीं होता है परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस चारित्र या चारित्रधारी को कर्मबंध होता है।

इसका भावार्थ यह है कि सराग रत्नत्रय में बंध होता है। वीतराग रत्नत्रय में बंध नहीं होता है।

समीक्षा–जैसे-जिस अंश में प्रकाश होता है उस अंश में अंधकार नहीं होता है तथा जिस अंश में अंधकार होता है उस अंश में प्रकाश नहीं होता है। प्रकाश जितने-जितने अंश में बढ़ता जाता है उसने उतने अंश में अंधकार भी घटता जाता है। जितने-जितने अंश में अंधकार बढ़ता जाता है उतने-उतने अंश में प्रकाश घटता जाता है। इसी प्रकार जितने-जितने अंश में रत्नत्रयात्मक स्वभाव आत्मा में प्रकट होता है उतने-उतने अंश में वैभाविक भावरूपी कर्मबंध घटता जाता है। आचार्य उमास्वामी ने पात्र की अपेक्षा निर्जरा में न्यूनाधिकता का वर्णन करते हुए प्रकारान्तर से इसी विषय को निम्न प्रकार से कहा है-

सम्यग्दृष्टि श्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहपकोपशमकोपशान्त मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः।।

सम्यक्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनंतानुबंधिविसंयोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशांतमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं। जब तक सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होती तब तक आस्रव और बंध की परम्परा चलती ही रहती है। यह बंध की परम्परा मिथ्यादृष्टि के अनादि से है। उसकी जो निर्जरा होती है वह सविपाक निर्जरा या अकाम निर्जरा है। इसलिए मिथ्यादृष्टि केवल आस्रव और बंध तत्त्व का कर्त्ता है। सम्यग्दर्शन होते ही जीव के ज्ञान एवं दर्शन में परिवर्तन हो जाता है। जिस अंश में दर्शन-ज्ञान-चारित्र में सम्यक् भाव है उतने अंश में संवर, निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान एवं चारित्र आत्मा का स्वभाव है।

पात्र की अपेक्षा गुणश्रेणी निर्जरा और उसके द्रव्य प्रमाण और काल प्रमाण का वर्णन गोम्मट्टसार में निम्न प्रकार किया है-

सम्मत्तुप्पत्तीये-सावय विरदे अणंत कम्मंसे।
दंसणमोहक्खवगे कषायउवसामगे य उवसंते।। (66)

खवगे य खीणमोहे-जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।
तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति।।(67)

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि श्रावक, विरत, अनंतानुबंधी कर्म का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करने वाला, कषायों का उपशम करने वाले 8-9-10वें गुणस्थानवर्ती जीव क्षीणमोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली दोनों प्रकार के जिन इन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यात गुणी असंख्यात गुणी अधिक होती जाती है और उसका काल इसके विपरीत है। क्रम से उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हीन है।

1. **सम्यग्दृष्टि (अविरत)**-जैसे मद्यपायी के शराब का कुछ नशा उतरने पर अव्यक्त ज्ञान शक्ति प्रकट होती है, या दीर्घ निद्रा के हटने पर जैसे-ऊँघते-ऊँघते भी अल्प स्मृति होती है, या विष मूर्च्छित व्यक्ति को विष का एक देश वेग कम होने पर चेतना आती हैं अथवा पित्तादि विकार से मूर्च्छित व्यक्ति को मूर्च्छा हटने पर अव्यक्त चेतना आती है-उसी प्रकार अनंत काय आदि एकेन्द्रियों में बार-बार जन्म-मरण परिभ्रमण करते-करते विशेष लब्धि से दो इन्द्रिय आदि से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यंत त्रस पर्याय मिलती है। कभी मुनिराज कथित जिन धर्म को सुनता है तथा कदाचित् प्रतिबंधी कर्मों के दब जाने से उस पर श्रद्धान भी करता है। जैसे-कतक फूल के सम्पर्क से जल का कीचड़ बैठ जाता है और जल निर्मल बन जाता है; उसी प्रकार मिथ्या उपदेश से अति मलिन मिथ्यात्व के उपशम से आत्मा निर्मलता को प्राप्त कर श्रद्धानाभिमुख होकर तत्त्वार्थ श्रद्धान की अभिलाषा के सन्मुख होकर कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा करता है। प्रथम सम्यक्त्व आदि का लाभ होने पर अध्यवसाय (परिणामों) की विशुद्धि की प्रकर्षता से ये दसों स्थान क्रमशः असंख्येय गुणी निर्जरा वाले हैं। सादि अथवा अनादि दोनों ही प्रकार का मिथ्यादृष्टि जीव जब करण लब्धि को प्राप्त करके उसके अधः प्रवृत्तकरण परिणामों को भी बिताकर अपूर्वकरण परिणामों को ग्रहण करता है तब वह सातिशय मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। इस सातिशय मिथ्यादृष्टि के जो कर्मों की निर्जरा होती है। पूर्व की निर्जरा से अर्थात् सदा ही संसारावस्था या मिथ्यात्व दशा में होने वाली या पाई जाने वाली निर्जरा से असंख्यात गुणा अधिक हुआ करती है।

यह कथन गोम्मट्टसार जीवकाण्ड की अपेक्षा है। इसी से सिद्ध होता है कि

मिथ्यादृष्टि की जो निर्जरा होती है उस निर्जरा को यहाँ पर इकाई रूप में स्वीकार किया गया है। तत्त्वार्थसूत्र की अपेक्षा निर्जरा के स्थान दस है और गोम्मट्टसार की अपेक्षा निर्जरा के स्थान ग्यारह है परन्तु तत्त्वार्थसूत्र में जो अंतिम स्थान 'जिन' है उसे सयोगी जिन एवं अयोगी जिन रूप में विभक्त करने से तत्त्वार्थसूत्र में भी ग्यारह स्थान हो जाते हैं।

श्रावक (पंचम गुणस्थान) अवस्था प्राप्त होने पर जो कर्मों की निर्जरा होती है, वह असंयत सम्यग्दृष्टि की निर्जरा से असंख्यात गुणी अधिक होती है। इसी प्रकार विरतादि स्थानों में भी उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यात गुणी असंख्यात गुणी अधिक-अधिक कर्मों की निर्जरा हुआ करती है तथा इस निर्जरा का काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा-संख्यातगुणा हीन-हीन होता गया है अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि की निर्जरा में जितना काल लगता है उससे संख्यात गुणा कम काल श्रावक की निर्जरा में लगा करता है। इसी प्रकार आगे के विरत आदि स्थानों के विषय में भी समझना चाहिए। अर्थात् उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हीन-हीन समय में ही उत्तरोत्तर परिणाम विशुद्धि की अधिकता होते जाने के कारण कर्मों की निर्जरा असंख्यात गुणी अधिक-अधिक होती जाती है तात्पर्य यह है कि, जैसे-जैसे मोहकर्म निःशेष होता जाता है वैसे-वैसे निर्जरा भी बढ़ती जाती है और उसका द्रव्य प्रमाण असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा अधिकाधिक होता जाता है। फलतः वह जीव भी निर्वाण के अधिक-अधिक निकट पहुँचता जाता है। जहाँ गुणाकार रूप से गुणित निर्जरा का द्रव्य अधिकाधिक पाया जाता है उन स्थानों में गुण श्रेणी निर्जरा कही जाती हैं।

अनाथः सर्वसंसारी

गज, अश्व तथा मणि-माणिक्य आदि प्रचुर रत्नों से समृद्ध मगध का अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुक्षि चैत्य उद्यान में विहार यात्रा के लिए नगर से निकला। वह उद्यान विविध प्रकार के वृक्षों एवं लताओं से आकीर्ण था, नाना प्रकार के पक्षियों से परिसेवित था और विविध प्रकार के पुष्पों से भली-भाँति आच्छादित था। किं-बहुना, नंदन वन के समान था। राजा ने उद्यान में वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक संयत, समाधि सम्पन्न, सुकुमार एवं सुखोचित एवं सुखोपभोग के योग्य साधु को देखा। साधु के अनुपम सुख को देखकर राजा को उनके प्रति बहुत ही अधिक अतुलनीय विस्मय

हुआ। अहो, क्या वर्ण (रंग) है? क्या रूप (आकार) है। अहो आर्य की कैसी सौम्यता है। अहो! क्या शांति है, क्या मुक्ति निर्लोभता है। अहो, भोगों के प्रति कैसी असंगता है। मुनि के चरणों में वंदना और प्रदक्षिणा करने के पश्चात राजा न अति दूर, न अति निकट अर्थात् योग्य स्थान में खड़ा रहा और हाथ जोड़कर मुनि से पूछने लगा-राजा श्रेणिक-''हे आर्य! तुम अभी युवा हो फिर भी हे संयत! तुम भोगकाल में दीक्षित हुए हो, श्रामण्य में उपस्थित हुए हो। इसका क्या कारण है मैं सुनना चाहता हूँ। महाराज-मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई नाथ-अभिभावक एवं संरक्षक नहीं है। मुझ पर अनुकंपा रखने वाला कोई सुहृदय मित्र मैं नहीं पा रहा हूँ। यह सुनकर मगधाधिप राजा श्रेणिक जोर से हँसा और मुनि से बोला-''इस प्रकार तुम देखने में ऋद्धि सम्पन्न सौभाग्यशाली लगते हो फिर भी तुम्हारा कोई कैसे नाथ नहीं है?'' राजा श्रेणिक ''भदन्त! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ। हे संयत! मित्र और जातिजनों के साथ भोगों को भोगों। यह मनुष्य जीवन बहुत दुर्लभ है।

अप्पणा वि अणाहो सि सोविया! मगहहिवा।

अप्पाणा अणाहो सन्तो कहं नाहो अविस्ससि।। (12)

मुनि-श्रेणिक! तुम स्वयं अनाथ हो! मगधाधिप! जब तुम स्वयं अनाथ हो तो किसी के नाथ कैसे हो सकोगे।

राजा पहले ही विस्मित हो रहा था, अब तो मुनि से अश्रुतपूर्व (पहले कभी नहीं सुना गया 'अनाथ') यह वचन सुनकर तो और भी अधिक संभ्रांत संशयकूल एवं विस्मित हुआ। राजा श्रेणिक-''मेरे पास अश्व है, हाथी है, नगर है और अंतःपुर है। मैं मनुष्य जीवन के सभी सुख भोगों को भोग रहा हूँ। मेरे पास आज्ञा शासन और ऐश्वर्य प्रभुत्व भी है। इस प्रकार प्रधान श्रेष्ठ संपदा जिसके द्वारा सभी काम भोग मुझे समर्पित होते हैं, मुझे प्राप्त है। इस स्थिति में भला मैं कैसे अनाथ हूँ? भदन्त! आप झूठ न बोले। मुनि-पृथ्वीपति नरेश! तुम 'अनाथ' के अर्थ और परमात्मा को नहीं जानते हो कि मानव अनाथ और सनाथ कैसे होता है-महाराज! अत्याक्षिप्त-अनाकूल चित्त से मुझसे सुनिये कि यथार्थ से अनाथ कैसे होता है, किस भाव से मैंने उसका प्रयोग किया है? प्राचीन नगरों में असाधारण सुंदर कौशांबी नगरी है। वही मेरे पिता थे। उनके पास प्रचुर धन का संग्रह था। महाराज! प्रथम वय में युवावस्था में मेरी आँखों में अतुल असाधारण वेदना उत्पन्न हुई। पार्थिव! उससे मेरे सारे शरीर में अत्यंत जलन

होती थी। क्रूद्ध शत्रु जैसे शरीर के मर्म स्थानों में अत्यंत तीक्ष्ण शस्त्र घोंप दे और उससे जैसे वेदना हो, वैसे ही मेरी आँखों में भयंकर वेदना हो रही थी। जैसे इन्द्र के वज्र प्रहार से भयंकर वेदना होती है, वैसे ही मेरे कटिभाग में, अंतरेच्छ हृदय में और ऊत्तमांभाग-मस्तिष्क में अति वेदना हो रही थी। विद्या और मंत्र से चिकित्सा करने वाले, मंत्र तथा औषधियों के विशारद, अद्वितीय शस्त्रकुशल, आयुर्वेदाचार्य मेरी चिकित्सा के लिए उपस्थित थे। उन्होंने मेरे हितार्थ वैद्य, रोगी, औषध और परिचालक रूप चतुष्पाद चिकित्सा की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके यह मेरी अनाथता है। मेरे पिता ने मेरे लिए चिकित्सा को उपहार रूप सर्वसार अर्थात् सर्वोत्तम वस्तुएँ दी, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके। यह मेरी अनाथता है। महाराज! मेरी माता पुत्र शोक के दुःख से बहुत पीड़ित रहती थी किन्तु वह भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी, यह मेरी अनाथता है। महाराज! मेरे बड़े और छोटे सभी सगे भाई मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके, यह मेरी अनाथता है। महाराज! मुझ में अनुरक्त और अनुव्रत मेरी पत्नी अश्रुपूर्ण नयनों से मेरे उरः स्थल (छाती) को भिगोती रहती थी। वह बाला मेरे प्रत्यक्ष में या परोक्ष में कभी भी अन्न, पान, स्नान, गंध, माल्य और विलेपन का उपभोग नहीं करती थी। वह एक क्षण के लिए भी मुझसे दूर नहीं होती थी। फिर भी वह दुःख से मुक्त नहीं कर सकी। महाराज! यह मेरी अनाथता है। तब मैंने इस प्रकार कहा-विचार किया कि प्राणी को इस अनंत संसार में बार-बार असह्य वेदना का अनुभव करना होता है।''

सइं च जइ मुच्चेज्जा वेयणा विउलाइओ।

खन्तोदन्तो निशरम्भी पव्वएअणगारियं।। (32) उत्तराध्ययन 20अध्याय पृ. 341

इस विपुल वेदना से यदि एक बार भी मुक्त हो जाऊँ तो मैं क्षान्त, दान्त और निरारंभ अनगारवृत्ति में प्रव्रजित-दीक्षित हो जाऊँगा।

नराधिप! इस प्रकार विचार करके मैं सो गया। परिवर्तमान (बीती हुई) रात के साथ-साथ मेरी वेदना भी क्षीण हो गई।

तदन्तर प्रातःकाल में कल्य निरोग होते ही मैं बंधुजनों को पूछकर क्षान्त दान्त और निरारंभ होकर अनगार वृत्ति में प्रव्रजित हो गया।

ततो हं नाहो जाओ अप्पणो य परस्स य।

सव्वेसिं चेव भूयाणं तसाण थावराण य।। (35)

तब मैं अपना और दूसरों का त्रस और स्थावर सभी जीवों का नाथ हो गया।

अप्पा नई वयेरणी अप्पा में कूडसामली।

अप्पा कामदुआ धेणु अप्पा में नन्दणं वणं।। (36)

मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शाल्मी वृक्ष है, कामदुहा धेनु है और नंदन वन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।

अप्पा मित्तं ममित्तं ध दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ।। (37)

आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्त्ता विनाशक है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।

इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा! तमेगचित्तो निहुओसुणेहि।

नियन्ठधम्मं लहियाण वि जहा सीयन्ति एगे बहुकायरा नरा।। (38)

राजन्! यह एक और भी अनाथता है। शांत एवं एकाग्रचित्त होकर उसे सुनो। बहुत से ऐसे कायर व्यक्ति होते हैं जो निर्ग्रंथ धर्म को पाकर भी खिन्न हो जाते हैं स्वीकृत अनगार धर्म का सोत्साह पालन नहीं कर पाते हैं।

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं सम्मं नो फासयई पमाया।

अनिग्गप्पा य रसेसु गिद्धे न मूलओ छिन्दइ बन्धणं से।। (39)

जो महाव्रतों को स्वीकार कर प्रमाद के कारण उनका सम्यक् पालन नहीं करता है, आत्मा का निग्रह नहीं करता है रसों में आसक्त है, वह मूल से राग-द्वेष रूप बंधनों का उच्छेद नहीं कर सकता है।

आउत्तया जस्स न अत्थि काइ इरियाए भासाए तहेसणाए।

आयाण-निक्खेव-दुगुंछणाए न वीरजायं अणुजाइ मग्गं।। (40)

जिसकी ईर्या, भाषा, एषणा और आदान-निक्षेप में और उच्चार-प्रस्रवण के पतिष्ठापन में आयुक्तता सजगता नहीं है, वह उस मार्ग में अनुगमन नहीं कर सकता, जो वीरयात है अर्थात् जिस पर वीर पुरुष चले हैं।

चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता अथिरव्वए तव नियमेही भट्ठे।

चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता न पारए होइ हु संपराए।। (41)

जो अहिंसादि व्रतों में अस्थिर है तप और नियमों से भ्रष्ट है-वह चिरकाल तक मुण्डरुचि (कुछ साधना न कर केवल सिर मुंडा देने वाला भिक्षु) रहकर और

आत्मा को कष्ट देकर भी वह संसार से पार नहीं हो सकता।

पोल्ले व मुट्ठी जह से असारे अयन्तिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरूलियप्पगासे अमहग्धए होय य जाणएसु।। (42)

जो पोली (खाली) मुट्ठी की तरह निस्सार है, खोटे सिक्के की तरह अयंत्रित अप्रमाणित है, वैडूर्य की तरह चमकने वाली तुच्छ राढामणि काँचमणि है वह जानने वाले परीक्षकों की दृष्टि में मूल्यहीन है।

कुसीललिंगं इह धारइत्ता इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता।
असंजए संजयलप्पमाणे विणिघायमागच्छइ से चिरंपि।। (43)

जो कुशील आचारहीनों का वेष और ऋषि ध्वज (रजोहरणादि मुनि चिह्न) धारण कर जीविका चलाता है, असंयत होते हुए भी अपने आपको संयत कहता है वह चिरकाल तक विनिघात, विनाश को प्राप्त होता है।

विसं तु पीयं जह कालकूडं हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसे व धम्मो विसओववन्नो हणाइ वेयाल इवाविवन्नो।। (44)

पिया हुआ कालकूट विष उल्टा पकड़ा हुआ शस्त्र, अनियंत्रित वेताल जैसे विनाशकारी होता है वैसे ही विषय विकारों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे निमित्त कोऊहलसंपगाढे।
कुहेड़विज्जासवदार जीवी न गच्छई सरण तम्मि काले।। (45)

जो लक्षण और स्वप्न-विद्या का प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कौतुक कार्य में अत्यंत आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य को उत्पन्न करने वाली कुहेट विद्याओं से जादूगरी के खेलों से जीविका चलाता है वह कर्मफल भोग के समय किसी की शरण नहीं पा सकता।

सोच्चाण मेहावि सुभासियं इमं अणुसांसण नाणगुणोववेयं।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं महानियंठाण वए पहेणं।। (51)

मेधावी साधक इस सुभाषित को एवं ज्ञान गुण से युक्त अनुशासन (शिक्षा) को सुनकर कुशील व्यक्तियों की तरह सब मार्गों को छोड़कर महान् निर्ग्रंथों के पथ पर चलें।

चरित्तमायार गुणन्निए तओ अणुत्तरं संजम पालियाणं।
निरासवे संखवियाण कम्मं उवेइ ठाणं वि उलुत्तमं धुवं।। (52)

चारित्राचार और ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न निर्ग्रंथ निराश्रव होता है। अनुत्तर शुद्ध संयम का पालन कर वह निराश्रव (राग-द्वेषादि बंध हेतुओं से मुक्त) साधक कर्मों का क्षय कर विपुल उत्तम एवं शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करता है।

एवग्गदन्ते वि महातवोधणे महामुणी महापइन्ने महायसे।
महानियण्ठिज्जमिणं महासुयां से काहए महया वित्थरेणं।। (53)

इस प्रकार उग्र-दान्त, महान् तपोधन, महाप्रतिज्ञ, महायशस्वी उस महामुनि ने इस महानिर्ग्रंथीय महाश्रुत को महान् विस्तार से कहा।

राजा श्रेणिक संतुष्ट हुआ और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला भगवान् अनाथ का यथार्थ स्वरूप आपने मुझे ठीक तरह समझाया है।

राजा श्रेणिक-हे महर्षि! तुम्हारा मनुष्य जन्म सफल है, तुम्हारी उपलब्धियाँ सफल है, तुम सच्चे सनाथ और सबान्धव हो क्योंकि तुम जिनेश्वर के मार्ग में स्थित हो।

तं सि नाहों अणाहाणं सव्वभूयाण संजया।
खामेमि ते महाभाग! इच्छामि अणुसासिउं।। (56)

हे संयत! तुम अनाथों के नाथ हो, तुम सब जीवों के नाथ हो। हे महाभाग! मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। मैं तुमसे अनुशासित होने की इच्छा रखता हूँ। मैंने तुमसे प्रश्न कर जो ध्यान में विघ्न किया और भोगों के लिए निमंत्रण दिया, उन सबके लिए मुझे क्षमा करो इस प्रकार राजसिंह श्रेणिक राजा अनगार सिंह मुनि के परम भक्ति में स्तुति कर अन्तःपुर (रानियों) तथा अन्य परिजनों के साथ धर्म में अनुरक्त हो गया। राजा रोमकूल आनंद से उच्छवंदना करके लौट गया और वह गुणों से समृद्ध तीन गुप्तियों से गुप्त, तीन दण्डों से विरत, मोह मुक्त मुनि पक्षी की भाँति विप्रमुक्त अप्रतिबद्ध होकर भूतल पर विहार करने लगे।

बौद्ध धर्म में वर्णित अशरण भावना

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।। (10) बुद्धवग्गो पृ. 61
नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमत्तमुं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।। (11)

मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, आराम (उद्यान), चैत्य वृक्ष (चौरा) आदि को

देवता मान उनकी शरण में जाते हैं; किन्तु ये शरण मंगलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं क्योंकि इन शरणों में जाकर सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता।

यो च बुद्धच् धम्मञ्च संघञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति।। (12)
दुक्खं दुक्खं समंप्पादं दुक्खचस्स च अतिक्श्कमं।
अरियञ्चट्ठङ्किं मग्गं दुक्खुपसमगामिनं।। (13)
एवं खो सरणं खेतं एतं सरण मुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।। (14)

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है, जिसने चार आर्य सत्यों दुःख-दुःख की उत्पत्ति दुःख से मुक्ति मुक्ति और गामी आर्य अष्टांगक मार्ग को सम्यक् प्रकार से देख लिया है, यही मंगलदायक शरण है। यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर (व्यक्ति) सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।

पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे।। (17)

पूजनीय बुद्धों अथवा (उनके) श्रावकों की जो संसार को अतिक्रमण कर गए हैं, शोक, भय को पार कर गए हैं-पूजा के (या) उन ऐसे मुक्त और निर्भय (पुरुषों) की पूजा के, पुण्य का परिणाम ''इतना है-यह किसी से भी नहीं कहा जा सकता।'' (धम्म पद)

गुणाधिक्य या गुणसाम्य साधु की संगति विधेय साधओं को

(गुणहीन साधु व लौकिक जन संगति साधुओं के लिए वर्जित)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

गुणसाम्य या गुणाधिक्य से, करणीय संगति सदा साधु को।
हीन गुणी से या लौकिक जन से, नहीं करणीय संगति साधु को।।

गुणसाम्य से भले गुण न वृद्धि हो, किन्तु नहीं होता हीन गुण।

गुणाधिक्य से संगति करने से, वृद्धि होते हैं सदा सद्गुण।। (1)

सत्य-समता-शांति सहित जो, साधु होते हैं ज्ञान-ध्यान लीन।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि रहित, राग द्वेष मोह को जो करते क्षीण।।

लंद-फंद व जो द्वंद्व रहित, निन्दा-अपमान वाद-विवाद रहित।
उदार-सहिष्णु-सनम्र-सत्यग्राही, समगुणी साधु की संगति युक्त।। (2)

उपरोक्त गुणों में जो अधिक श्रेष्ठ, उनकी संगति अति-उत्तम।
अधिक गुणी से अधिक गुण मिले, समगुणी से मिले समगुण।।

इनसे अतिरिक्त जो गुणहीन साधु, उनकी संगति न करे अन्य साधु।
उनकी संगति से अन्य साधु भी, हो जाते हैं हीन गुण साधु।। (3)

ज्ञान-वैराग्य से जो हीन होते व, आलस्य प्रमाद से सहित होते।
ख्याति पूजा लाभ से जो आसक्त होते, वे साधु हीन गुण वाले होते।।

ईर्ष्या द्वेष घृणा वाद-विवाद करते, संकीर्ण भाव-व्यवहार करते।
निन्दा चुगली व कलह करते, वे सभी हीन गुणी साधु होते।। (4)

लौकिक जन संगति तो सदा ही, अकरणीय जो होते हैं असंयमी।
उपदेश व अशीर्वाद लौकिक जनों को देते हैं ज्ञानी-मुनि।।

योग्य गृहस्थ तो आहार औषधि, वसतिका उपकरण दान देते।
वैयावृत्ति व सेवा-व्यवस्था हेतु, साधुओं की वे संगति करते।। (5)

ज्ञानार्जन व आत्म कल्याण हेतु, भव्य जीव तो साधु संगति करते।
किन्तु योग्य साधु इससे अतिरिक्त, अन्य कार्य हेतु न संगति करते।।

लौकिक जन व हीन गुण साधु, से संगति व वार्तालाप अविधेय।
ध्यान-अध्ययन व समता-शांति, नाशकारक है संगति अयोग्य।। (6)

आगम वर्णित अनुभवगम्य शिक्षा व, मनोवैज्ञानिक यह तथ्य।
अतएव 'कनकनन्दी' बाल्यकाल से ही, संगति करता है गुणाधिक्य।। (7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 28.03.2016, रात्रि 8.30

संदर्भ-

सत्संग का फल दुःखक्षय

तम्हा समं गुणादो समणो समणं गुणेहिं वा अहियं।
अधिवसदु तम्हि णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं।। (270) प्र.सा.

Therefore, a Sramana if he desires for release from misery, should always live with an ascetic of epual merits of possessing more merits.

आगे यह उपदेश करते हैं कि सदा ही उत्तम संसर्ग करना योग्य है-(तम्हा) इसलिए (जदि) यदि (समणो) साधु (दुक्ख परिमोक्खंइच्छदि) दुःखों से छूटना चाहता है तो (गुणादो समं) गुणों में समान (वा गुणेहिं अहियं समणं) वा गुणों से अधिक साधु के पास ठहरकर (णिच्चं) सदा (तम्हि) उसी ही साधु की (अधिवसदु) संगति करे क्योंकि हीन साधु की संगति से अपने गुणों की हानि होती है। इसीलिये जो साधु अपने आत्मा से उत्पन्न सुख से विलक्षण नारक आदि के दुःखों से मुक्त चाहता है तो उसको योग्य है कि वह हमेशा ऐसे साधु की संगति करे जो निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय के साधन में अपने बराबर हो या मूल व उत्तर गुणों में अपने से अधिक हो जैसे-अग्नि की संगति से जल के शीतल गुण का नाश हो जाता है तैसे ही व्यावहारिक या लौकिक जन की संगति से संयमी का संयम गुण नाश हो जाता है, ऐसा जानकर तपोधन को अपने समान या अपने से अधिक गुणधारी तपोधन का ही आश्रय करना चाहिए। जो साधु ऐसा करता है उसके रत्नत्रयमय गुणों की रक्षा अपने समान गुणधारी की संगति से इस तरह होती है जैसे शीतल पात्र में रखने से शीतल जल की रक्षा होती है और उसी जल में कपूर, शक्कर आदि ठंडे पदार्थ और डाल दिये जावे तो उस जल के शीतलपने की वृद्धि हो जाती है उसी तरह निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय रूप गुणों में जो अपने से अधिक है उनकी संगति से साधु के गुणों की वृद्धि होती है ऐसा इस गाथा का अभिप्राय है।

यतः परिणामस्वभात्वेनात्मनः सप्तार्चिःसंगतं तोयमिवावश्यंभाविविकारत्वाल्लौकिकसंगात्संयतोऽप्यसंयत एव स्यात्। ततो दुःख मोक्षार्थिना गुणैः समोऽधिको वा श्रमणः श्रमणेन नित्यमेवाधिवसनीयः तथास्य शीतापवरककोणनिहितशीततोयवत्समगणसंगाद्गुणरक्षा शीततरतुहिन शर्करा संपृक्तशीततोयवत् गुणाधिकसंगात् गुणवृद्धि!

(तत्वप्रदीपिका)

क्योंकि आत्मा परिणाम स्वभाव वाला है। इसलिए लौकिक संग से विकार अवश्यंभावी होने वे संयत भी असंयत हो जाता है। जैसे अग्नि के संग से पानी उष्ण हो जाता है इसलिए दुःखों से मुक्ति चाहने वाले श्रमण को (1) समान गुण वाले श्रमण के साथ अथवा (2) अधिक गुण वाले श्रमण के साथ सदा ही निवास करना चाहिए (1) जैसे शीतल घर के कोने में रखे हुए शीतल पानी के शीतल गुण की रक्षा होती है उसी प्रकार समान गुण वाले की संगति में उस श्रमण गुण की रक्षा होती है और (2) जैसे अधिक शीतल हिम (बर्फ) के संपर्क में रहने से शीतल पानी के शीतल गुण में वृद्धि होती है, उसी प्रकार अधिक गुण वाले के संग से उस श्रमण के गुण वृद्धि होती है।

समीक्षा-प्रत्येक द्रव्य परिणमनशील है। परिणमन के लिए अंतरंग एवं बहिरंग कारण चाहिए। अंतरंग कारण स्वयं द्रव्य होता है। बहिरंग कारण बाह्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होता है। द्रव्य यदि शुद्ध है तो परिणमन शुद्ध होगा द्रव्य यदि अशुद्ध है तो परिणमन अशुद्ध होगा। बिना बाह्य एवं अंतरंग कारण द्रव्य में परिवर्तन नहीं हो सकता है। संसार के प्रत्येक कार्य भले बंध हो या मोक्ष हो-अच्छे हो या बुरे हो दोनों कारण के बिना नहीं हो सकते है। समंतभद्र स्वामी ने स्वयंभूस्तोत्र में वासुपूज्य भगवान् की स्तुति में कहा भी है-

बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथामोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यास्त्वमृषिर्बुधानाम्।।

हे भगवन्! घट आदि कार्यों में यह जो बाह्य और अभ्यन्तर कारणों की पूर्णता है वह आपके मत में जीवादि द्रव्यगत स्वभाव है अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं किन्तु मोक्षाभिलाषी पुरुषों के मोक्ष की विधि भी घटित नहीं होती है इसलिए परम ऋद्धियों से युक्त आप गणधरादि बुद्धजनों के वंदनीय हैं।

मूलाचार में संगति के गुण-दोष का वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

वड्ढदि बोही संसग्गेण तह पुणो विणस्सेदि।
संसग्गविसेसेण दु उप्पलगंधो जहा कुम्भो।। (956) पृ. 140 मू.चा.

संसर्ग से बोधि बढ़ती है तथा पुनः नष्ट भी हो जाती है। जैसे संसर्ग विशेष से जल का घड़ा कमल की सुगंध से युक्त हो जाता है। सदाचार के संपर्क से सम्यग्दर्शन आदि की शुद्धि बढ़ जाती है। उसी प्रकार पुनः कुत्सित आचार वाले के संपर्क से नष्ट

भी हो जाती है। जैसे कमल आदि के संसर्ग से घड़े का जल सुगंधमय और शीतल हो जाता है और अग्नि आदि के संयोग से उष्ण तथा विरस हो जाता है। इसलिए नीतिकारों ने सत्संगति करने के लिए प्रेरित किया है। यथा-

यदि सत्संगतिरतो भविष्यसि भविष्यसि।

अथ सज्ज्ञान गोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि।।

यदि तुम सज्जन पुरुषों के सहवास में रहोगे उनकी संगति में लग्न होवेंगे तो अवश्य ही ज्ञान की गोष्ठी में पड़ोगे अर्थात् उत्तम ज्ञान को प्राप्त करोगे और भी नीतिकारों ने कहा भी है-

संत्संसर्ग सुधास्यन्दैः पुँसां हृदा पवित्रिते।

ज्ञान लक्ष्मीः पदं धत्ते विवेकमुदिता सता।। (1)

सत्संगति रूपी अमृत के प्रवाह से पवित्रित मनुष्यों के हृदय में ज्ञान लक्ष्मी विवेक से प्रसन्न होती हुई पैर रखती है।

शीतांशुरश्मि संपर्कात् विसर्पति यथाम्बुधिः।

तथा सद्वृत्तसंसर्गान्नृणां प्रज्ञां पयोनिधिः।। (2)

चन्द्र किरणों के संपर्क से जिस प्रकार समुद्र बढ़ता है उसी प्रकार सदाचारी मनुष्यों की संगति से मनुष्यों का प्रज्ञा रूपी समुद्र बढ़ता है।

उत्तम जन सङ्गत्या पुमानिहाप्नोति गौरवं सततम्।

सुरभि प्रसूनमिलित्तम् तिलतैल सुरभिता याति।। (9)

यहाँ उत्तम जनों की संगति से मनुष्य निरंतर गौरव को प्राप्त होता है। जैसे सुगंधित फूल से मिला हुआ तेल सुगंध को प्राप्त हो जाता है।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं।

मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति।।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति।

सत्सङ्गति कथय किं न करोति पुँसाम्।। (12)

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है वचन में सत्य का सिंचन करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दिशाओं में कीर्ति विस्तृत करती है। कहो, सत्संगति पुरुषों का क्या नहीं करती है?

धम्मपद में महात्मा बुद्ध ने कहा भी है-

न पुष्पगन्धः प्रतिवातमेति न चन्दनं तगर मल्लिका वा।

सतां च गन्धः प्रतिवातमेति सर्वा दिशः सत्पुरुषः प्रवाति।। (11) (पृ.18)

पुष्प, चंदन, तगर या चमेली किसी की भी सुगंध उल्टी-हवा नहीं जाती किन्तु सज्जनों की सुगंध उल्टी-हवा भी जाती है, सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगंध बहाता है।

मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरूपासति।

खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा।। (6) (पृ.22)

यदि विज्ञ पुरुष एक मुहूर्त भी पंडित की सेवा में रहे तो वह शीघ्र ही धर्म को जान लेता है जैसे कि जिह्वा दाल के रस को।

मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं।

एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।

सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं।। (7) (पृ.34)

जो महीने-महीने सौ वर्ष तक हजार (मुद्रा) से यजन करे और यदि परिशुद्ध मन वाले एक (पुरुष) को मुहूर्तभर भी पूजे तो सौ वर्ष के हवन से वह पूजा ही श्रेष्ठ है।

अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो।

चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं।। (10)

जो अभिवादनशील है। जो सदा वृद्धों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं-(1) आयु (2) वर्ण (3) सुख (4) बल।

साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो।

अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया।। (11) (पृ.66)

आर्यों का दर्शन सुंदर है उनके साथ निवास सदा सुखदायक होता है, मूढ़ों के दर्शन न होने से मनुष्य सदा सुखी रहता है।

धीरञ्च पञ्ञञ्च बहुस्सुतं च धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं।

तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं भजेथ नक्खत्तपथं व चन्दिमा।। (12)

वैसे धीर, ज्ञानी बहुश्रुत, शीलवान, व्रत सम्पन्न, आर्य तथा बुद्धिमान पुरुष का अनुगमन उसी भाँति करे जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथ का।

सचे लभेय निपक सहायं सदि चरं साधु विहारिधीरं।

अभिभुयय सब्बानि परिस्सयानि चरेययं तेनत्तमनो सतीमा।। (9)

यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल पंडित मिल जाये तो सभी विघ्नों को दूर कर उसके साथ स्मृतिमान् और प्रसन्न होकर विहार करे।

आहार मिच्छे मियमेसणिज्जं सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धिं।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्गं समाहिकामे समणे तवस्सी।। (4)

उ.आ.पृ.336

अगर श्रमण तपस्वी समाधि की आकांक्षा रखता है तो वह परिमित और एषणीय आहार की इच्छा को करे, तत्वार्थों को जानने में निपुण बुद्धि वाला साथी खोजे तथा विवेक के योग्य एकांत घर में निवास करे। तुलसीदास ने भी संत समागम को दुर्लभ बताया है-

संतसमागम हरिभजन तुलसी दुर्लभ दोय।
सुतदारा अरू संपत्ति पापी के भी होय।।

नीतिकारों ने भी कहा है-

क्षणमपि सज्जन संगतिरेका। भवंति भवार्णव तरणि नौका।।

निर्ग्रंथ-श्रमण योग्य करणीय-अकरणीय

(चाल : तुम दिल की.....)

मोक्ष-लक्ष्य को साधने वाले, राग द्वेष मोह त्यागने वाले।
ख्याति पूजा लाभ त्यागने वाले, समता भाव में रहने वाले।।

इसी हेतु ही ध्यान करने वाले, ध्यान हेतु ज्ञान करने वाले।
स्वाध्याय-मनन करने वाले, निर्ग्रंथ-श्रमण आध्यात्म वाले।। (1)

क्रोध मान माया त्यागने वाले, ईर्ष्या द्वेष घृणा त्यागने वाले।
कलह-निन्दा को त्यागने वाले, लौकिक कार्यों को त्यागने वाले।।

धन-जन-मान से निस्पृह वाले, आर्त्त रौद्र ध्यान त्यागने वाले।
आत्म-निर्माण करने वाले, भौतिक निर्माण रहित वाले।। (2)

आजीविका हेतु न करने वाले यंत्र-मंत्र-तंत्र न करने वाले।
इसी हेतु प्रवचन न करने वाले, इसी हेतु प्रभावना न करने वाले।।

असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प, नौकरी विवाह उद्योग गृहस्थ काम।

ज्योतिष वास्तुकला गृहनिर्माण, नवकोटि से त्याग सांसारिक काम।। (3)

संकीर्ण पंथ-मत-जाति से परे, राष्ट्र-भाषा-रूढ़ि से परे।
दबाव प्रलोभन वर्चस्व परे, याचना चंदा व बोली से परे।।

आडम्बर दिखावा (सह) प्रभावना परे, निस्पृह समता शुचिता पूरे।
आत्मविशुद्धि पूर्ण प्रभावना पूरे, स्व-पर-विश्व कल्याण पूरे।। (4)

मंच-माईक व पण्डाल-होर्डिंग, निमंत्रण पत्रिका-कार्ड विज्ञापन।
हाथी-घोड़ा बाजा की स्पर्द्धा रहित, लंद-फंद व द्वंद रहित।।

मैत्री-प्रमोद-करुणा-माध्यस्थ, उदार अनेकांत भाव सहित।
उपगूहन-स्थितिकरण-वात्सल सह, आत्म प्रभावना लौकिक कामना रिक्त।।

आत्मा को परमात्मा बनाने वाले इसी हेतु (ही) हर कार्य करने वाले।
तरण तारण ऐसे गुरु हमारे, 'कनक' ऐसे साधुत्व चाहने वाले।। (5)

गु.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 24.03.2016 (होलिका पर्व), प्रातः 8.19

जैन श्रमण का त्याग होता है सांसारिक कुटुम्ब

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., आत्मशक्ति से.....)

माता-पिता व भाई-बंधु...होते है सांसारिक कुटुम्बीजन...
स्व-आत्मा ही निश्चय से...होता है आध्यात्मिक जन...(स्थायी)...

भले शरीर के माता-पितादि...होते हैं व्यवहार से...
आत्मा के वे न होते माता-पिता...आत्मा तो है अनादि से...

शरीर के तो हो गये माता...पिता अनादि से अनंत...
अनादि की इसी परंपरा को...अभी तो करना है अंत...(1)...

सचित्त-अचित्त-मिश्र परिग्रह...से भी निवृत्त होते है श्रमण...
श्रमण बनकर पुनः इसी में...जो प्रवृत्त होता वह भ्रष्ट श्रमण...

नवकोटि से जो होता त्याग...वह ही होता यथार्थ त्याग...
त्यागे हुए विषयों में ममत्व करना...नहीं होता है यथार्थ त्याग...(2)...

इसीलिये पूर्व आचार्यों ने...स्व-रचित ग्रंथों में न किया वर्णन...

माता-पितादि के नाम नहीं है...गुरु-शिष्यों का किया वर्णन...
'कनकनन्दी' भी इसी परंपरा को...कर रहा है सदा निर्वहण...
आत्मोपलब्धि निमित्त ही...हो रहा है सदा प्रयत्नवान्...(3)...

सन्दर्भ-

1. **कथमपि तपश्चरणे गृहीतेऽपि यदि गोत्रादि ममत्वं-करोति तदा तपोधन एव न भवति।** (प्र. सार टीका)
   जब किसी तरह से तप ग्रहण करते हुए अपने संबंधी आदि से ममता भाव करे, तब कोई तपस्वी ही नहीं हो सकता। कहा भी है-
2. **जो सकलणयररज्जं पुव्वं चइऊण कुणई यममत्तिं।**
   सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो।। (प्र. सार क्षेपक)
   जो पहले सर्व नगर व राज्य छोड़ के फिर ममता करे, वह मात्र भेषधारी है, संयम की अपेक्षा से रहित है अर्थात् संयमी नहीं है।

नन्दौड़, दिनांक 25.07.2015, अपराह्न 5.20

आगमोक्त शोधपरक कविता

आत्मा ही मूल व समता ही मूलगुण

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा.....)
आत्म स्वभाव ही मूलगुण है, जो समता रूप होता है।
अट्ठावीस (28) मूलगुण हैं इसके, जो साधन रूप होते हैं।। (स्थायी)

अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि के, मूल होता है आत्म तत्त्व।
इनकी अभिव्यक्ति होती समता से, अतएव समता है मूलगुण।

समता की साधना हेतु ही होते हैं, अट्ठावीस भी मूलगुण।
समता के अभाव में, उपकारी न होते ये मूलगुण।। (1)

राग द्वेष मोह व संक्लेश युक्त, ख्याति पूजा लाभ के लिए।
बाह्य कठोर तप-त्याग से भी, मोक्ष न मिले समता बिना।

यथा द्विपायन मुनि ने क्रोध के कारण जलाये द्वारकापुरी।
अनेक मनुष्य व तिर्यंच मरे, स्वयं की दुर्गति हुई भारी।। (2)

आत्म परिणाम हिंसन होने से, होती है निश्चय से हिंसा।
पंद्रह प्रकार प्रमाद से, होती है निश्चय से हिंसा।

चार कषाय-चार विकथा, तथाहि पंचेन्द्रियों के वश में होना।
निद्रा तथा प्रणय मिलकर, होते है पंद्रह प्रमाद।। (3)

इसी से युक्त जीव ही, निश्चय से होता है हिंसक व चोर।
मिथ्यावादी व कुशील परिग्रही, बताया जिनागम में सार।

अट्ठावीस मूलगुण पूर्णतः, हर समय न पालन होते।
यथा पाँचों समिति, सप्त विशेष, गुण न एक साथ होते।। (4)

अट्ठावीस मूलगुणों को बाहुबली, मुनि ने न पालन किया।
तथापि समता व ध्यान द्वारा, कर्म नष्टकर मोक्ष को पाया।

ऋद्धिधारी मुनि भी अट्ठावीस, मूलगुण न करते पालन।
अरिहंत सिद्ध भगवान् भी, न पालते (28) मूलगुण।। (5)

समता ही है परम चारित्र, यथायोग्य (पंच) परमेष्ठी में होते है।
समता में जब स्थिर न हो पाते, (साधु) छेदोपस्थापन
/(अट्ठावीस मूलगुण) पालते है।

समता ही है आत्मस्वभाव, अतएव मूलगुण है समता।
इसकी साधना व्यवहार मूलगुण, 'कनक' का लक्ष्य है समता।। (6)

संदर्भ-

आत्म-परिणाम-हिंसन हेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादि-केवलमुदाहृतं शिष्य बोधाय।। (42) पु.उ.

आत्मा के परिणामों की हिंसा होने के कारण से यह सब ही हिंसा है, असत्य वचनादि केवल शिष्यों को बोध करने के लिए कहे गये हैं।

बावीसं तित्थयरा सामायियसंजमं उवदिसति।
छेदुवठा वणियं पुण भयवं उसहो व वीरो य।। (535)

बाईस तीर्थंकर सामायिक संयम का उपदेश देते हैं किन्तु भगवान् वृषभदेव और महावीर छेदोपस्थापना संयम का उपदेश देते हैं।

आदीय दुव्विसोधण णिहणे तह सुट्ठु दुरणुपाले य।
पुरिमा य पच्छिमा वि हु कप्पाकप्प ण जाणंति।। (537)

आदिनाथ के तीर्थ में शिष्य कठिणता से शुद्ध होने से तथा अंतिम तीर्थंकर के तीर्थ में दुःख से उनका पालन होने से वे पूर्व के शिष्य और अंतिम तीर्थंकर के शिष्य योग्य व अयोग्य को नहीं जानते हैं।

निश्चयेन मूलमात्मा तस्य केवलाज्ञानाद्यनन्तगुणामूलगुणास्ते च निर्विकल्पसमाधिरूपेण परमसामायिकाभिधानेन निश्चयैकव्रतेन मोक्षबीजभूतेन मोक्षे जाते सति सर्वे प्रकटा भवन्ति। तेन कारणेन तदेव सामायिकं मूलगुणव्यक्तिकारणत्वात्निश्चयमूलगुणो भवति। यदापुनर्निर्विकल्पसमाधौ समर्थो न भवत्ययं जीवस्तदा यथा कोऽपि सुवर्णार्थी पुरुषः सुवर्णमलभमानस्तत्पर्यायानपि कुण्डलादीन गह्णति न च सवर्था त्यागं करोति, तथायं जीवोऽपि निश्चयमूलगुणाभिधानपरम छेदोपस्थापनं चारित्रं ग्रह्णति।

निश्चयनय से मूल नाम आत्मा का है। उस आत्मा के केवल ज्ञानादि अनंतगुण मूलगुण हैं। ये सब मूलगुण उस समय प्रगट होते हैं जब भेद-रहित समाधि रूप परम सामायिक निश्चय एक व्रत के द्वारा (जो मोक्ष का बीज है) मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इसी कारण से वही सामायिक आत्मा के केवलज्ञानादि मूलगुणों को प्रगट करने के कारण होने से निश्चय मूलगुण है। जब यह जीव अभेद रूप समाधि में सामायिक चारित्र में ठहरने को समर्थ नहीं होता है तब भेद रूप चारित्र को ग्रहण करता है, चारित्र का सर्वथा त्याग नहीं करता, जैसे कोई भी सुवर्ण का चाहने वाला पुरुष सुवर्ण को न पाता हुआ उसकी कुंडल आदि अवस्था विशेष को ही ग्रहण कर लेता है, सवर्था सुवर्ण का त्याग नहीं करता हैं तैसे यह जीव भी निश्चय मूलगुण नाम की परम समाधि अर्थात् अभेद सामायिक चारित्र का लाभ न होने पर छेदोपस्थापना नाम-भेदरूप चारित्र को ग्रहण करता है। (प्रवचनसार की 208, 209 की टीका)

लौकिक से परे व विपरीत भी है : आध्यात्मिक

(चाल : शत-शत वंदन....., आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

लौकिक से परे आध्यात्मिक, कथंचित् विपरीत भाव व्यवहार (भी)।
राग द्वेष मोह पक्षपात परे, परम पवित्र साम्य भाव ही।।

लौकिक जन तो सत्ता-संपत्ति में, करते ममत्व राग द्वेष भी।
तन-मन भाई-बंधु कुटुम्ब को, अपना मानते करते राग द्वेष भी।।

सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री से, करते स्व मूल्यांकन भी।
इसी की वृद्धि से स्व-वृद्धि, इसी की हानि से मानते स्व-हानि भी।।

भोगोपभोग में/(से) आनंद मानते, उसी हेतु होते प्रयत्नशील भी।
इसी हेतु करते अनेक पाप, अन्याय अत्याचार शोषण भी।।

आध्यात्मिक में यह सब कुछ न होता, इस से परे होते भाव-व्यवहार ही।
ज्ञान-वैराग्य समता शुचि सह, निस्पृह वीतराग आकिंचन्य भी।।

शरीर मन से परे हैं आध्यात्मिक, सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि परे भी।
अपना पराया भेद-भाव से परे, भोगोपभोग शत्रु-मित्र से भी।।

सामाजिक लौकिक नियम-कानून, रीति-रिवाज-परंपरा बंधन।
उच्च-नीच भेद-भाव पक्षपात परे, समता-शांति व वैराग्य सह।।

आत्मा में ही आत्मा के लिये, आत्मा द्वारा हर भाव-व्यवहार भी।
आत्मा द्वारा आत्मा का भोगोपभोग, आत्म वैभव में ही होता रमण भी।।

यह ही आध्यात्मिक (का) परम सत्य, यह ही परम धर्म, परम लक्ष्य।
अहिंसा आराधना साधना तप, 'कनकनन्दी' का यह परम लक्ष्य।।

संदर्भ-प्रवचनसार

जो संग तु मुइत्ता जाणादि उवओगमप्पगं सुद्धं।
तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विंति।। (131) स.सार

जो साधु बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़कर अपने आप की आत्मा को दर्शन-ज्ञानोपयोग स्वरूप-शुद्ध अनुभव करता है। उसको परमार्थ स्वरूप जानने वाले गणधरादिक देव निर्ग्रन्थ साधु कहते हैं।

जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहु परमट्ठवियाणया विंति।। (32)

जो पर पदार्थ में होने वाले मोह को छोड़कर अपने आप को केवल मात्र निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमय अनुभव करता है। परमार्थ के जानने वाले तीर्थंकरादिक परमेष्ठी उसी साधु को मोह रहित कहते हैं।

चारित्रं भवति यतः समस्त सावद्ययोग परिहरणात्।

सकल कषाय विमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत्।। (39) पु. सिद्धि

समस्त पापयुक्त योगों के दूर करने से चारित्र होता है, वह चारित्र समस्त कषायों से रहित होता है, निर्मल होता है, राग-द्वेष रहित वीतराग होता है, वह चारित्र आत्मा का निज स्वरूप है।

अनुसरतां पदमेतत् करंविताचार नित्यनिरभिमुखा।

एकान्तविरतीरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्ति।। (16) पु. सिद्धि

इस पद को अनुसरण करने वाले अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त हुये मुनियों की पापमिश्रित आचार से सदा पराङ्मुख सवर्था त्यागरूप लोक को अतिक्रम किये हुये वृत्ति होती है।

मानव भौतिक-आर्थिक-सामाजिक आदि से परे आध्यात्मिक भी है

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

मानव नहीं केवल भौतिक, तथाहि सामाजिक या आर्थिक।
बुद्धि व मन से भी परे है, संवेदनशील-नैतिक-आध्यात्मिक।।

आध्यात्मिक ही है मौलिक तत्त्व/(परम सत्य), भौतिक आदि है मिश्रतत्त्व।
आत्मतत्त्व से ही अनुश्रुत होकर, भौतिक आदि बनते (हैं) मिश्रतत्त्व।

जिनोम से लेकर शरीर तक, सभी होते हैं भौतिक तत्त्व।
द्रव्यकर्म व नोकर्म आदि भी, होते हैं सभी भौतिक तत्त्व।।

सत्ता संपत्ति व धन वैभव भी, सोना-चाँदी व उपकरण भी।
यान-वाहन, वैज्ञानिक यंत्रादि, भौतिक होते हैं कंप्यूटर भी।

चार्वाक व आधुनिक वैज्ञानिक, मानव को मानते है भौतिक तत्त्व।
अर्थशास्त्री व अर्थलोलुपी, मानव को मानते हैं आर्थिक जीव।।

समाजशास्त्री मानते हैं सामाजिक जीव, बुद्धिजीवी मानते है बौद्धिक जीव।
मन को प्रधानता देते मनोविज्ञानी, नीतिज्ञ मानते मानव नैतिक-जीव।

इसी से परे भी है मानव अस्तित्व, संवेदनशील-सांस्कृतिक, आध्यात्मिक।

उतरोत्तर भी ये श्रेष्ठ होते, परम सत्य तो है आध्यात्मिक।।

आध्यात्मिक तो है अजर-अमर, स्वयंभू सनातन सत्य शिव सुन्दर।
अखण्ड अविनाशी सच्चिदानन्द, अमूर्तिक चैतन्य अनंत गुण भण्डार।

आध्यात्मिक को न जानते अधिक मानव, रूढ़िवादी धार्मिक से वैज्ञानिक तक।
सर्वज्ञ जानते पूर्णतः आत्मा को, वीतरागी साधु भी मानते/(जानते) आत्मा को।।

आत्मज्ञान ही है परम विज्ञान, आत्मविश्वास ही है परम श्रद्धान।
आत्मोपलब्धि ही है परम सफलता, 'कनकनन्दी' चाहे परम सफलता।।

संदर्भ-

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मुढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः।। (58) पृ. 85

मूर्ख बहिरात्मा जीव बिना बतलाये गये आत्म स्वरूप को जिस तरह नहीं जानते हैं उसी प्रकार बतलाने पर भी आत्म स्वरूप को नहीं जानते इस कारण उन मूर्ख बहिरात्माओं के लिए मेरा आत्मा का शुद्ध स्वरूप समझाने का परिश्रम व्यर्थ है।

अभवच्चित्तविक्षेप एकांते तत्वसंस्थितिः।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्वं निजात्मनः।। (36) पृ. 212

जिसके चित्त में राग-द्वेष आदि का क्षोभ नहीं है तथा हेय तथा उपादेय तत्व विचार में जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा आत्मध्यानी मुनि अकेले निर्जन स्थान में आलस्य तथा निद्रा त्यागकर सावधानी से अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप के चिंतन का अभ्यास करें।

लौकिक जन का लक्षण

णिग्गंथो पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहिं कम्मेहिं।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजमतवसंपजुदो चावि।। (269)

If a monk, after becoming a Nirgrantha ascetic, still dabbles in worldly professions (like palmistry etc.) he is called a worldly man (or a commoner) even though he is endowed (externally) with selfcontrol and austerities.

जिसने वस्त्रादि परिग्रह को त्याग कर व मुनि पद की दीक्षा लेकर यति पद धारण कर लिया है ऐसा साधु यदि निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय के नाश करने वाले

भाव जो **अपनी प्रसिद्धि बड़ाई व लाभ के बढ़ाने के कारण ज्योतिष कर्म, मंत्र, यंत्र, वैद्यक आदि लौकिक गृहस्थों के जीवन के उपायरूप व्यापारों के द्वारा वर्तन करता है तो वह द्रव्य संयम व द्रव्य तप को धारता हुआ भी लौकिक अथवा व्यावहारिक कहा जाता है।**

प्रतिज्ञातपरमनैर्ग्रन्थ्यप्रव्रज्यत्वादुदूढसंयमतपोभारोऽपि मोहबहुलतया श्लथीकृतशुद्ध-चेतनव्यवहारो मुहुर्मनुष्यव्यवहारेण व्याधूर्णमानत्वादैहिककर्मानिवृत्तौ लौकिक इत्युच्यते।

(तत्त्वप्रदीपिका)

परम निर्ग्रंथता रूप प्रव्रज्या की प्रतिज्ञा लेकर जो जीव संयम तप के भार को वहन करता है वह भी यदि मोह की बहुलता के कारण शुद्ध चेतन व्यवहार को छोड़कर निरंतर मनुष्य व्यवहार में चक्कर खाने से लौकिक कार्यों को करता हो तो लौकिक कहा जाता है।

समीक्षा-कुंदकुंद देव ने इस गाथा में श्रमणाभास या लौकिक श्रमण का वर्णन किया है। उन्होंने केवल गृह व्यापार में लिप्त जनों को ही लौकिक नहीं कहा परन्तु निर्ग्रंथ होकर भी जो आत्मकल्याण को छोड़कर बाह्य कार्यों में रत रहता है उस श्रमण को भी लौकिक कहा है। श्रमण का अर्थ है जो आत्मा के लिए सतत श्रम करे उसे श्रमण कहते हैं, इन्हें साधु भी कहते हैं। कहा भी-

मानमाया मदामर्ष क्षपणात्क्षपणः स्मृतः।

यो न श्रान्तो भवेद्भ्रान्तेस्तं विदुः श्रमणा बुधाः।। (402) य.ति.चम्पू.

गर्व, कपट, मद व क्रोध का क्षय कर देने के कारण साधु 'क्षपण' कहा गया है और अनेक स्थानों में ईर्या समिति पूर्वक विहार करने से थका हुआ नहीं होता, इसलिए विद्वान उसे श्रमण जानते हैं।

निर्ममोनिरहंकरो निर्माणमदमत्सरः।

निन्दायं संस्तवे चैव समधीः शंसितव्रतः।।

जो मूर्च्छा (ममता) से रहित है, अहंकार-शून्य है जो मान, मद व ईर्षा से रहित है जिसके अहिंसा-आदि महाव्रत प्रशंसनीय है और जो अपनी निंदा व स्तुति में समान बुद्धि युक्त (राग-द्वेष शून्य) है अर्थात् जो अपनी निंदा करने वाले शत्रु से द्वेष नहीं करता और स्तुति करने वाले मित्र से राग नहीं करता अतः उसे **समधी** कहते हैं। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।

ज्ञानध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते।। (10) र.श्रा.

जो विषयों की आशा के वश से रहित हो, परिग्रह रहित हो और ज्ञान ध्यान तथा तप रूपी रत्नों से सहित हो वह गुरु प्रशंसनीय हैं।

जीव अनादिकाल से स्व स्वभाव से बहिर्मुख होकर परभाव में रच रहा है, पच रहा है, रमण कर रहा है इसे ही संसार, भवभ्रमण, परपरिणति कहते हैं। इस समय में जो परिणति होती है वह स्वस्वरूप से विपरीत होती है। इसलिए मोक्ष की गति इससे विपरीत है। इसलिए मुमुक्षु की गति, प्रवृत्ति सांसारिक लोगों की गति से विपरीत होना स्वाभाविक है। इसलिए तो अमृतचंद्र सूरी ने कहा है-

अनुसरतां पदमेतत् करंविताचार नित्यनिरभिमुखा।

एकांतविरतिरुपाभवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः।। (16) (पु.सि.)

इस पद का अनुसरण करने वाले अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त हुए मुनियों की **पापमिश्रित आचार से सदा पराङ् मुख (सर्वथा त्याग रूप) लोक को अतिक्रम किये हुए वृत्ति होती है।**

ऐसे महाश्रमणों की हर क्रिया, हर आचार-विचार स्वआत्म कल्याण को लक्ष करके होते हैं। वे कोई भी कार्य इसके विपरीत न करते हैं, न करवाते हैं न अनुमोदन करते हैं। दशवैकालिक में कहा भी है-

चउविहा खलु आयार समाही भवइ तं जहा (1) नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठज्जा (2) नो परलोगट्ठयाए आयार महिट्ठज्जा (3) नो कित्तिवण्णसदद्सिलोट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा (4) नन्नत्थ अरहंतेहिं हेऊहि आयारमहिट्ठज्जा।

आचार समाधि के चार प्रकार हैं जैसे-(1) इहलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए (2) परलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए। (3) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना चाहिए परन्तु उपभोक्त भावना से रहित जो अन्य किसी भी लौकिक भावना से प्रेरित होकर धर्म करते हैं उनका धर्म, धर्माभास हैं एवं वह श्रमण भी श्रमणाभास हैं। पंचमकाल में कुछ व्यक्ति विशेष लौकिक प्रयोजन से धर्म करते हैं। यथा-

भयं दाक्षिण्यं कीर्ति च लज्जया आशा तथैव च।

पंचभि पंचमकाले जैनो धर्मः प्रवर्तते।।

पंचमकाल में लोग जैन धर्म को (1) लोकभय से (2) अपनी योग्यता को प्रदर्शन करने के लिए (3) कीर्ति के लिए (4) लज्जा से (5) आशा से पालन करेंगे। जो मुनि लिंग को धारण करके भी सिद्धि को छोड़कर प्रसिद्धि में लग जाते हैं, प्रभावना के नाम पर परभावना में रत रहते हैं, स्वनिर्वाण को छोड़कर भौतिक निर्माण (धर्मशाला, संस्था) में लगे रहते हैं, निहित स्वार्थ के लिए, चमत्कार के प्रदर्शन के लिए, भौतिक उपार्जन के लिए लोक प्रसिद्धि लोकसंग्रह के लिए मंत्र, तंत्र, यंत्र में लगे रहते हैं वे भी श्रमणाभास हैं। ज्ञानार्णव में ध्यान के अयोग्य व्यक्तियों का वर्णन करते हुए कहा है-

लोकानुरंजकैः पापैःकर्मभिर्गौरवं श्रिताः।
अरञ्जितनिजस्वान्ता अक्षार्थगहने रताः।। (46) पृ. 741
अनुद्धृतमनः शल्या अकृताध्यात्मनिश्चयाः।
अभिन्नभावदुर्लेश्या निषिद्धा ध्यानसाधने।। (47)

जो लोगों को रंजित करने वाला पापरूप कार्यों से गुरुता को प्राप्त हैं, नहीं लीन हुआ है आत्मा में चित्त जिनका ऐसे हैं, तथा इन्द्रियों के विषयों की गहनता में लीन हैं, जिनने मन के शल्य को दूर नहीं किया है तथा अध्यात्म का निश्चय नहीं किया है और अपने भावों से दुर्लेश्या को दूर नहीं किया है, ऐसे पुरुष ध्यान साधन में निषेधित हैं। क्योंकि इनमें ध्यान की योग्यता नहीं है।

नर्मकौतुककौटिल्यपापसूत्रोपदेशकाः।
अज्ञानज्वरशीर्णाङ्गा मोहनिद्रास्तचेतनाः।। (48)
अनुद्युक्तास्तपः कर्तुं विषयग्रासलालसाः।
ससङ्का शङ्किताता भीता मन्येऽमी दैववञ्चिताः।। (49)
एते तृणीकृतस्वार्था मुक्तिश्रीसङ्गनिःस्पहः।
प्रभवन्ति न सद्ध्यानमन्वेषितुमपि क्षणं।। (50)

जो हास्य, कौतूहल, कुटिलता तथा हिंसादि पाप प्रवृत्ति के शास्त्रों का उपदेश करने वाले हैं तथा मिथ्यात्वरूपी ज्वर रोग से जिनकी आत्मा शीर्ण (रोगी) है विकारयुक्त है, और मोहरूप निद्रा से जिनकी चेतना नष्ट हो गई है, जो तप करने को उद्यमी नहीं है विषयों से जिनकी चेतना नष्ट हो गई है, विषयों की जिनके अतिशय लालसा है जो परिग्रह और शंका सहित है, वस्तु का निर्णय जिनको नहीं है तथा जो भयभीत है ऐसा मानता हूँ कि ऐसे पुरुष दैव के द्वारा ठगे गये हैं। फिर ऐसे पुरुषों से

ध्यान कैसे हो सकता है? इन पुरुषों ने अपने हित को तृण के समान समझ लिया है तथा मुक्ति रूपी स्त्री के संगम करने में निःस्पृह हो गये हैं। इस कारण ये समीचीन ध्यान के अन्वेषण करने को क्षणमात्र भी समर्थ नहीं हो सकते हैं।

पापाभिचारकर्म्माणि सातर्द्धिरसलम्पटैः।
यैः क्रियन्तेऽधर्ममोहाद्वा हतं तैः स्वजीवितं।।

जो साता वेदनीय जनित सुख और अणिमा-महिमादि तथा धनादिक ऋद्धि तथा रसीले भोजनादिक में लंपट है, मोह से पापाभिचार कर्म करे हैं, उनके लिए आचार्य महाराज खेद सहित कहते हैं कि हाय! हाय! इन्होंने अपने जीवन का नाश और अपने को संसार समुद्र में डूबा दिया।

वे पापाभिचार कर्म कौन-कौनसे हैं सो कहते हैं-

वश्याकर्षणविद्वेषं मारणोच्चाटनं तथा।
जलानलविषस्तम्भो रसकर्म रसायनम्।। (52)
पुरक्षोभेन्द्रजालं च बलस्तम्भो जयाजयौ।
विद्याच्छेदस्तथा वेधं ज्योतिर्ज्ञानं चिकित्सितम्।। (53)
यक्षिणीमन्त्रपातालसिद्धयः कालवञ्चना।
पादुकाञ्जननिस्त्रिंशभूतभोगीद्रसाधनं।। (54)
इत्यादिविक्रियाकर्मरञ्जितैर्दुष्टचेष्टितैः।
आत्मानमपि न ज्ञातुं नष्टं लोकद्वयच्युतैः।। (55)

वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, मारण, उच्चाटन तथा जल, अग्नि, विष का स्तंभन, रसकर्म, रसायन नगर में क्षोभ उत्पन्न करना, इन्द्रजालसाधना, सेना का स्तंभन करना, जीतहार का विधान बताना, विद्या के छेदने का विधान, साधना, वेधना, ज्योतिष्क का ज्ञान वैद्यकविद्या साधन। यक्षिणि मंत्र, पातालसिद्धि के विधान का अभ्यास करना, कालवचन (मृत्यु जीतने का मंत्र साधना) पादुकासाधन (खड़ाऊँ पहनकर आकाश विहार करने की विद्या का साधन) करना, अदृश्य होने तथा गड़े हुए धन देखने के अंजन की साधना, शस्त्रादिकी साधना, भूतसाधन, सर्पसाधन इत्यादि विक्रिया रूप कार्यों में अनुरक्त होकर दुष्ट चेष्टा करने वाले जो हैं। उन्होंने आत्मज्ञान से भी हाथ धोया और अपने दोनों लोक के कार्य को भी नष्ट किया। ऐसे पुरुषों के ध्यान की सिद्ध होनी कठिन हैं।

यतित्वं जीवनोपायं कुर्वन्तः किं न लज्जिताः।

मातुः पण्यमिवालम्ब्य यथा केचिद्गतघृणाः।। (56)

निस्त्रपाः कर्म कुर्वन्ति यतित्वेऽप्यतिनिन्दितम्।

ततो विराध्य सन्मार्गं विशन्ति नरकोदरे।। (57)

कई निर्दय, निर्लज्ज साधु पर से भी अतिशय निंदा करने योग्य कार्य करते हैं। वे समीचीन हितरूप मार्ग का विरोध कर नरक में प्रवेश करते हैं। जैसे कोई अपनी **माता को वेश्या बनाकर उससे धनोपार्जन करते हैं तैसे ही जो मुनि होकर उस मुनि दीक्षा को जीविका का उपाय बनाते हैं और उसके द्वारा धनोपार्जन करते हैं वे अतिशय निर्दय तथा निर्लज्ज हैं।**

अविद्याश्रयणं युक्तं प्राग्गृहावस्थितैर्वरम्।

मुक्त्यङ्गं लिङ्गमादाय न श्लाघ्यं लोकदम्भनं।।

जो गृहस्थावस्था में हैं उनको तो ऐसी अविद्या का आश्रय करना कदाचित् युक्त भी कहा जा सकता है परन्तु मुक्ति के अंगस्वरूप मुनि के भेष को धारण करके लोक का ठगना कदापि प्रशंसनीय नहीं है।

मनुष्यत्वं समासाद्य यतित्वं च जगन्नतुम्।

हेयमेवाशुभं कार्यं विवेच्य सुहितं बुधैः।।

मनुष्य भव पाकर, उसमें फिर **जगत्पूज्य मुनि दीक्षा को ग्रहण** करके विद्वानों को अपना हित का विचार करके अशुभ कर्म अवश्य ही छोड़ना चाहिए।

अहो विभ्रान्तचित्ताना पश्य पुसां विचेष्टितम्।

यत्प्रपञ्चैर्यतित्वेऽपि नीयते जन्म निःफलम्।।

आचार्य महाराज कहते हैं कि देखो भ्रमरूप चित्तवाले पुरुषों की चेष्टा साधुपन में भी पाखंड प्रपंच करके जन्म को निष्फल कर देती है।

लिंग पाहुड में तो कुंदकुंदाचार्य ने भ्रष्ट श्रमण को तिर्यंचादि शब्द से संबोधन करके कटु प्रहार किया है। यथा-

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।

जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।। (2) पृ. 683

धर्म से ही लिंग होता है। लिंगमात्र धारण करने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है इसलिये भाव को धर्म जानो। भाव-रहित लिंग से तुझे क्या कार्य है?

जो पावमोहिदमदी लिङ्ग घेत्तूण जिणवरिंदाणं।

उवहसइ लिंगि भावं लिगं णासेदि लिंगीणं।। (3)

जिसकी बुद्धिपाप से मोहित हो रही है ऐसा जो पुरुष जिनेन्द्र देव के लिंग को नग्न दिगम्बर वेष को ग्रहण कर लिंगी के यथार्थ भाव की हँसी करता है वह सच्चे वेषधारियों के वेष को नष्ट करता है अर्थात् लजाता है।

कलहं वादं जूवा णिच्चं वहुमाणगव्विओ लिंगी।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।। (6)

जो पुरुष मुनि लिंग का धारक होकर भी निरंतर अत्यधिक **गर्व से युक्त होता** हुआ **कलह करता** है, **वाद-विवाद करता** है अथवा जुआ खेलता है वह चूँकि मुनि लिंग का धारक होकर भी निरंतर ऐसे कुकृत्य करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

जो जोडदि विव्वाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।। (9)

जो मुनि का लिंग रखकर भी दूसरों के **विवाह संबंध जोड़ता है तथा खेती और व्यापार के द्वारा जीवों का घात कराता है** वह चूँकि मुनि लिंग के द्वारा इस कुकृत्य को करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

कंदप्पा इय वट्टइ कारमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।

मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (12)

जो पुरुष मुनि वेषी होकर भी कंदर्पी आदि कुत्सित भावनाओं को करता है तथा भोजन में रस संबंधी लोलुपता को धारण करता है वह मायाचारी मुनिलिंग को नष्ट करने वाला पशु है, मुनि नहीं है।

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण: भुज्जदे पिंडं।

अवरूपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो।। (13)

जो आहार के निमित्त दौड़ता है **कलह कर भोजन को ग्रहण करता है और उसके निमित्त दूसरों से ईर्ष्या करता है** वह जिनमार्गी श्रमण नहीं है।

गिण्हदिं अदत्तदाणपरणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।

जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो।। (14)

जो मनुष्य जिन लिंग को धारण करता हुआ भी बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण

करता है तथा **परोक्ष में दूषण लगाकर दूसरे की निंदा करता है वह चोर के समान है साधु नहीं है।**

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।

आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (18)

जो दीक्षा से रहित गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखता है तथा आचार और विनय से रहित है वह तिर्यंच है साधु नहीं है।

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।

बहुलं पि जाणमाणो भावविणठो ण सो सवणो।। (19)

हे मुनिवर! ऐसी खोटी प्रवृत्तियों से सहित मुनि यद्यपि संयमी जनों के मध्य में रहता है और बहुत ज्ञानवान भी हो तो भी वह भाव से नष्ट है। अर्थात् भावलिंग से रहित है यथार्थ मुनि नहीं है।

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देदि वोसट्ठो।

पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो।। (20)

जो **स्त्रियों में विश्वास उपजा कर** उन्हें दर्शन, ज्ञान और चारित्र देता है वह पार्श्वस्थ मुनि से भी निकृष्ट है तथा भावलिंग से शून्य वह परमार्थ मुनि नहीं है।

धम्मपद में महात्मा बुद्ध ने कहा भी है-

असतं भावनमिच्छेप्य पूरक्खारञ्च भिक्खुसु।

आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च।

ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो।

ममेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।

इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च वड्ढति। (15) (पृ. 24)

भिक्षुओं के बीच अगुआ होना, मठों का अधिपति बनना, गृहस्थ परिवारों में पूजित होना, गृही और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया माने, सभी प्रकार के काम में वे मेरे ही अधीन रहे ऐसा मूर्ख का संकल्प होता है जिससे उसकी इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

(अञ्ञाहि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बानगामिनी)।

एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको।

सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये।। (16)

लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा-इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु सत्कार का अभिनंदन न करे और विवेक (एकांतवास) को बढ़ावे।

न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा।

साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो।। (7) (पृ. 83 ध.ध.)

ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ पुरुष वक्ता या रूपवान् होने मात्र से साधु-रूप नहीं होता।

न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं।

इच्छालाभसमापन्नो समणो किं भविस्सति।।

जो व्रतरहित, मिथ्याभाषी है वह पण्डित होने मात्र से श्रमण नहीं होता, इच्छा-लाभ से भरा (पुरुष) क्या श्रमण होगा?

कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति।

सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयाय उपकड्ढति।। (6) (पृ. 98 निरयवग्गो धम्मपद)

जैसे ठीक से न पकड़ने से कुश हाथ को ही छेदता है इसी प्रकार श्रामण्य ठीक से न ग्रहण करने पर नरक में ले जाता है।

मिद्धी यदा होति महग्घसो च

निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।

महावराहो व निवापपुट्ठो

पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो। (6) पृ. 102 नाग वग्गो धम्मपद

आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल-बदल कर सोने वाला, खिला-पिलाकर पुष्ट किये मोटे सूअर की तरह मंद (अभागा) बार-बार गर्भ में पड़ता है।

मुनिसंघ की अलौकिक पावन होली

(चाल : झनक-झनक....., अजहु न आए.....)

होली खेले मुनिसंघ एकांत-मौन में...

ज्ञान-गुलाल समता-पिचकारी...वात्सल्य रंग बिखरे जग में...(ध्रुवपद)...

अष्ट कर्मरूपी काष्ट को जलाएऽऽऽ ध्यान-अग्नि को मन में जगाएऽऽऽ।

आत्म गुणों को साथ में लेकरऽऽऽ उत्सव मनाये आनंद जगाएऽऽऽ।।
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध त्यजकरऽऽऽ अपना-पराया भेद-भाव त्यजकरऽऽऽ।
भव-ताप को शांत करने हेतुऽऽऽ शांत-शीतल भावना उरधरऽऽऽ।।

सुमन-कुसुम की गंध-बयार चलेऽऽऽ वैर-विरोध रूपी पत्ते झरेऽऽऽ।
नवीन अनुपम भाव कलियाँ खिलेऽऽऽ ज्ञानानंद रूपी मकरंद भरेऽऽऽ।।

मुनिसंघ ऐसी होली खेले अलौकिकऽऽऽ अनुपम आनंद क्रीड़ा करेऽऽऽ।
अंत में मोक्ष सुख रूपी फल पावेऽऽऽ अतः 'कनक' ऐसी होली खेलेऽऽऽ।।

गु.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 24.03.2016, मध्याह्न 2.15 (होली)

अज्ञानी मोही लोभी के विपरीत भाव-व्यवहार

(तर्ज : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)

मोही अज्ञानी लोभी मानव सही को न समझता।
हित को अहित माने अहित को हित मानता।।

हवा-पानी-मिट्टी की जितनी आवश्यकता।
उतनी नहीं है सोने की आवश्यकता।।

तथापि लोभी मोही मानव सोना चाहता।
हवा-पानी-मिट्टी को बर्बाद करता।।

ऐसा ही सत्य-समता-शांति का महत्व।
तो भी (मानव) सत्ता-संपत्ति (ख्याति) को महत्व देता।

ऐसा ही नैतिक आध्यात्मिक का महत्व।
(तो भी) पढ़ाई बढ़ाई चमड़ी (दमड़ी) का महत्व।।

दया सेवा परोपकार का होता है महत्व।
कट्टर रूढ़ि परम्परा को देता महत्व।।

सरल-सहज-सादा जीवन का महत्व।
तो भी मानव दिखावा (ढोंग आडम्बर) को देता महत्व।।

शुद्ध भाव सदाचार होता है धर्म।

इसी से भिन्न कट्टरता (संकीर्णता) से पालता धर्म।।

शुद्ध-प्राकृतिक आहार पानी का (जीवन में) महत्व।
तो भी मानव कृत्रिम (अशुद्ध) भोजन करता सेवन।।

प्रेम (सौहार्द्र) सहयोग संगठन का महत्व।
तो भी मानव ईर्ष्या द्वेष (घृणादि) का करता सेवन।।

इसी कारण सत्ता-संपत्ति (डिग्री) से मिले न सुख।
सुख प्राप्ति हेतु 'कनक' लिखा (यह) काव्य।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 27.03.2016, अपराह्न 5.35

(धार्मिक-वैज्ञानिक-मेरे अनुभव की कविता)

दान-दया-सेवा-सहयोग से प्राप्त 10 लाभ : वैज्ञानिक दृष्टि से

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

दान-दया-सेवा व सहयोग से, मिलता है सुख विशेष रूप से।
सत्ता-संपत्ति से मिले भौतिक सुख, दान-दयादि से मिले आत्मिक सुख।।

धर्म में इनका तो है बहुत वर्णन, प्रचलन रूप से व ग्रंथों में लेखन।
आधुनिक विज्ञान भी शोध कर रहा है, धर्म के रहस्य प्रकट कर रहा है।। (1)

दिमाग का खुशी केन्द्र होता सक्रिय, सुख अनुभव हेतु बनता माध्यम।
धन कमाने से जो होता है सुख, दान-दयादि से होता है वह सुख।।

दीन दरिद्र रोगी असहाय की सेवा से, वह सुख मिले जो स्वहेतु खर्च से।
इसी से तन-मन की भी सुंदरता बढ़ती, अंतरंग की सुंदरता से प्रभावित होती।। (2)

वातावरण में भी प्रसन्नता फैलती, शांति व ऊर्जा भी विस्तारित होती।
अन्य लोग भी इसी से प्रभावित होते, वे भी दान-दया-सेवादि करते।।

भौतिक सुगंधी फैलती हवा की दिशा में, सुगुण की सुगंधी फैले दशों दिशा में।
जो दीपक स्वयं प्रकाशित होता है, अन्य भी प्रकाशित स्वयंमेव होते है।। (3)

इसी से रोग प्रतिरोधक शक्ति वृद्धि होती, स्वास्थ्य लाभ होता आयु दीर्घ होती।

डिप्रेशन व एंग्जाइटी इनसे दूर होती, एकाग्रता व कार्य क्षमता बढ़ती।।
समय प्रबंधन का गुण विकसित होता, जिससे स्वकाम भी शीघ्र होता।
जिससे ज्ञानार्जन या धनार्जन काम, सही होने से मिले सफलता विभिन्न।। (4)
दया-दानादि है मानव के प्राकृतिक गुण, इसी से विकसित होते अनेक गुण।
प्रेम-संगठन-सहयोग आदि बढ़ते गुण, 'कनक' को प्रिय उक्त सभी गुण।।
बाल्यकाल से कर रहा हूँ उक्त सभी काम, उपरोक्त सभी फल मिल रहे अविराम।
लेखन प्रवचन प्रेरणा देता हूँ सतत, शोध-बोध-अनुभव मेरा भी अनेक।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 27.03.2016, रात्रि 8.45

(विशेष परिज्ञान के लिए कविवृत्त सेवा-दानी होते है जीवन्त धार्मिक आदि कृतियों का अध्ययन करें।)

ज्ञानी देखता जीव के अनंत रूप

(चाल : देखो हे! सही देखो हे!....., छूटे ना प्रीत तिहारी.....)
देखो हे ! ज्ञानी देखो हे !2...जीव (आत्मा) के अनंत रूप।
संसार मध्य में भ्रमण से लेकर2...शुद्ध-बुद्ध व अनंत रूप।।

अनंत काल से अनंत भव में2...चारों गति में दुःख अनंत।
जन्म-मरण व जरा-रोग से2...पीड़ित होकर पाया दुःख अनंत।।

आहार मैथुन व भय-परिग्रह2...क्रोध-मान-माया-लोभ पीड़ित।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-तृष्णा सहित2...कभी न पाया है सुख अनंत।।

सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि हेतु2...किया है उपरोक्त दोष समस्त।
इसे ही अपना सर्वस्व मानकर2...स्व-शुद्ध-स्वरूप से हुआ वंचित।।

इसी से परे (जीव) जब जाने स्वयं को2...मैं हूँ सच्चिदानंद अमूर्त रूप।
सांसारिक मोह-ममत्व त्यागकर2...आत्मोपलब्धि हेतु होता प्रवृत्त।।

ज्ञान-ध्यान व तपश्चर्या द्वारा2...स्वयं को करता है दोष विमुक्त।
अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्य पाकर2...'कनक' पाता है स्वशुद्ध स्वरूप।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 25.03.2016, मध्याह्न 2.25

आत्मोपलब्धि हेतु...

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : श्री राधा संग रे....., श्री हरी रंग रे....., होली खेले सुवाले2.....(उड़िया).....)

श्रद्धा की शक्ति से..प्रज्ञा की ज्योति से...आत्मा की खोज करो...2...
इन्द्रिय-यंत्रों से..भौतिक-साक्ष्यों से...आत्मा की लब्धि परे...(ध्रुव)...

आत्मा है अमूर्त..चैतन्य गुणवन्त...आत्म-अनुभव से ज्ञात...2...
यथा आकाश भी..इन्द्रिय-यंत्रों से...नहीं हो पाता है ज्ञात...(1)...

सत्ता-संपत्ति व..प्रसिद्धि डिग्री से...आत्म-उपलब्धि न होती...2...
इससे आसक्त जीव को..आत्म-गुणों से...होती है विरक्ति...(2)...

इससे अनासक्त..ज्ञान-वैराग्य युक्त...जीवों को होती आत्मोपलब्धि...2...
राग-द्वेष-मोह..काम-क्रोध रिक्त...जीव को होती आत्मोपलब्धि...(3)...

आत्मोपलब्धि ही..परम उपलब्धि...अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्यमय...2...
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी'..सतत करे है...ध्यान व अध्ययन...(4)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 26.03.2016, मध्याह्न 2.37

पशु-पक्षी-देव-नारकी-नर-नारी भी होते है जैन (सम्यग्दृष्टि आदि)

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)

कितना पावन कितना उदार है कितना व्यापक जैन धर्म प्यारा।
परम सर्वोदय परम अन्त्योदय आध्यात्मिक वैश्विक धर्म न्यारा।।

जैन धर्म को पाल सकते है पशु-पक्षी देव-नारकी नर-नारी।
जो मिथ्यात्व अनंतानुबंधी के उपशमादि से बनते सुदृष्टि प्राणी।। (1)

समवशरण की बारह सभा में जो होते हैं वे सभी होते सुदृष्टि।
द्वादश कोठे में तो केवल तिर्यंच ही होते सिंह व्याघ्र सर्प नेवला आदि।।

चारण ऋद्धिधारी मुनि के उपदेश से सिंह भी बन गया था सुदृष्टि।
वही सिंह आध्यात्मिक विकास द्वारा बना है तीर्थंकर सन्मति।। (2)

तीर्थंकर पारसनाथ भी पूर्व भव में थे सम्यग्दृष्टि हाथी।
जटायु पक्षी भी था सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक अभी (भी) नारकी।।

असंख्य देव होते हैं सम्यग्दृष्टि कुछ तो होते क्षायिक सम्यग्दृष्टि।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शुद्र नर-नारी भी होते यथायोग्य (तीनों प्रकार) सुदृष्टि।। (3)

चारों गति में होते सुदृष्टि जिसे कहते प्राथमिक जैन धर्मी।
नारकी देवों में होते प्राथमिक जैन तिर्यंच में होते व्रती/(श्रावक) भी।।

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तो हो सकते है पाँचों-परमेष्ठी भी।
शुद्र भी होते हैं प्राथमिक जैन से लेकर व्रती श्रावक भी।। (4)

नारी भी हो सकती है प्राथमिक जैन से लेकर आर्यिका तक भी।
सुद्रव्य क्षेत्रकाल भावानुसार आत्मविशुद्धि से बनते जैन धर्मी।।

जैन धर्म तो आत्म स्वभाव है इसे न भौतिकता से प्राप्त करना संभव।
जैन धर्म है आत्म विजयी धर्म जो विजय करे राग द्वेष मोहादि पर।। (5)

आध्यात्मिक क्रम विकास द्वारा भव्य जीव ही बनते भगवान्।
भगवान् बनने हेतु 'कनकनन्दी' बना है आध्यात्मिक श्रमण।। (6)

संकीर्ण व विपरीत ज्ञानी

(चाल : तुम दिल की....., भातुकली.....)

संकीर्ण या विपरीत ज्ञानी, होते हैं अधिकांश जन।
सूक्ष्म व व्यापक परम सत्य को, नहीं जानते हैं मूढ़ जन।। (ध्रुव)

यथा आकाश को नीला जानते, देखते हैं गोलगुम्बजाकार।
तन-मन-इन्द्रियों को 'मैं' मानते, इसमें करते ममकार।।

सूचना को ही ज्ञान मानते, देखा हुआ को ही मानते सत्य।
पढ़ना/(वाचना) को ही स्वाध्याय मानते, लोकाचार को ही मानते सत्य।। (1)

भौतिक लाभ को ही लाभ मानते, प्रसिद्धि को ही मानते श्रेष्ठ/(श्रेय)।
आयु पदवी या डिग्री अथवा, सत्ता संपत्ति को ही मानते श्रेष्ठ।।

रूढ़ि परम्परा दिखावा धर्म को ही, जानते/(मानते) व करते आचरण।
आत्म स्वभावमय समता शांति, पवित्रता को न जानते/(मानते) धर्म।। (2)

लौकिक स्वार्थ के सहयोगी को ही, मानते हैं स्व-उपकारी।
नैतिक आध्यात्मिक उपकारी को, नहीं मानते परम-उपकारी।।

इन्द्रिय जनित सुख को ही जानते, मानते व भोगते उसे।
आध्यात्मिक सुख को नहीं जानते, मानते नहीं भोगते भी उसे।। (3)

तथाहि हित-अहित व पुण्य, पाप को भी नहीं जानते।
सभ्यता-संस्कृति नीति-नियम, हेय-उपादेय नहीं जानते।।

भक्ष्य-अभक्ष्य व करणीय, अकरणीय को भी नहीं जानते।
कषाय-लेश्या व संज्ञा से, प्रेरित हो कार्य करते।। (4)

आहार निद्रा व भय मैथुन, परिग्रह व स्वार्थवश।
जानते-मानते व करते हैं, शरीर इन्द्रिय व मन के वश।।

आत्मविश्वास व ज्ञान चारित्र, युक्त होते है अत्यल्प जन।
वे ही होते हैं महान् जन, 'कनक' को मान्य ऐसे ही जन।। (5)

झूठे धार्मिक व सच्चे धार्मिक के लक्षण

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)
अज्ञानी मोही अधर्मी के, सही स्वरूप को जानो।
इनसे विपरीत ज्ञानी, धार्मिक को भी पहचानो।। (ध्रुव)

अर्थ हेतु धर्म करते वे, न करते परमार्थ हेतु।
पुण्य तो भोग हेतु करते, न चाहिए मोक्ष हेतु।।

ख्याति पूजा लाभ हेतु, करते हैं तप-त्याग।
समता शांति व आत्म विशुद्धि, नहीं होता है वैराग्य।। (1)

आडम्बर व दिखावा, करते है अहंकार व प्रदर्शन।
उच्च विचार व सादा जीवन, नहीं करते आत्म दर्शन।।

उपदेश करते है बनाने, हेतु अन्य को धार्मिक।
भाव व्यवहार से रहते है, वे अधार्मिक जन।। (2)

ईर्ष्या द्वेष व घृणा तृष्णा, आदि को न त्यागते।
दिखावा रूपी धर्म से, स्वयं को धर्मी मानते।।

देखा देखी तो करते हैं, न जानते हैं सत्य-असत्य।
रूढ़ि परम्परा को तो ढोते, न जानते है हित-अहित।। (3)

पर्व व धर्म तीर्थ-क्षेत्र में करते है धार्मिक क्रिया।
दया दान व शुचि सेवा को, नहीं जानते/(मानते) हैं धर्म क्रिया।।

धर्म तो आत्मा का स्वभाव, जो होता है पावनमय।
पावन बनने हेतु करे, 'कनक' धर्म का पालन।। (4)

(यथार्थ ज्ञानी व अज्ञानी के भाव-परिणति-परिणाम में अनंत अंतर)

मोक्ष प्राप्ति-अत्यंत सरल व अत्यंत कठिन

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)

अभेद रत्नत्रयधारी ज्ञानी मुनि, कर्मक्षय करते उश्वास मात्र में।
उस कर्म को अज्ञानी जन नहीं, क्षय कर पाते है लक्ष-कोटि भवों में।। (1)

ज्ञानी होते है वे महामुनि जो, अभेद रत्नत्रय में रमते है।
इनसे विपरीत वे सभी अज्ञानी जो आत्म स्वभाव में न रमते है।। (2)

तीन गुप्तिधारी महामुनि जब, होते हैं निर्विकल्प अवस्था में।
तब वे होते अभेद रत्नत्रयधारी, श्रेणी आरोहण की अवस्था में।। (3)

उसी अवस्था में होते हैं वे स्व-आत्मा में ही लवलीन।
स्वयं का ही ध्यान, स्वयं में ही रमण, स्वयं का ही करते अनुभवन।। (4)

इसी से ही आत्मविशुद्धि बढ़ती, जिससे बढ़ती है आत्मशक्ति।
जिससे कर्मों का क्षय होता, अंत में मिलती है पूर्ण मुक्ति।। (5)

इसी से मिलती अनेक शिक्षाएँ, आत्मविशुद्धि से ही मिलती मुक्ति।
आत्मविशुद्धि ही है धर्म स्वरूप, जिससे संवर-निर्जरा होती।। (6)

ऐसे महामुनि ही होते हैं ज्ञानी, यह है आध्यात्मिक विधा।
आत्मरमण बिन अन्य ज्ञानी को, कम महत्व देती आध्यात्मिक विधा।। (7)

अतएव आध्यात्मिकता ही है, परमार्थ-ज्ञान-परम श्रेय।
इसलिए ही 'कनकनन्दी' को, आध्यात्मिक ही लगता (है) परम प्रिय।। (8)

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण।। (238) प्र.सार

गाथार्थ–अज्ञानी जिस कर्म को एक लाख करोड़ भवों में नाश करता है, उस कर्म को आत्मज्ञानी मन-वचन-काय तीनों की गुप्ति सहित होकर एक उच्छ्वास मात्र में क्षय कर देता है।

जीव का परम विकासवाद

(जीव की जिनेन्द्र व शुद्ध सिद्ध बनने की यात्रा)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा....., भातुकली.....)

वृक्ष बनता है यथाहि बीज, जिनेन्द्र बनते है तथाहि जीव।
भव्य ही बनता है भगवान्, यही परम विकास का पैमाना।। (ध्रुव)

अनादि काल से प्रत्येक जीव, निगोदिया रूप से करता निवास।
एक श्वास में लेता जन्म-मरण, अठारह-अठारह छत्तीस प्रमाण।
अनंतकाल रहते निगोदिया में, अनंत जन्म-मरण करते है वे।
छह महीने व आठ समय में, छह सौ आठ जीव त्रस में जन्मते।। (1)

द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, संज्ञी-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय होते।
पशु-पक्षी-मानव-नारकी होते, देवगति में भी वे जन्म लेते।
पाँचों लब्धियों को पाकर कोई, सम्यग्दृष्टि होते दुर्लभ सो ही।
परम सत्य (व) स्वशुद्धात्मा का, करता विश्वास वह ज्ञान सहित।। (2)

श्रद्धा-प्रज्ञा से स्वयं को मानता, मैं हूँ सच्चिदानंद स्वरूप।
अनादि अनिधन स्वयं पूर्ण हूँ, अनंत ज्ञान दर्शन सुखवीर्य हूँ।
श्रद्धा व प्रज्ञा से युक्त होकर, आत्मोपलब्धि हेतु त्यागे संसार।
राग द्वेष मोह काम त्यागकर, ध्यान अध्ययन में होता तत्पर।। (3)

समता-शांति आत्म विशुद्धि से, आध्यात्मिक विकास करते निरंतर।
घाति नाश से बनते सर्वज्ञ, दिव्य ध्वनि से (देते) विश्व को उपदेश।
परम सत्य का वे देते उपदेश, परम आत्म विकास का संदेश।
पाप ताप संताप दूर हेतु, विश्व शांति विश्व कल्याण हेतु।। (4)

अंत में अघाति कर्म नाशकर, बनते हैं शुद्ध-बुद्ध परमेश्वर।
जन्म-जरा-मरण रहित होकर, बनते जिनेन्द्र सिद्ध परमेश्वर।
यही जीव का परम विकासवाद, चौरासी लक्ष्य योनि परे विकास।
परम विकास से रिक्त अनंत जीव, चौरासी लक्ष्य योनि में (करते) निवास।। (5)
उनका होता है उत्थान-पतन, चतुर्गति में होता जन्म-मरण।
मनुष्य मरकर जन्मे चारों गति में, पशु मरकर भी जन्मे चारों गति में।
छह महीने आठ समय के मध्य, छह सौ आठ (608) जीव जाते मोक्ष में।
परम विकास ही जीवों का हो लक्ष्य/(स्वभाव), 'कनकनन्दी' का भी परम लक्ष्य/
(शुद्ध स्वभाव)।। (6)

आध्यात्मिक में/(से) ही परम विकास

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : छोटी-छोटी गैया.....)
आध्यात्मिक में/(से) ही है परम विकास, अन्य किसी से भी न होना संभव।
व्यापार-राजनीति-विज्ञान-उद्योग, लौकिक कार्यादि से न होना संभव।। (1)

आत्मा में ही है अनंत शक्ति अतः, आध्यात्मिक से ही परम होता विकास।
अन्य व्यापारादि में नहीं अनंत शक्ति, अतः परम न होता विकास।। (2)

दास से लेकर मालिक तक, प्रजा से लेकर चक्रवर्ती तक।
छात्र से लेकर वैज्ञानिक तक, सभी की सीमा है संसार तक।। (3)

सांसारिक विकास तो भौतिकमय, तथाहि सीमित व नाशवान्।
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि तक, भोगोपयोग व दुःख सम्पन्न।। (4)

संसार में सभी के विकास विषम, जिससे होता है ईर्ष्या व द्वेष।
शोषण-शोषित मालिक-मजदूर, छोटा-बड़ा व भक्ष-भक्षक।। (5)

सांसारिक हर विकास में होता, अवश्य न्यूनता व दोष।
तन-मन-इन्द्रिय या आत्मा संबंधी होती है न्यूनता व दोष।। (6)

जिससे होता है अवश्य दुःख, रोग चिन्ता अपमान मरण।
भोजन पानी निवास सुरक्षा, आकर्षण-विकर्षण आदि के कारण।। (7)

आध्यात्मिक तो इसी से परे, आत्मा में ही है सब कुछ स्थित।
तन-मन-इन्द्रिय व सत्ता-संपत्ति, रहित सच्चिदानंदमय रूप।। (8)

यह ही है परम विकास, जिसे कहते है परिनिर्वाण।
अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य, स्वरूप यही है परम विकास।। (9)

इसी हेतु ही चक्रवर्ती भी, त्याग करते है राज वैभव।
इसी अवस्था को प्राप्त न कर पाते, स्वर्ग के भी इन्द्र तक।। (10)

इस परम अवस्था हेतु अहमिन्द्र भी, रहते है सदा इच्छुक।
इस परम अवस्था हेतु ध्यान-अध्याय में रत 'कनक'।। (11)

निर्दोष सर्वज्ञ भगवान् ही जानते हैं परम सत्य

(सर्वज्ञ को छोड़कर अन्य वैज्ञानिक-दार्शनिक भी नहीं जानते हैं परम सत्य)

(चाल : तुम दिल की....., छोटी-छोटी गैया.....)

परम वैज्ञानिक व दार्शनिक...होते हैं सर्वज्ञ भगवान्...
त्रिकालवर्ती समस्त ज्ञेय को...युगपत् जानते केवली भगवान्...(स्थायी)...

कोई भी वैज्ञानिक या दार्शनिक...नहीं जानते हैं परम सत्य...
सभी भी वैज्ञानिक व दार्शनिक...नहीं जानते हैं सम्पूर्ण सत्य...

अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक...आत्मा से परमात्मा तक...
वैज्ञानिक हो या दार्शनिक...नहीं जानते हैं अनंत तक...(1)...

नहीं जानते हैं वे स्व-आत्मा के...अनंत गुण-पर्यायों को...
अनंत भूत व भविष्य को...अनंत जन्म व मरणों को...

निश्चय-व्यवहार नय-निक्षेपों से...अनेकान्त व स्याद्वाद से...
नहीं जानते हैं सम्पूर्ण विश्व को...बिना यंत्र व इन्द्रियों से...(2)...

समस्त शंकाओं का समाधान भी...उनके पास न होता है...
स्व-पर-विश्व समस्याओं का...समाधान भी न होता है...

अपरिवर्तित भी न होता...उनका हर सिद्धांत भी...
खण्डित होता स्व-वचनों से...पूर्वापर स्व-वचनों से भी...(3)...

राग द्वेष मोह काम क्रोधादि से...वे नहीं होते पूर्ण मुक्त...
ईर्ष्या घृणा तृष्णा पक्षपातादि से...नहीं होते वे पूर्ण मुक्त...

पूर्ण मुक्त होते जो राग द्वेषादि से...वे होते हैं सर्वज्ञ भगवान्...
'कनकनन्दी' भी बना है श्रमण...बनने हेतु सर्वज्ञ भगवान्...(4)...

स्वानुभव से ही शुद्धात्मा का यथार्थ कथन संभव

(शुद्धात्मा का यथार्थ कथन स्वानुभव बिना अन्य उपायों से सम्यक् नहीं/प्रामाणिक नहीं!)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

सर्वज्ञ कथित...आगम लिखित...स्व-शुद्ध आत्मा का होता अनुभव ज्ञान...
अनुभव ज्ञान ही...आत्म प्रत्यक्ष होता...वह ज्ञान होता है...भावश्रुत ज्ञान...(ध्रुव)...

अनुभव बिना केवल आगम से...नहीं होता है भावश्रुत ज्ञान...
भावश्रुत बिना आगम ज्ञान भी...होता है निश्चय से द्रव्य श्रुतज्ञान...

द्रव्य श्रुतज्ञान होता है पौद्गलिक...शब्द अक्षरमय भौतिक ज्ञान...
अथवा केवल होता है मतिज्ञान...केवल मतिज्ञान से न होता आत्मज्ञान...(1)...

मिश्री का अनुभव न होता मिश्री शब्द से...पढ़ो-सुनो या गुणगान करो...
आत्म-अनुभव न होता 'आत्मा' शब्द से...पढ़ो-सुनो या गुणगान करो...

मिश्री चखने से होता है मीठा ज्ञान...आत्मज्ञान होता है अनुभव से...
अनुभव बिना आत्मा का वर्णन...सही न होता है शब्द ज्ञान से...(2)...

तोता के समान या टेप के समान...आत्मा का वर्णन होता यांत्रिक सम...
ऐसा वर्णन न होता पूर्णतः सत्य...न अनुभवगम्य-आत्म प्रत्यक्ष...

गणधर से लेकर आचार्य तक भी...आगम व अनुभव से करते कथन...
स्व-अनुभव से कथन करने पर ही...प्रामाणिक सह होता है कथन...(3)...

स्वानुभव रहित जो कथन होता...शुद्धात्म स्वरूप का न आत्म प्रमाण...
आत्म प्रमाण बिना शुद्धात्मा कथन...नहीं है यथार्थ से प्रत्यक्ष प्रमाण...

आत्मानुभव बिना आत्मा का ज्ञान...नहीं होता है इन्द्रिय ज्ञान से...
इन्द्रियाँ केवल स्थूल जड़ जानती...अमूर्त आत्मा को नहीं जानती...(4)

अतएव शुद्धात्मा के कथन समय में...आत्मानुभव भी होता है प्रमुख...
अतः स्व-अनुभव का भी कथन...करते हैं आत्मानुभवी श्रमण...

यह कथन नहीं है अभिमानपूर्ण...यह तो 'सोऽहं' 'अहं' पूर्ण स्वाभिमान...
शुद्धात्मा कथन या ध्यान कथन में...ऐसा कथन ही है प्रामाणिक कथन...(5)...

अन्यथा तो शुद्धात्मा कथन सभी...होंगे व्यापार या राजनीति सम...
लौकिक व्यवहार या सामाजिक सम...इतिहास पुराण या कानून सम...

अज्ञानी मोही व रागी द्वेषी कामीजन...नहीं जानते हैं आत्मानुभव ज्ञान...
अहंकार-ममकार में लिप्त जन...नहीं जानते 'सोऽहं' व 'अहं' ज्ञान...(6)...

आत्मानुभव न होता है भौतिक वस्तु...न बाहर से प्राप्त होने की वस्तु...
आत्मानुभव होता है स्वयं का गुण...स्वयं में स्वयं द्वारा प्राप्त ये गुण...

आत्मानुभव होता है अमूर्तिक ज्ञान...सच्चिदानंदमय स्वयं/(मैं) का ज्ञान...
रत्नत्रय व समता से युक्त ज्ञान...'कनकनन्दी' का स्व-शुद्धात्मा ज्ञान...(7)...

आत्मानुभव ही है सम्यक् ज्ञान...समता-शांति का यह निधान...
इसी से बढ़ता है आत्मानुशासन...इन्द्रिय-कषायों का होता नियंत्रण...

संसार शरीर/(भोग) से होता वैराग्य...ख्याति पूजा लाभ से विरक्त भाव...
ध्यान-अध्ययन-मनन-चिंतन में/(से)...होता है आध्यात्मिक ज्ञान अपूर्व...(8)...

संपूर्ण धर्म व अधर्म का स्वरूप

(संपूर्ण धर्म हेतु चाहिए नवकोटि से धर्म पालन न कि केवल शरीर व भौतिक बाह्य धार्मिक क्रियाएँ)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

केवल शरीर व भौतिक क्रिया से ही, नहीं होता है संपूर्ण धर्म।
नवकोटि से धर्म होता है, तथाहि नवकोटि से होता अधर्म।।

उत्तम भाव-व्यवहार करो नवकोटि से, तब पूर्ण होगा धार्मिक काम।
निकृष्ट भाव-व्यवहार त्यागो, नवकोटि से न होगा (पूर्ण) अधर्म काम।। (1)

सनम्र सत्यग्राही बनो भावना करो, सरल-सहज व पावन।
स्व-पर-विश्व हितकारी करो भावना, यथायोग्य करो नवकोटि से पालन।।

क्रोध मान माया लोभ कामादि के, त्याग से होता है पावन भाव।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा मोह निन्दा आदि, त्याग से होता है पावन भाव।। (2)

पावन भावना सहित सत्य, समता-शांति को करो स्वीकार।
हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह, का भी त्याग करो शक्ति अनुसार।।

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ का, भाव व व्यवहार भी विधेय।
मन वचन काय व कृत कारित, अनुमत से भाव-व्यवहार विधेय।। (3)

इसी से युक्त हो देव-शास्त्र-गुरु की, सेवा-पूजा आदि भी करणीय।
दान वैयावृत्ति तीर्थयात्रा व, स्वाध्याय-ध्यान भी करणीय।।

इन सब कार्यों से भी उपरोक्त, भाव-व्यवहार को वर्द्धनीय।
धार्मिक क्रियाएँ तो उत्तम भाव-व्यवहार के लिए ही करणीय।। (4)

उत्तम भाव-व्यवहार तो बीज सम, जिससे धर्म रूपी वृक्ष बनता है।
धार्मिक क्रियाएँ तो मृदा जलादि सम, जिससे धर्म वृक्ष पोषित होता है।।

साध्य-साधन रूपी निमित्त-उपादान से, ये सभी घटित होते हैं।
उत्तम भाव-व्यवहार साध्य है तो, धार्मिक क्रियाएँ साधन रूपी होती है।। (5)

परस्पर सहयोगी होना दोनों को विधेय, भाव विशुद्धि हेतु होना ही श्रेय।
विशुद्धभाव से ही मिलता है मोक्ष, 'कनकनन्दी' हेतु मोक्ष ही श्रेय।।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त, उत्तम क्षमादि होते धर्म (श्रेष्ठ) लक्षण।
इससे ही मिलता है परम मोक्ष, इससे विपरीत सभी अधर्म लक्षण।। (6)

उपरोक्त सभी भाव-व्यवहार व, धार्मिक क्रियाओं से विपरीत।
होते सभी भाव-व्यवहार, धर्म से विपरीत व पापबंध कृत।। (7)

कर्त्ता व भोक्ता स्वयं जीव

(अच्छे-बुरे या धर्म सब कुछ जीव स्वयं के लिए करते)

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

जो कुछ भी जीव करते हैं व सोचते, स्वयं के लिए ही वे करते हैं।
अच्छे बुरे या धार्मिक सभी के, फल स्वयं को ही तो मिलते हैं।। (1)

मन-वचन-काय कृत कारित से, करते भी जीव जो अनुमत से।
पुण्य-पाप या धर्म-अधर्म सभी, करते हैं जीव स्वयं के ही लिए।। (2)

क्रोध-मान-माया-लोभ-काम-मोह, हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह।
दान-दया-सेवा-त्याग-परोपकार, ध्यान-अध्ययन-तप स्वयं के लिए।। (3)

ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-परनिंदा-अपमान, मिलावट-शोषण आदि कुकाम।
समता-शांति व क्षमा-सहिष्णुता, स्वयं के फल को जीव स्वयं ही पाते।। (4)

सुकृत-दुष्कृत व आध्यात्मिक के फल, पाते है जीव स्व-भाव-व्यवहार से।
बीजानुसार ही यथा फल-फूल आते, भोजन अनुसार यथा परिणाम पाते।। (5)

नवकोटि से जीव जो कर्म बांधते, तदनुकूल जीव फल को पाते।
पुण्य से अभ्युदय तो पाप से पतन, इह-परलोक में फल ये पाते।। (6)

ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग से, समता-शांति व सहिष्णुता से।
आत्मविशुद्धि से पुण्य-पाप नष्ट कर, शुद्ध-बुद्ध व ज्ञानानंद को पाते।। (7)

अतः हर जीव स्वयं के सुख हेतु, पाप त्यागकर करना चाहिए पुण्य।
शाश्वतिक सुख हेतु कर्म नाशकर, बनना श्रेय है सच्चिदानंदमय।। (8)

कर्म सिद्धांत का रहस्य भी यह है, मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक रहस्य।
इह-परलोक आध्यात्मिक सुख के उपाय, आध्यात्मिक सुख ही 'कनक' का अंतिम लक्ष्य।। (9)

संदर्भ-

एवं कत्ता भोक्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।। (69) पं.का.

सभी संसारी जीव कर्माधीन व मुक्त ही स्वाधीन

(आध्यात्मिक दृष्टि से पराधीन (दास, गुलाम))

(चाल : सायोनारा....., भातुकली....., तुम दिल की.....)
कर्माधीन जो जीव होते है वे सभी होते है पराधीन।
वृक्ष से लेकर चक्रवर्ती तक सभी होते है कर्माधीन।। (स्थायी)

इसी दृष्टि से मालिक-मजदूर सभी होते है पराधीन।

राजा-प्रजा व सम्राट-दास सभी होते है गुलाम।

कर्माधीन सभी संसारी जीव, कर्म से होते है परिचालित।
जन्म-मरण रोग-भूख-प्यास से, होते है सभी पीड़ित।। (1)

क्रोध-मान-माया-ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा से भी होते (वे) पीड़ित।
भय-मैथुन-परिग्रह-निद्रा से भी होते है प्रभावित।

इन सब कारणों से युक्त होने से, उन्हें न मिले परम शांति।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश (के) कारण, नहीं मिलती है पूर्ण तृप्ति।। (2)

जिसके कारण उन्हें क्षोभ होता, जिससे आकर्षण-विकर्षण होता।
जिससे द्वंद व संघर्ष (भी) होता, जिससे दुःख ही बढ़ता जाता।

आक्रमण युद्ध व हत्या करते, चोरी मिलावट शोषण भी।
फैशन-व्यसन व भ्रष्टाचार भी, करते अन्याय अत्याचार भी।। (3)

इसलिए कर्माधीन संसारी नहीं, होते है पूर्ण स्वाधीन (मालिक)।
पूर्ण स्वाधीनता को पाने के लिए, चक्रवर्ती भी बनते है श्रमण।

श्रमण बनकर आत्म साधना से, संपूर्ण कर्मों से वे मुक्त।
जिससे वे शुद्ध-बुद्ध बनकर, पाते हैं आत्माधीन सुख।। (4)

कर्म-विजयी ही होते आत्म-विजयी वे ही होते है विश्व-विजयी।
वे ही होते है परमस्वाधीन, इस हेतु श्रमण बना 'कनकनन्दी'।। (5)

यथार्थ ज्ञान=अज्ञान-निवृत्ति, हित-प्राप्ति, अहित परिहार

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

हित की प्राप्ति अहित-परिहार, जिससे होता वह यथार्थ/(सम्यक्) ज्ञान।
अन्य सभी तो जानकारी मात्र है, लौकिक हो या धार्मिक/(आध्यात्मिक) ज्ञान।। (धृ.)

यथा प्रकाश से अंधेरा दूर होता, नवीन अंधेरा भी न होता प्रवेश।
दृश्यमान पदार्थ भी दिखायी देता, ग्राह्य प्राप्त, अग्राह्य होता परिहार।।

तथाहि जब होता यथार्थ ज्ञान, अज्ञान-अंधकार भी होता दूर।
हित-अहित का होता परिज्ञान, हित ग्राह्य होता अहित परिहार।।

यथार्थ ज्ञान होता आत्मश्रद्धा से, यथार्थ स्वरूपमय आत्मविश्वास से।
सच्चिदानंदमय होता आत्मा, इससे भिन्न सभी होते अनात्मा।।

राग द्वेष मोह काम क्रोधादि सभी, सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री।
शत्रु-मित्र अपना-पराया आदि, तन-मन-इन्द्रिय विकार बुद्धि।।

ये सब अनात्मा (अतः) होते अहित, इसके परिहार से होता आत्महित।
सच्चिदानंदमय आत्महित, इसके ग्रहण में होता आत्महित।।

यह परम आध्यात्मिक ज्ञान स्वरूप, व्यवहार-गौण में होता प्रवृत्त।
हिंसा-झूठ-कुशील-चोरी परिग्रह, फैशन-व्यसनों से होता निवृत्त।।

अन्याय-अत्याचार-शोषण-मिलावट, दूर होता भ्रष्टाचार आतंकवाद।
निन्दा-चुगली-अपमान-वैरत्व, त्याग होता ईर्ष्या घृणा तृष्णा विवाद।।

न्याय (नीति) सदाचारादि होता ग्रहण, सादा जीवन उच्च विचार उदारमन।
समता शांति का होता ग्रहण, ये सब (होते) यथार्थ से सम्यग्ज्ञान।।

अन्यथा ज्ञान न होता यथार्थ ज्ञान, जानकारी मात्र या दिखावा ज्ञान।
ज्ञान का फल होता सदाचरण, 'कनक' का लक्ष्य पूर्ण आत्म-विज्ञान।।

संदर्भ-

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।। 'परीक्षामुख' (2)

जिससे हित की प्राप्ति अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि सम्यग्ज्ञान स्वरूप है।

अज्ञान निवृत्तिहानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। (प.मुख सूत्र 1 अध्याय 5)

अज्ञान की निवृत्ति अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव यह सम्यग्ज्ञान का फल है।

भाव विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म

(अशुभ-शुभ-शुद्ध भाव से होता है पाप-पुण्य व मोक्ष)

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

आत्म विशुद्धि के लिए ही पालनीय है सदा धर्म।
दान पूजा तीर्थयात्रा तप-त्याग ध्यान व अध्ययन।। (ध्रुव)

आत्म विशुद्धि रहित जो करते है बाह्य धर्म।
ख्याति पूजा व लाभ हेतु राग द्वेष सहित हो धर्म।।

सातिशय पुण्य का न होता बंध नहीं होता है पाप नाश।
पापानुबंधी होता पुण्यबंध संसार न होता नाश।। (1)

मिथ्यात्व सहित जो दिखावा हेतु करते है धर्म।
सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि हेतु निदान सहित पालते धर्म।।

उन्हें न यथार्थ से होता पुण्य, पुण्य बंधता है अतिकम।
पाप की निर्जरा भी नहीं होती, नहीं मिलता है मोक्षधाम।। (2)

जप करता हुआ सेठ, पानी-पानी का किया ध्यान।
मरकर स्व-बावड़ी में ही, मेंढ़क योनि में लिया जन्म।।

जाति स्मरण के बाद महावीर के दर्शन हेतु चल पड़ा।
कमल-दल मुख में लेकर, शुभ-भाव में चल पड़ा।। (3)

मार्ग में ही श्रेणिक के, हाथी के पैर से कुचल मरा।
अंतर्मुहूर्त में देव बनकर, समवशरण में पहुँच गया।।

आकाशगामिनी विद्या सिद्धि हेतु, सेठ ने णमोकार मंत्र जपा।
शंका के कारण से विद्या को, वह सिद्ध न कर पाया।। (4)

शंका रहित हो चोर ने, आणं-ताणं का जप किया।
शुभ भाव व एकाग्रता से, विद्या को शीघ्र सिद्ध किया।।

पुण्य पाप (व) बंध-मोक्ष सभी, होते हैं परिणामों से।
शुभ भावों से पुण्य बंध, पाप (होता) अशुभ परिणामों से।। (5)

शुद्ध भाव से होता है मोक्ष, भाव ही मुख्य सभी में।
शुभ व शुद्ध भाव, करणीय (है) दान पूजादि में।।

शुभ व शुद्ध भाव हेतु, धार्मिक क्रियाएँ हैं निमित्त (करण, साधन)।
बाह्य निमित्त के माध्यम से, पावन करणीय चित्त/(परिणाम)।। (6)

साधन बिना न कभी, होती है साध्य की सिद्धि।
साधन ही जब बाधक बनते, तो दूर हो जाती सिद्धि।।

लक्ष्य हो मोक्ष साधन तो, समुचित पावन हो चित्त।
साध्य मिलेगा अवश्य, 'कनक' वर्णन किया आगमोक्त।। (7)

स्व-स्व भूमिका में व्यवहार, धर्म भी सदा पालनीय।
भाव विशुद्धि हेतु व्यवहार धर्म सदा भी पालनीय।।

राग द्वेष मोह के क्षीण से होता है भाव विशुद्ध।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा निन्दादि, त्याग से होता भाव विशुद्ध।। (8)

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तु कामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।। (संस्कृत पूजा)

अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं आगमानुकूल जल, चन्दनादि द्रव्यों की शुद्धता को पाकर जिनस्तवन, जिनबिम्ब दर्शन आदि अनेक आवलंबनों का आश्रय लेकर भूतार्थ रूप पूज्य अरहंतादि का पूजन करता हूँ।

अर्हत् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यूननमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवल बोध वह्नौ,
पुण्य समग्र महमेकमना जुहोमि।। (संस्कृत पूजा)

हे अर्हन्! हे पुराण पुरुषोत्तम! यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त जलादि द्रव्यों का आलंबन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवलज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूँ।

(व्यवहार-निश्चय सम्यग्दर्शन संबंधी शोधपूर्ण कविता)

देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से
स्व-शुद्धात्मा का श्रद्धान है : सम्यग्दर्शन
(वर्तमान में सच्चे गुरु से ही तीनों की होती है श्रद्धा-प्रज्ञा)

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा.....)
सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का जो, श्रद्धान करते हैं भव्य प्राणी।

वे होते हैं सम्यग्दृष्टि, कहती है श्री जिनवाणी।।

देव की वर्तमान पर्याय ही, मेरी है भावी पर्याय।
मेरी पर्याय अभी तो अशुद्ध, देव की शुद्ध पर्याय।।

तप त्याग ध्यान अध्ययन से, मुझे भी बनना है देव/(शुद्ध)।
ऐसी जब होती है श्रद्धा/(आत्मविश्वास), तब होता है सम्यक्त्व।। (1)

स्वयं के द्रव्य-गुण पर्यायों को, जानता है जिनवाणी।
मैं हूँ जीव द्रव्य मुझमें चैतन्य गुण, अशुद्ध हूँ (पर्याय) मैं अनादि से।।

जिनवाणी से जानता है द्रव्य, तत्त्व व नव पदार्थों को।
स्वयं में भी उन द्रव्यादि को, घटित करता है स्वयं को।। (2)

स्वयं में भी होते हैं आस्रव बंध, संवर निर्जरा व मोक्ष।
पुण्य-पाप भी स्वयं में होते, ऐसी श्रद्धा से होता सम्यक्त्व।।

देव स्वरूप होता है मोक्ष, शास्त्र है मोक्ष कथक।
गुरु होते हैं मोक्ष पथिक, तीनों के श्रद्धान से सम्यक्त्व।। (3)

मोक्ष पथिक है चारित्रमय, जो है रत्नत्रय आराधक।
मोक्षमार्ग के जीवन्त रूप, गुरु तरण-तारण जहाज।।

पंचमकाल में तो सच्चा गुरु ही, तीनों रत्न के हैं प्रतिनिधि।
देव को बताने वाले गुरु होते, पढ़ाते हैं वे श्री जिनवाणी/(श्रुतनिधि)।। (4)

इसी हेतु ही (सच्चे) देवशास्त्र गुरु का, श्रद्धान होता है सम्यग्दर्शन।
तीनों के माध्यम से स्व-श्रद्धान से होता है सम्यग्दर्शन।।

देवशास्त्र गुरु रूपी निमित्त से, स्व का जब होता है श्रद्धान।
तब होता है सम्यग्दर्शन, दर्पण से यथा स्व-बिम्ब दर्शन।। (5)

अंधा यथा दर्पण से भी न देख पाता है स्व-प्रतिबिंब।
तथाहि अभव्य व घोर मिथ्यादृष्टि को, नहीं होता है सम्यक्त्व।।

भद्र मिथ्यादृष्टि भी यदि करता है भक्ति तीनों की।
वह भी सांसारिक सुख भोगे, (ऐसी) शक्ति निरतिशय पुण्य की।। (6)

सम्यग्दृष्टि तो सातिशय पुण्य से, भोगता है सांसारिक सुख।

साधु बनकर पाये मोक्ष सुख, 'कनक' का लक्ष्य आत्म सुख।।

यथा दीपक के सम्पर्क से, बुझा हुआ दीपक होता प्रज्वलित।
तथाहि देवशास्त्र गुरु से, सम्यक्त्व होता प्रगट।। (7)

चुम्बक के घर्षण से यथा, लोहा बनता है चुम्बक।
तथाहि देवशास्त्र गुरु की भक्ति/(श्रद्धा) से भव्य को होता सम्यक्त्व।।

अग्नि से (यथा) ईंधन अग्नि बनती, तथाहि निकट भव्य।
देवशास्त्र गुरु की श्रद्धा से, स्वयं में प्रगट करता सम्यक्त्व।। (8)

देवशास्त्र गुरु के माध्यम से, स्वगुण में ही हुआ सम्यक्त्व।
स्व-श्रद्धा प्रज्ञा के कारण, मिथ्या श्रद्धा हो गई सम्यक्त्व।।

अतएव हे! भव्य जीव, स्व-विभाव को करो परिवर्तन।
देवशास्त्र गुरु निमित्त से, पाओ तुम सम्यग्दर्शन।। (9)

देवशास्त्र गुरु रूपी निमित्त से, न करो हे! राग द्वेष मोह।
राग द्वेष मोह क्षय करके, पाओ हे! आध्यात्मिक सुख।।

(6) द्रव्य सप्त तत्त्व नव पदार्थ व देवशास्त्र गुरु श्रद्धान।
होता है व्यवहार सम्यग्दर्शन, स्व-शुद्धात्म रूचि निश्चय श्रद्धान।। (10)

(व्यवहार व निश्चय सम्यक्त्व का समन्वय प्रायः शिष्य वर्ग नहीं कर पाते हैं। उनको समझाने के लिए यह कविता बनी।)

प्राथमिक धार्मिक-सम्यग्दृष्टि का स्वरूप

(चाल : सायोनारा.....)

सम्यग्दृष्टि के स्वरूप को जानो, प्राथमिक धार्मिक के ये लक्षण मानो।
इसके बिना कोई न होता धार्मिक, धर्म तो आत्मा के गुण सम्यक्।। (1)

आत्म श्रद्धानमय होता आत्मविश्वास, तदनुकूल होता है सत्य विश्वास।
सत्य-तथ्य पूर्ण होता है सुज्ञान, आत्मोपलब्धि ही होता परम ध्येय।। (2)

स्वयं को मानता है सच्चिदानंद, तन-मन-इन्द्रिय से रिक्त ज्ञानानन्द।
परम सत्य को ही मानता यथार्थ सत्य, लौकिक व्यवहार/(सत्य) को माने व्यवहार सत्य।। (3)

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का (होता है) भक्त, श्रद्धान करता द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ।
मिथ्यात्व अनंतानुबंधी पर पाता विजय, प्रशम अनुकम्पा संवेग आस्तिक्य सह।। (4)

सप्तभय-व्यसन मल-पच्चीस रिक्त, संसार शरीर व भोग से विरक्त।
अष्ट दोष रहित व अष्ट गुण सहित, अष्ट मद व तीन मूढ़ता रहित।। (5)

न्याय नीति व सदाचार युक्त, अन्याय-अत्याचार-शोषण रहित।
सनम्र गुणग्राही उदार चित्त युक्त, 'कनक' वर्णन किया काव्य में संक्षिप्त।। (6)

लौकिक-आत्मविश्वास व आध्यात्मिक-आत्मविश्वास : स्वरूप व फल

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

आध्यात्मिक ही है परम सत्य, अन्य सभी लौकिक व्यवहार (है)।
शुद्ध-बुद्ध-परमात्मा ही स्व-आत्मतत्त्व, अन्य सभी होते पर हैं।। (1)

शरीर मन व इन्द्रिय सत्ता, संपत्ति सभी होते स्व से पर।
शरीर आदि को ही 'मैं' मानना, यह तो मोह या लौकिक व्यवहार।। (2)

लौकिक कार्य हेतु जो विश्वास होता, वह लौकिक आत्मविश्वास है।
लौकिक व्यवहार आत्मविश्वास ही, नहीं परम आत्मविश्वास है।। (3)

इसी में लौकिक कामना-इच्छा, होती जो संसार कारक है।
इसी से होता है कर्मबंध, न होते मुक्ति के कारक है।। (4)

लौकिक पढ़ाई विवाह व्यापार, राजनीति नौकरी आदि हेतु।
होता जो विश्वास (वह) लौकिक विश्वास, नहीं होता है मोक्ष हेतु।। (5)

स्व-शुद्धात्मा का विश्वास ही, यथार्थ में आत्मविश्वास है।
जिससे होता है सम्यग्ज्ञान, चारित्र भी होता सम्यक् है।। (6)

स्व-आत्मा में निहित अनंत ज्ञान, दर्शन-सुख-वीर्य का होता श्रद्धान।
वही यथार्थ से आत्मविश्वास (श्रद्धान) जो कि मोक्ष का मूल कारण।। (7)

आध्यात्मिक आत्मविश्वास का अध्ययन, नहीं होता स्कूल-कॉलेजों से।
नहीं संविधान-कानून-व्यापार, राजनीति या भौतिक विज्ञान में।। (8)

इसका अध्ययन होता आगम में/(से), आध्यात्मिक गुरु के माध्यम से।
यह अध्ययन ही स्व-का अध्ययन, जिसका संबंध/(उद्गम) होता है आत्मा से।। (9)

यह ही परम आध्यात्मिक विद्या, जिससे मिलती परम मुक्ति।
इसलिए ही 'कनकनन्दी' की, आत्मविश्वास में अधिक रूचि।। (10)

स्व-शुद्धात्म श्रद्धान से होता है धर्म का शुभारंभ

(नैतिकता से परे भी है आध्यात्मिकता)

(नैतिकता बिना धर्म नहीं व केवल नैतिकता ही धर्म नहीं)

(चाल : शत-शत वंदन....., आत्मशक्ति.....)

भोगभूमि के तिर्यंच मनुष्य भी, नहीं भोगते हैं सप्त-व्यसन।
क्रोध-मान-माया-लोभ भी होता (है) मंद, बाह्य पंच पाप भी न करते सेवन।। (1)

भले वे होते हैं सम्यग्दृष्टि अथवा, मिथ्यादृष्टि या अभव्य।
सभी ही मानव पशु-पक्षी भी, पालन करते हैं उक्त कर्त्तव्य।। (2)

मिथ्यादृष्टि जीव जो होते यथायोग्य, उपरोक्त गुणों से सहित भी होते।
देव दर्शन भी करते वे देव, तथापि वे न होते सच्चे धार्मिक।। (3)

इसी से यह सिद्ध होता (है) उक्त सभी, कर्त्तव्य होते हैं नैतिक गुण।
व्यक्ति से लेकर विश्व मानवों को, पालनीय उपरोक्त कर्त्तव्य गण।। (4)

तन-मन-इन्द्रिय स्वास्थ्य के लिए, तथाहि सामाजिक सुव्यवस्था हेतु।
हर मानवों को प्राकृतिक रूप से, सेवनीय उक्त गुण सभ्यता हेतु।। (5)

यथा मछली तैरती (है) पानी में, अंतरिक्ष में उडते (हैं) विहंगम।
तथाहि सभ्य नैतिक मानवों को, पालनीय उक्त कर्त्तव्य गण।। (6)

निरतिशय होता पुण्य बंध किन्तु, न होता सातिशय पुण्य बंध।
सांसारिक तुच्छ भोग मिले किन्तु, नहीं मिलता है मोक्ष सुख।। (7)

इसी से आगे धर्म होता प्रारंभ, जो होता है आध्यात्ममय।
आत्मविश्वास व आत्मज्ञान सहित, आत्म परिणाम विशुद्धमय।। (8)

आत्मविश्वास में होता है श्रद्धान, मैं हूँ सच्चिदानंद अमूर्तमय।

तन-मन-अक्ष राग द्वेषादि रहित, मैं शुद्ध-बुद्ध व आनंदमय।। (9)

तन-मनादि मेरे नहीं शुद्ध रूप, ये सभी तो विकारी कर्मज रूप।
इसी से परे होने के लिए होता है, लक्ष्य-आचरण भी होता तदनुरूप।। (10)

ऐसा श्रद्धान सहित जब पालन करता, उपरोक्त सभी नैतिक कर्त्तव्य।
तब ही बनते उक्त सभी कर्त्तव्य, धार्मिकमय आध्यात्मिक कर्त्तव्य।। (11)

उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विशुद्धि होने से, संसार शरीर से होता विरक्त।
ध्यान-अध्ययन व आत्म विशुद्धि से, अंत में पाता है कर्मों से मुक्त।। (12)

आगम में इसे कहते गुणस्थान आरोहण, चतुर्थ गुणस्थान से धर्म प्रारंभ।
स्व-शुद्धआत्मा की श्रद्धा व प्रज्ञा से, चतुर्थ गुणस्थान का होता प्रारंभ।। (13)

इससे अनेक शिक्षाएँ मिलती, जो सेवन करते सप्त व्यसन आदि।
वे सामान्य भद्र नैतिक भी न होते, कहाँ से होंगे वे धार्मिक आदि।। (14)

आत्म विशुद्धि बिन उक्त नैतिक गुणों से भी, कोई न होता है सच्चा धार्मिक।
धार्मिक होने हेतु आत्म विशुद्धि युक्त, सेवनीय उक्त नैतिक कर्त्तव्य।। (15)

नैतिक से भी श्रेष्ठ है आध्यात्मिक धर्म, जो नैतिक आत्म विशुद्धि संयुक्त।
नैतिक विहिन न होता है धर्म, नैतिकता न होती संपूर्ण धर्म।। (16)

नैतिक गुण बिन कोई न होता सभ्य/(सही) मानव, आत्म विशुद्धि बिना न होता धार्मिक।
दोनों से युक्त हो सभी मानव इसी हेतु, 'कनक' ने बनाया (यह) (पावन) शोध काव्य।। (17)

सम्यक्त्व (परम सत्यश्रद्धान) का स्वरूप

(सामाजिक मान्यता आदि से ही नहीं होती है सही श्रद्धा-प्रज्ञा)

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

समाज-व्यक्ति या राष्ट्र मान्यता से, सम्यक्त्व/(सत्य) न होता लोकमान्यता से।
संविधान कानून या रूढ़ि मान्यता से, न होता धर्म/(आध्यात्म) ढोंग मात्र से।। (1)

सम्यक्त्व होता है आत्मा का स्वभाव, आत्मा होता है सच्चिदानंद स्वभाव।
परम सत्यमय स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान, होता है आध्यात्ममय धर्म प्रधान।। (2)

परम सत्य को जानते केवल सर्वज्ञ, परम सत्य को न जाने छद्मस्थ ज्ञान।

सर्वज्ञ कथन ही होता यथार्थ सत्य, अन्य का कथन न होता यथार्थ सत्य।। (3)

सर्वज्ञ कथित शुद्धात्मा स्वरूप का, श्रद्धान करना निश्चय से सम्यक्त्व।
इस से होता यथार्थ से सुज्ञान, अन्य सभी न होते यथार्थ ज्ञान।। (4)

सच्चिदानंदमय स्वयं को मानना, होता है सत्यार्थमय श्रद्धान।
ऐसी श्रद्धा युक्त होती जो प्रज्ञा, वह होती है सत्यार्थ ज्ञान।। (5)

श्रद्धा-प्रज्ञा से युक्त आचरण ही, होता है यथार्थ से आचरण।
समता शांति व पावनता युक्त, आत्म विशुद्धि/(आत्म विकास) हेतु सदाचरण।। (6)

इससे अन्यथा सभी ही मान्यता, नहीं होती है परम सत्य-तथ्य।
वे सभी भले ही लौकिक व्यवहार, नहीं होता है उससे आत्म उद्धार।। (7)

अज्ञानी-मोही व निर्मोही-वैरागी के 'मैं' व 'मेरा'

(चाल : सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

अज्ञानी-मोही माने 'मैं' तन व मन...बालक-किशोर या वृद्ध-जवान...
धनी-गरीब या 'मैं' काला-गोरा...साक्षरी-निरक्षरी व बुरा-प्यारा...(1)...

धन-जन-कुटुम्ब को माने मेरा...शत्रु-मित्र-बन्धु को माने मेरा...
जन्म-मरण-रोग को माने मेरा...घर-प्रतिष्ठान को माने मेरा...
वह मानता है मैं कमाता धन...करता हूँ नौकरी या चलाता दुकान...
परिवार का करता मैं भरण-पोषण...बच्चों की पढ़ाई या शादी का काम...(2)...

इन सब का कर्त्ता-धर्त्ता 'मैं' मानता...इसे ही अपना कर्त्तव्य मानता...
इनकी सफलता से गर्व करता...फैशन-व्यसन-पापों में मस्त होता...
ज्ञानी-वैरागी माने इसी से भिन्न...तन-मन आदि से स्वयं को भिन्न...
सच्चिदानन्दमय माने स्व-स्वरूप...शुद्धात्म स्वरूप माने निज स्वरूप...(3)...

आत्मिक गुणों को मानता मेरा...सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सारा...
व्यवहार से परमेष्ठी मानता मेरा...गुरु या शिष्य को मानता मेरा...
स्वयं का कर्त्ता-धर्त्ता 'स्व' को मानता...आत्म-विकास को 'स्व' कर्त्तव्य मानता...
इनकी सफलता से 'गौरव' करता...स्व-स्वभाव में व्यस्त-मस्त होता...(4)...

मोही को ये सब विपरीत लगते...निर्मोही को मोही विपरीत लगते...

दोनों की दिशा-दशा विपरीत होती...मोही की संसार तो निर्मोही की मुक्ति...
यह है आध्यात्मिक परम ज्ञान...लौकिक ज्ञान-विज्ञान से होता भिन्न...
सामाजिक रीति-रिवाज से भिन्न...'कनक' का लक्ष्य आध्यात्मिक सम्पन्न...(5)...

वैश्विक अन्तर्सम्बद्ध (6 द्रव्य, 7 तत्त्व) परक शोधपूर्ण कविता

स्व-अस्तित्व से सिद्ध होता है विश्व का अस्तित्व

(आत्मज्ञान हेतु चाहिए विश्व ज्ञान!)

(स्व-ज्ञान हेतु अन्य द्रव्य-तत्त्व का ज्ञान चाहिए!)

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत....., छोटी-छोटी गैया.....)

स्व-ज्ञान हेतु (मुझे) अन्य ज्ञान चाहिए...सभी द्रव्य-तत्त्वों का ज्ञान चाहिए...
अन्यथा मुझे न होगा मेरा ज्ञान...निश्चय-व्यवहार से न होगा ज्ञान...(ध्रुव)...

'मैं' हूँ सच्चिदानंद (मय) जीव द्रव्य...स्वयंभू स्वयंपूर्ण अमूर्त द्रव्य...
अनादि अनिधन शाश्वत द्रव्य...अनंतज्ञान दर्शन सुखमय...

किन्तु अभी हूँ 'मैं' सशरीरी मूर्तिक...जन्म-मरण सह अशुद्धमय...
कारण है इसका भौतिक कर्म पुद्गल...मेरे राग द्वेष मोह (भी) बने कारक...(1)...

कहाँ है कर्म व कैसे आये कर्म...कैसे मुझमें बन्धे ये कर्म...
कैसे होऊँगा 'मैं' कर्म से मुक्त...इसी हेतु चाहिए मुझे बोध...

आकाश में रहते है कर्म पुद्गल...कर्म आने का कारण आत्मकम्पन...
कर्म आगमन के निमित्त धर्म द्रव्य...कर्मबंध में हेतु (मेरा) विभाव भाव...(2)...

इसी से संसार में (मेरा) होता भ्रमण...शरीर सह होने से जन्म-मरण...
भ्रमण (गति) हेतु निमित्त धर्म द्रव्य...परिणमन में निमित्त काल द्रव्य...

जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल...होते है शाश्वत द्रव्य मौलिक (द्रव्य)
सभी द्रव्य रहते हैं लोक-आकाश में...गमनागमन करते जीव-पुद्गल लोक में...(3)...

सभी द्रव्यों में परिणमन होता सतत...परिणमन में काल द्रव्य निमित्त...
गति-स्थिति हेतु धर्माधर्म निमित्त...हर द्रव्य स्वयं ही है मुख्य निमित्त...

कर्मक्षय हेतु संवर-निर्जरा चाहिए...अथ सद्दृष्टि ज्ञान वृत्त चाहिए...

इसी हेतु उक्त सभी ज्ञान चाहिए...आत्मविश्वास आत्मशुद्धि चाहिए...(4)...

आत्मविशुद्धि हेतु विभाव क्षय चाहिए...राग-द्वेष-मोहादि का क्षय चाहिए...
कर्मक्षय से 'मैं' बनूँगा सच्चिदानंद...'कनक' बनेगा शुद्ध-बुद्ध-आनंद...(5)...

व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय मोक्षमार्ग

(चाल : आत्मशक्ति....., शत-शत वंदन....., सायोनारा.....)

देव-शास्त्र गुरु के श्रद्धान से, होता है सम्यग्दर्शन।
यह है व्यवहार नय से, निश्चय से स्व-शुद्धात्म दर्शन।। (1)

अरिहंत व सिद्ध समान, मेरा भी है शुद्ध स्वरूप।
ऐसी श्रद्धा से होता है, निश्चय से सम्यग्दर्शन।। (2)

आगम में जो वर्णित है, षट् द्रव्य तत्त्व व पदार्थ।
उससे स्व-द्रव्यादि का श्रद्धान, होता है सम्यग्दर्शन।। (3)

स्व-शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि, हेतु जो बने हैं श्रमण।
उनके आदर्श को स्व-आदर्श, मानना यह है सम्यग्दर्शन।। (4)

इसी से जो होता है ज्ञान, वह होता है सम्यग्ज्ञान।
सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित, होता है सम्यक् आचरण।। (5)

अष्टमद रहित पंचाणु व्रतादि से, युक्त होता है प्राथमिक श्रावक।
षट् कर्त्तव्य सह-व्यसन रहित, संसार शरीर से विरक्त।। (6)

क्षुल्लक ऐल्लक होते हैं उत्कृष्ट, श्रावक वे होते गृहत्यागी।
पंच महाव्रतादि अट्ठाइस मूलगुण, धारी होते श्रमण वे गृहत्यागी।। (7)

ध्यान-अध्ययन व समता-शांति से, करते हैं वे आत्मा विशुद्धि।
निस्पृह निराडम्बर विरागता से, करते हैं वे आत्मा की सिद्धि।। (8)

घाति नाश से बनते अरिहंत, अघाति भी नाश से बनते सिद्ध।
स्वयं की उपलब्धि स्वयं में ही करके, बनते हैं स्वयं शुद्ध-बुद्ध।। (9)

निश्चय-व्यवहारमय होता है, रत्नत्रय साधन-साध्य रूप से।
दोनों के यथायोग्य समन्वय से, मोक्ष मिले 'कनक' स्व-शुद्धात्मा से।। (10)

निश्चय व्यवहार दोनों सापेक्ष, दोनों ही परस्पर उपकारी।

व्यवहार होता है साधन, निश्चय साधन कहे जिनवाणी।। (11)

व्यवहार बिना निश्चय न मिले, बिना निश्चय न व्यवहार।
निरपेक्ष दोनों होते है मिथ्या, सापेक्ष दोनों होते महोपकार।। (12)

आनंद जीव का प्रमुख गुण व उससे प्राप्त अनंत लाभ

(चाल : बड़ा नटखट है रे....., आत्मशक्ति से.....)

आनंद ही जीव का महान् गुणऽऽऽ सच्चिदानंद इसका प्रमाणऽऽऽ होऽऽऽ
हर जीव अतः चाहता सुखऽऽऽ दुःख से हर जीव होता विमुखऽऽऽ होऽऽऽ (ध्रुव)
ज्ञानानंद भी तो इसे ही कहतेऽऽ सहजानंद भी इसे ही कहतेऽऽऽ
परमानंद है जीव का शुद्ध स्वभावऽऽ विषयानंद है जीव का अशुद्ध भावऽऽऽ
आनंद ही...(1)

आनंद से जीव का कटता कर्मऽऽ आनंद हेतु ही जीव पालता धर्मऽऽऽ
इसी से विपरीत है दुःख-संक्लेशऽऽ जिससे होता है आस्रव (व) संश्लेष (बंध)ऽऽऽ
आनंद ही...(2)

समता-शांति व आत्म विशुद्धिऽऽ ईर्ष्या-द्वेष-घृणा से रहित बुद्धिऽऽऽ
दान-दया-सेवा व परोपकार सेऽऽ आनंद बढ़ता है पावन भाव सेऽऽऽ
आनंद ही...(3)

परनिंदा-अपमान व परपीड़ा सेऽऽ दुश्चिन्ता तनाव व उदासीनता सेऽऽऽ
फैशन-व्यसन-दंभ प्रपंच सेऽऽ दूर होने से सुख सुहृदयता (शांति) सेऽऽऽ
आनंद ही...(4)

आनंद से पाप भाव काम नहीं होतेऽऽ विवाद-विसंवाद व कलह नहीं होतेऽऽऽ
क्रूरता-शत्रुता-हत्या भी नहीं होतीऽऽ चिन्ता-उदासीनता आदि नहीं होतीऽऽऽ
आनंद ही...(5)

पाप निरोध होता तथा पुण्य बढ़ताऽऽ डोपामाइन रूपी हैप्पी हारमोन स्राव होताऽऽऽ
उत्साह-साहस-बल में भी होती संवृद्धिऽऽ उत्तम विचार काम में भी होती संवृद्धिऽऽऽ
आनंद ही...(6)

ज्ञान व ध्यान में भी होता विकासऽऽ (पाँचों ही) इन्द्रियों की क्षमता में होता विकासऽऽऽ

रोग-प्रतिरोधक क्षमता में होता विकासऽऽ नये रोग न होते पुराने विनाशऽऽऽ
आनंद ही...(7)

(बाह्य) अभाव व दुःखों का न होता अनुभवऽऽ संतोष शांति (आह्लाद) का होता है अनुभवऽऽऽ
अन्य भी होते आनंदित भाव संक्रमणऽऽ ओरा या आभा मण्डल का है परिणामऽऽऽ
आनंद ही...(8)

परम आनंद से होता कर्मों का संक्षयऽऽ जिससे जीव को मिलता परम मोक्षऽऽऽ
सच्चिदानंदमय जीव का शुद्ध स्वरूपऽऽ यही 'कनक' का शुद्ध अध्यात्म रूपऽऽऽ
आनंद ही...(9)

हिंसानंद मृषानंद चौर्यानंद सेऽऽ पाप, दुःख होता परिग्रहानंद सेऽऽऽ
फैशन-व्यसन-आडम्बर-दंभ सेऽऽ जो होता आनंद वह सुखाभास (है)ऽऽऽ
आनंद ही...(10)

धर्म में /(से) भी यदि होता संक्लेशऽऽ ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा व राग-द्वेष/(वाद-विवाद)ऽऽऽ
होता है दुःख (अतः) होता पापास्रवऽऽ धर्म का स्वरूप क्योंकि सुखरूपऽऽऽ
आनंद ही...(11)

परमागम से स्व-शुद्धात्मा का वेदन=सम्यग्ज्ञान

(परम सम्यग्ज्ञान है-स्व-सम्वेदन ज्ञान/स्व-शुद्धात्म ज्ञान)

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

''**अहमेक्को खलु सुद्धो**'' मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ का सम्वेदन सम्यग्ज्ञान है।
''**बहिरंगपरमागमाभ्यासेनाभ्यन्तरे स्वसम्वेदन ज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्**''
बाहर में परमागम का अभ्यास करते हुए भीतर में स्व-सम्वेदन ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

परम सम्यग्ज्ञान का स्वरूप जानो...परम आगम से स्व-सम्वेदन मानो...
आगम अध्ययन तो बाह्य कारण...स्व-शुद्धात्मा का वेदन है सम्यग्ज्ञान...(ध्रुव)...
आगम अभ्यास द्वारा होता स्व-ज्ञान...'मैं' हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनंद घन...
द्रव्य-भाव-नोकर्मों से भी परे...तन-मन-इन्द्रिय कषाय परे...
ऐसा जब होता आत्मा का वेदन...वह ही निश्चय से होता सम्यग्ज्ञान...

यदि न होता ऐसा स्व-सम्वेदन...तब न होता निश्चय सम्यग्ज्ञान...(1)...
यथा दर्पण में प्रतिबिंब दिखता...दर्पण से/(में, द्वारा) अक्ष प्रतिबिंब को देखता...
अंध न दिखे यथा प्रतिबिंब को...सम्वेदना रिक्त मोही न दिखे/(जाने) स्वयं को...
मोही का आगम ज्ञान भी मिथ्या ज्ञान...आगम से भी न करता स्व-सम्वेदन...
यथा चम्मच को स्वाद न आता...तथाहि मोही को स्व-सम्वेदन न होता...(2)...
यथा शक्कर के बारे में कोई पढ़ता...लेखन भाषण व प्रशंसा करता...
बिना चखे वह स्वाद न जानता...तथा स्व-सम्वेदन बिन आत्मा न जानता...
आगम वर्णित द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ...मतिज्ञान से भी जानता है अर्थ...
स्व-सम्वेदन बिन न होता सुज्ञान...सुश्रुत ज्ञान न होता जो आत्म-सम्वेदन...(3)...
भव्यसेन मुनि का न था सम्यग्ज्ञान...पढ़कर भी वह सकल श्रुतज्ञान...
द्वादशांग-चतुर्दश पूर्व भी पढ़ा...स्व-सम्वेदन बिन सुज्ञानी न बना...
लौकिक ज्ञान समान नहीं है सुज्ञान...पढ़ना लिखना ही नहीं सुज्ञान...
आध्यात्मिक ज्ञान है स्व-आत्मज्ञान...स्व-आत्मज्ञान बिन सभी कुज्ञान...(4)...
आगम ज्ञान या देव-गुरु का ज्ञान...स्व-सम्वेदन बिन सभी कुज्ञान...
गणित विज्ञान कानून संविधान...स्व-सम्वेदन बिन सभी कुज्ञान...
स्व-शुद्धात्म ज्ञान ही है परम ज्ञान...इसी हेतु देव-शास्त्र-गुरु का ज्ञान...
अतएव स्व-शुद्धात्म वेदन विधेय...इसी हेतु 'कनक' करे नित्य स्वाध्याय...(5)...

भगवान् का निश्चय स्वरूप व व्यवहार आदि रूप

(निश्चय से भगवान् स्व-कर्त्ता किन्तु व्यवहार भक्ति से मानते हैं भक्तों के उद्धार-कर्त्ता)

(भगवान की भक्ति का स्वरूप व फल)

(चाल : आत्मशक्ति.....)

जैन धर्म में वर्णित भगवान् (सिद्ध) का, स्वरूप असंसारी व अभौतिक।
भले समझाने के लिए दृष्टांत, हो सकते है सांसारिक व भौतिक।।
अमूर्तिक अनंत आकाश भी भौतिक के कारण दिखता है नीला व सीमित।

तथाहि स्व-स्व दृष्टि के कारण, भगवान् को मानते यथा है स्व-मत।। (1)

शुद्ध जीव ही होते हैं भगवान्, जो द्रव्य-भाव नोकर्म रहित।
तन-मन इन्द्रिय राग-द्वेषादि रिक्त, क्षुधा-तृष्णा-जन्म-मरणादि रिक्त।।

भूतपूर्व संग्रह आदि व्यवहार नय से, या भक्ति भाव से होता कुछ वर्णन।
तथापि निश्चय सत्य-तथ्य दृष्टि से, न होते वे संसारी व भौतिकमय।। (2)

अनंत गुण युक्त सर्वज्ञ होने से, उन्हें कहते हैं विश्व के प्रभु।
किन्तु न होते वे विश्व के कर्त्ता, होते हैं स्वयं के ही कर्त्ता व विभु/(प्रभु)।।

उनकी श्रद्धा से होता आत्मविश्वास, तथाहि ज्ञान-चारित्र होता सम्यक्।
जिससे बनते है सिद्ध भगवान् अतः, भक्ति से कहते हैं भगवान् हैं तारक।। (3)

सिद्ध बनने से पहले भक्तों को, स्व-पुण्य से मिलता सांसारिक-वैभव।
अतः व्यवहार व लौकिक दृष्टि से, कहते हैं भगवान् देते सांसारिक-वैभव।।

भक्ति के कारण पाप नाश से, तथाहि शुभभाव व पुण्य कर्म से।
रोग संकट आदि भी दूर होते, अतः मानते ये सब हुए भगवान् से।। (4)

लोकालोक ज्ञाता होते हैं भगवान्, अतः उन्हें कहते हैं सर्वगत।
किन्तु वे असंख्यात स्व आत्म-प्रदेश में, स्थिर रहते है शाश्वत।।

अनंत शक्ति से युक्त होने से, उन्हें कहते हैं सर्व शक्तिमान्।
किन्तु भौतिक शक्ति से रहित होते, नहीं करते वे विश्व निर्माण।। (5)

मोक्ष से पूर्व दिव्य ध्वनि से, विश्व हित हेतु करते वे धर्मोपदेश।
इसलिये उन्हें विश्व-गुरु भी कहते, विश्व-उद्धारक व विश्वेश।।

अक्षय अनंत ज्ञान सुख से, युक्त हैं वे सच्चिदानंदमय।
परम अहिंसा क्षमादि से युक्त, वे होते हैं ज्ञानानंदमय।। (6)

परम पावन व परम सत्य, परम वैभवशाली होते हैं भगवन्।
इसलिये ही तो भगवान् सबसे, श्रेष्ठ-ज्येष्ठ प्रामाणिक पूजनीय।।

उसकी पूजा आराधना भी 'वन्दे-तद्गुण-लब्धये' हेतु सदा विधेय।
स्वात्मोपलब्धि रूपी सिद्ध बनने का, 'कनकनन्दी' का परम ध्येय।। (7)

मेरी भावना मेरा लक्ष्य है मैं प्राप्त करूँ मेरा स्व-शुद्ध स्वरूप।

क्रोध-मान-माया-लोभादि नाशकर बनना चाहूँ मैं सच्चिदानंद रूप।।

हर जीव भी शुद्ध-बुद्ध बनकर पाये आध्यात्मिक अनंत सुख।
इसी हेतु भी कनकनन्दी भाव-व्यवहार लेखनादि से करे प्रयास।। (8)

(नव वर्ष में परम विकास का संकल्प/(लक्ष्य))

शुद्ध-बुद्ध आनंद बनना ही जीव का परम विकास

(चाल : दुनिया में रहना है तो.....)

लक्ष्य धरो भाई! लक्ष्य करो! महान् पावन लक्ष्य (को) करो!
आत्म विकास का लक्ष्य धरो! शुद्ध-बुद्ध-आनंद का लक्ष्य धरो!

'शुद्ध-बुद्ध-आनंद' ही तेरा स्वरूप 'सच्चिदानंद' है तेरा स्वरूप।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य अजर अमर व सत्य स्वरूप।।

तन-मन-इन्द्रिय न तेरा स्वरूप जन्म-जरा-मरण न तेरा स्वरूप।
राग द्वेष मोहादि न तेरा स्वरूप सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि न तेरा स्वरूप।।

ये सभी तेरे है विकार रूप कर्म जनित है संसारी रूप।
कर्म परतंत्रता का यह स्वरूप सांसारिक दुःखों का जनक रूप।।

इसीसे न होगा तेरा पूर्ण विकास इसी रूप मानना मोह स्वरूप।
इसी में राग द्वेष मोह बंधन रूप इसी से परे होना तेरा विकास।।

शांति-कुंथु-अरहनाथ तीनों ही तीन-तीन पदवी धारी भी हुए।
आत्म विकास हेतु त्यागे चक्री पद शुद्ध-बुद्ध होकर पाये परम पद।।

चक्रवर्ती (भी) यदि भोग/(पद) सहित मरे नरक गति के दुःखों को भरे।
मुमुक्षु मानव (यदि) आत्म विकास करे, शुद्ध-बुद्ध होकर मोक्ष को वरे।।

शरीर पोषण सत्ता संपत्ति अर्जन भोगोपभोग व फैशन-व्यसन।
ये सभी नीच पशु-पक्षी भी करते अज्ञानी मोही इसे (ही) सर्वस्व माने।।

मोक्ष पुरुषार्थ को ही प्रमुख करो! धर्म पुरुषार्थ से इसे वरण करो।
अर्थ व काम को हेय तू मानो! कमल समान निर्लिप्त बनो।।

शक्ति अनुसार पुरुषार्थ करो! भावना से लक्ष्य की ओर बढ़ो!
लक्ष्य प्राप्ति तक बढ़ते ही चलो! 'कनक' तू स्व-आत्म विकास करो!

(जीव एवं कर्म सिद्धांत संबंधी शोधपूर्ण कविता)

विश्व के सभी जीवों की अवस्थाएँ व मोक्ष अवस्था

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

जीवों के शुभाशुभ परिणामों से (कर्म) परमाणु परिणमते कर्म रूप से।
जीवों के असंख्यात (लोक प्रमाण) परिणामों से, कर्म बनते असंख्य रूप से।। (ध्रुव)

कर्म परमाणु तो जड़ रूप है, उनमें नहीं है चैतन्य गुण।
राग-द्वेष-काम-क्रोध-मद-मोह, नहीं होते हैं ज्ञान सुखादि गुण।।

शुद्ध चैतन्य गुण होते हैं शुद्ध, ज्ञान दर्शन सुख वीर्य गुण।
राग द्वेषादि होते है जीव व, कर्म परमाणु के मिश्रित गुण।। (1)

अतः राग-द्वेषादि की नहीं स्वतंत्र, शुद्ध रूप से मौलिक सत्ता।
ये तो अशुद्ध व मिश्र अवस्था, जिसके अस्तित्व से सांसारिक सत्ता।।

जीवों में भी है अनंत शक्ति (तथाहि) अनंत शक्ति कर्म परमाणु में।
परस्पर की बंध अवस्था में प्रगट, न होती दोनों की अनंत शक्ति।। (2)

दोनों ही दोनों की शक्ति खण्डित करते, जिससे दोनों होते दुर्बल।
दोनों के अशुद्ध परिणमन से, सूक्ष्म जीवों से बनते मानव तक।।

चौरासी लाख योनि मध्य में, इस चतुर्गति रूप संसार में।
अनादि अनंत काल से जीव, भ्रमण करते पंच परिवर्तन में।। (3)

जीव है अनंत, काल है अनंत, कर्म (परमाणु) है अनंतानंत संसार में।
भाव-कर्म अनुसार जीव जन्मते, मरते विभिन्न प्रजाति में।।

सूक्ष्म जीव भी मरकर बनते हैं, विशाल जीव अन्य प्रजाति में।
विशाल जीव भी मरकर बनते हैं, सूक्ष्म जीव अन्य प्रजाति में।। (4)

शरीर इन्द्रिय मन का भी होता, क्रम विकास व ह्रास भी।
ऐसा परिणमन अनंतबार भी संभव, मोक्ष प्राप्ति के पूर्व ही।।

जो मानव आध्यात्मिक विकास करते, वे प्राप्त करते मोक्ष ही।
मोक्ष ही जीवों का परम विकास, यह सच्चिदानंद स्वरूप ही।। (5)

परम अवस्था प्राप्ति के अनंतर, संसार में न होता पुनरागमन।

जन्म-जरा-मृत्यु-रोग-शोक रहित, तथाहि राग-द्वेष-मोह से (पूर्ण) शून्य।।
इन सब विषयों को भौतिक विज्ञानी, दार्शनिक तक नहीं जानते।
इन कारणों से उनके मत सार्वभौम (व) परम सत्य भी नहीं होते।। (6)

यह सब ज्ञानगम्य सर्वज्ञ द्वारा, पूर्वाचार्यों द्वारा भी ग्रंथ लिखित।
उनके अध्ययन मनन द्वारा, 'कनकनन्दी' द्वारा यह काव्य लिखित।। (7)

धर्म व अध्यात्म में समानता व अंतर

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)
धर्म है वस्तु स्वभावमय जो, हर द्रव्य में स्थित होता है।
जीव-अजीव व मूर्तिक-अमूर्तिक, हर द्रव्य धर्ममय होता है।।

आध्यात्मिक है जीव का शुद्ध स्वरूप, जो चैतन्य स्वरूप होता है।
ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय व सच्चिदानंद स्वरूप होता है।

हर द्रव्य में स्थित गुणों को 'स्वभाव' 'शक्ति' या 'धर्म' कहते हैं।
'लक्षण' या 'विशेष' रूप में भी, धर्म का कथन भी करते हैं।। (1)

हर द्रव्य में होते सामान्य गुण, 'अस्तित्व' 'वस्तुत्व' व 'द्रव्यत्व'।
'प्रमेयत्व' 'अगुरुलघुत्व' 'प्रदेशत्व' सहित होते हर द्रव्य।

किन्तु जीवों में होते विशेष गुण, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय।
अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह समता शांति क्षमामय।। (2)

आत्मविश्वास अनुभवज्ञान, सदाचरण सहिष्णुता उदारमय।
भेद-विज्ञान युक्त विवेकज्ञान, ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग।

शुद्ध-बुद्ध व परमात्म अवस्था, होती है परम आध्यात्मिकमय।
इसे प्राप्त हेतु जो होती है प्रक्रिया, उसे भी कहते हैं धर्ममय।। (3)

यथा पूजा-पाठ जप आराधना, तीर्थयात्रा वंदना प्रार्थना स्तवन।
दान दया सेवा व परोपकार, वैयावृत्ति, सहयोग-उपवास-मौन।

किन्तु आध्यात्मिक बिना उक्त धर्मकाम से नहीं मिलती है परम मुक्ति।
भले इसी से मिले सांसारिक सुख, भोगोपभोग-ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि।। (4)

इसी से संसार में ही परिभ्रमण होता, चौरासी लाख योनि व चतुर्गति में।
जन्म-जरा-मरण-रोग-शोक मिलते, परम सुख न मिले संसार में।

मोक्ष प्राप्ति हेतु (अतः) जीवों को आध्यात्मिक, चाहिए जीवों का शुद्ध स्वरूप।
अतएव 'कनकनन्दी' आध्यात्मिक, सेवन करे पाने को शुद्ध स्वरूप।। (5)

संदर्भ-

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्म भोग-णिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्त।। (275) समयसार

अभव्य जीव नित्य कर्मफल चेतना रूप वस्तु की श्रद्धा करता है किन्तु नित्य ज्ञान चेतना मात्र वस्तु की श्रद्धा नहीं करता क्योंकि वह सदा (स्व-पर के) भेद-विज्ञान के अयोग्य है। इसलिये वह कर्मों से छूटने के निमित्त रूप, ज्ञानमात्र, भूतार्थ (सत्यार्थ) धर्म की श्रद्धा नहीं करता, भोग के निमित्त रूप, शुभ कर्म मात्र, अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा करता है; इसलिये वह अभूतार्थ धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रूचि और स्पर्शन से ऊपर के ग्रैवेयक तक के भोग मात्र को प्राप्त होता है किन्तु कभी भी कर्मों से मुक्त नहीं होता। इसलिये उसे भूतार्थ धर्म के श्रद्धान का अभाव होने से (यथार्थ) श्रद्धान भी नहीं है।

परामनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक शोधपूर्ण कविता

सकरात्मक-वर्णन : धर्मग्रंथों में सर्वाधिक

(भारतीय धर्मग्रंथों में वर्णित परम-सकारात्मकता)

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

धर्म में तो सकारात्मक वर्णन...ग्रंथों में सर्वाधिक पाया जाता है...
भले उसका सही परिज्ञान...सभी लोग नहीं कर पाते हैं...(स्थायी)...

आधुनिक विज्ञान से लेकर जो...मोटिवेशन/(मैनेजमेंट) में वर्णन है...
उससे भी अधिक वर्णन तो...धर्मग्रंथों में पाया जाता है...

धर्मग्रंथों में वर्णित है...सच्चिदानंदमय हर जीव है...
सत्य शिव सुंदर अनंत गुणमय...स्वयंभू स्वयंपूर्ण हर जीव है...(1)...

जो जीव स्वयं को ऐसा मानता...उसको होता है आत्मविश्वास...

उसका ज्ञान होता है सम्यग्ज्ञान...विचार होता है सकारात्मक...

ऐसा जीव नकारात्मक विचारों को...मानता है अनात्म रूप...
जिससे वह नकारात्मक...विचारों को त्यागने का करे यत्न...(2)...

क्रोध मान माया लोभ ईर्ष्या...द्वेष घृणा वैरत्व अपमान...
अंधश्रद्धा व अंधानुकरण...चिन्ता निन्दा अभिमान...

हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह...शोषण मिलावट भ्रष्टाचार...
वाद-विवाद व कलह-झगड़ा...अवसाद व दुर्विचार...(3)...

आलस्य प्रमाद किंकर्त्तव्यमूढ़ता...लक्ष्यहीन व निरूद्देश्य...
फैशन-व्यसन-विलासिता आदि को...त्यागे नकारात्मक मानकर...

इन बस नकारात्मक भावों को...मानता है पाप स्वरूप...
जो आत्मा का पतन करे...वह है पाप स्वरूप...(4)...

जिससे आत्मा का होता विकास...उसे मानता है धर्म स्वरूप...
स्वर्ग से लेकर मोक्ष के...उपाय को मानता है धर्ममय...

आत्म विकास से विश्व कल्याण...तक मानता है धर्ममय...
आत्म शांति से विश्व शांति...तक मानता है धर्ममय...(5)...

मोक्ष से ही जीव बनता है...पूर्ण सच्चिदानंद स्वरूप...
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय...शुद्ध बुद्ध शाश्वत रूप...

केवल भौतिक उपलब्धि हेतुक...नहीं है सकारात्मकता...
आत्मोपलब्धि के कारणभूत...विचार है परम सकारात्मकता...(6)...

ऐसे परम विचार सहित ही...होते हैं सच्चे धार्मिक...
ऐसे ही परम विचार/(लक्ष्य के कारण)...'कनक' बना है धार्मिक...(7)...

आगम ज्ञान व शुद्धात्मा भावना बिना मुक्ति नहीं

(शुद्धात्मा भावना बिना केवल बाह्य तप-त्याग पूजादि से मुक्ति नहीं)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

शुद्धात्मा भावना बिना व्रत तपादि, दानदया सेवा पूजा तीर्थ वंदना आदि।
न बनते मोक्ष हेतु न होता सम्यक्त्व, भले इससे मिले स्वर्ग मनुष्य सुख।। (स्थायी)

शुद्धात्मा भावना से ही मिलता सम्यक्त्व, होता है भेद-विज्ञान नशे मिथ्यात्व।
अनंतानुबंधी क्रोध मान मायादि नशे, ज्ञान व चारित्र भी होते सम्यक्।
व्रत नियम तप-त्यागादि होते सम्यक्, संवर व निर्जरा भी होते सम्यक्।
सातिशय बंध होता (है) पुण्य विशेष, सांसारिक सुख (व) मिले मोक्ष सुख।। (1)
शुद्धात्माभावना बिना न होता सम्यक्त्व, सम्यक्त्व बिना तप-त्याग न होते सम्यक्।
दान दया सेवा पूजा तीर्थ वंदना आदि, पापानुबंधी पुण्य बंधे न मिले मुक्ति।
घोर तप-त्याग उपसर्ग सहन आदि, मासोपवास सहित मुनिव्रत आदि।
सम्यक्त्व बिना न बनते मोक्ष (के) कारण, सम्यक्त्व बिना न होता भेद-विज्ञान।। (2)
सम्यक्त्व हेतु परमागम ज्ञान चाहिए, आध्यात्म अनुभवी श्रमण गुरु चाहिए।
पंचलब्धियों का सम्यक् संयोग चाहिए, राग द्वेष मोह का उपशम आदि चाहिए।
इसी से (होता है) आत्मा का सही श्रद्धान, जिससे होते सम्यक् व्रत (व) नियम।
स्वशुद्ध आत्मा का भी होता अनुभव ज्ञान, जिससे निश्चय से मैं हूँ परमात्मा समान।। (3)
शुद्धात्मा भावना से/(में) स्व का होता ज्ञान-ध्यान, मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध स्वभावी आनंद घन।
राग द्वेष मोह रहित (हूँ) सच्चिदानंद, तन-मन अक्ष रहित (हूँ) ज्ञानानंद।
इसी से आत्म विशुद्धि समता बढ़ती, राग द्वेष मोह की भी शक्ति घटती।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा की शक्ति नशती, ख्याति पूजा लाभ की इच्छा न होती।। (4)
इसी से ही आत्मा की प्रगति होती, संवर निर्जरा सहित मुक्ति मिलती।
जिससे मिलता आत्मिक अनंत सुख, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य आत्मिक सुख।। (5)

निन्दा दोष एक : पाप अनेक

स्व-पर दोष दूर करने के उपाय-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र (निन्दा से स्व-दोष बढ़ते हैं किन्तु सम्यग्दर्शन के 8 अंग व सम्यग्ज्ञान-चारित्र से दोष दूर होते हैं)

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

स्व-पर दोष निवारण उपाय जानो, सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों को मानो।
सुज्ञान चारित्र से दोष निवारण, पर निन्दा से स्व-(पर) दोष संवर्द्धन।। (ध्रुव)

सम्यग्दर्शन से आत्म-अनात्म श्रद्धान जिससे होता सम्यग्ज्ञान उत्पन्न।
सच्चिदानंदमय आत्म श्रद्धान उसके अनुकूल होता सम्यग्ज्ञान।।

द्रव्य-भाव-नोकर्म भी होते अनात्मा सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि (होती) अनात्मा।
क्रोध मान माया लोभ मोह अनात्मा नो कषाय भी होते अनात्मा।। (1)

शत्रु-मित्र-भाई-बंधु होते अनात्मा पर निन्दा अपमान होते अनात्मा।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा होते हैं अनात्मा पाँचों पाप भी होते हैं अनात्मा।।

ऐसा दृढ़ श्रद्धान (होता) है निःशंकअंग, अनात्मा में नहीं होता आकांक्षा भाव।
अनात्मा को आत्ममय की न होती मूढ़ता आत्म गुणों में न होती विचिकित्सा।। (2)

परदोष ढ़ाकना तो उपगूहन (स्व-पर) आत्म गुणों में स्थापित स्थितिकरण।
धर्म व धार्मिक/(आत्मिक गुणों) में होता वात्सल्य भाव,
आत्मिक गुणों को बढ़ाना प्रभावना अंग।।

उक्त श्रद्धान युक्त ज्ञान होता सुज्ञान आत्म उपलब्धि हेतु सदाचरण।
इसी हेतु अनात्म भाव का त्याग, इसी हेतु तप-त्याग ध्यान वैराग्य।। (3)

दीपक यथा प्रकाशित होता पहले अन्य भी प्रकाशित होते बाद में।
बुझा हुआ दीपक से संभव नहीं, निन्दा से दुर्गुण भी मिटते नहीं।।

निर्दोष आप्त/(अर्हन्) ही होते सच्चे उपदेशक, दुर्गुणी न होते सच्चे उपदेशक।
निन्दक न होते गुणी उपदेशक, निन्दक न होते स्व-पर (भी) सुधारक।। (4)

अतः निन्दक न बनो निन्दा न करो, आत्मिक भाव का विनाश न करो।
आत्महित सह परहित भी करो 'कनकनन्दी' सदा आत्म स्वभाव धरो।।

सर्व जीवों में होती मैत्री भावना, गुणी जनों में प्रमोद भावना।
दुःखी जीवों में करुणा भावना, विपरीत जीवों में साम्य भावना।। (5)

पृष्ट माँस भक्षी सम होते निन्दक, स्व-पर अपकारी होते निन्दक।
मिथ्यात्व आराधक भी होते निन्दक, ईर्ष्या घृणादि से युक्त होते निन्दक।।

सर्वज्ञ जानते सभी जीवों के कुगुण, तथापि वे न होते निन्दक।
गुण दोष जानना है आत्म स्वभाव, निन्दा करना तो अनात्म भाव।। (6)

परिग्रह : महापाप क्यों?

(परिग्रह में सभी पाप गर्भित)

(धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से)

(राग : अच्छा सिला दिया.....)

तीर्थंकर ने कहा विश्व को, परिग्रह है महान् पाप।
जिस पाप में गर्भित होते हैं, अन्यान्य समस्त पाप।। (1)

इस सिद्धांत को अभी के वैज्ञानिक, कर रहे हैं सत्य-सिद्ध।
प्रदूषण से लेकर ग्लोबल वार्मिंग तक, होते परिग्रह से सिद्ध।। (2)

अंतरंग व बहिरंग रूप से, परिग्रह होते है जिन कथित।
चौदह अंतरंग-बहिरंग दस, संपूर्ण होते परिग्रह चौबीस।। (3)

तृष्णादि होते (है) अंतरंग परिग्रह, जिससे होता है बहिरंग।
चेतन-अचेतन-मिश्र रूप में, बहिरंग होते है परिग्रह।। (4)

सत्ता-संपत्ति आदि बहिरंग परिग्रह, हेतु मानव करते है विविध पाप।
लोभ-मद-मोह अंतरंग परिग्रह, शोषण आदि अनेक पाप।। (5)

खान खोदते व प्रकृति नाशते, पशु-पक्षी मछलियों को मारते।
फैक्ट्री चलाते गाड़ी चलाते, भोग-उपभोग की सामग्री बनाते।। (6)

इसी से प्रकृति का विनाश करते, पर्यावरण प्रदूषण भी करते।
ग्लोबल वार्मिंग इससे बढ़ता, जिससे वातावरण असंतुलित होता।। (7)

अतिवृष्टि अनावृष्टि होती, अकाल भूखमरी अधिक बढ़ती।
ग्लेशियर पिघलते बाढ़ भी आती, समुद्र का जल-स्तर भी बढ़ता।। (8)

भूकंप आता सुनामी बनता, जन-धन का भी विनाश होता।
ओजोन परत में छेद भी होता, अनेक रोगों का प्रकोप बढ़ता।। (9)

पाप भी होता संताप बढ़ता, जीते जी ही नारकी बनते।
मरण उपरान्त नारकी बनते, तीर्थंकर अतः इसे पाप बताते।। (10)

अतएव मानव संतोषी बनो, परिग्रह तृष्णा कभी न करो।
संयमी बनो सदाचारी बनो, 'कनक' चाहे धार्मिक बनो।। (11)

शुभ व शुद्ध भाव के अचिंत्य फल

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा....., भातुकली.....)

शुद्ध लक्ष्य रखकर जो शुभ करते, अचिंत्य वैभव को अवश्य (ही) पाते।
सांसारिक सुख सह मोक्ष (सुख) पाते, शुद्ध-बुद्ध बन आत्मसुख पाते।। (ध्रुव)

यथा वट-बीज विशाल वृक्ष बनता, बीज से वृक्ष अरबों गुणा बढ़ता।
शाख-प्रशाखाओं से भी युक्त बनता, पत्र-फूल-फल से सहित होता।।

पशु-पक्षी कीट-पतंग (भी) आश्रय लेते, छाया में श्रांत-क्लांत विश्राम लेते।
प्रदूषणों को भी वह शोषण करता, खरबों बीजों को भी उत्पन्न करता।। (1)

सुयोग्य क्षेत्रादि से यथा बीज वृक्ष बनता, तथा शुभ-शुद्ध से वैभव मिलता।
शुभ से पुण्य कर्म का संचय भी होता, जिससे सांसारिक वैभव मिलता।।

दया दान सेवा जो परोपकार करते, ख्याति पूजा लाभ बिन शुभ (कर्म) करते।
ध्यान-अध्ययन-तप-त्याग करते, सांसारिक सुख (व) मोक्ष सुख (भी) पाते।। (2)

प्रशस्त भाव से होता शुभ के भाव, राग द्वेष मोह का मंद प्रभाव।
ईर्ष्या तृष्णा घृणादि भी होते है मंद, प्रशम-संवेग-आस्तिक्य होते भाव।।

आध्यात्मिक उन्नति का होता है भाव, आत्म विशुद्धि का भी होता है भाव।
उदार सहिष्णु क्षमादि भाव, लक्ष्य रहता (है) मिले शुद्ध स्वभाव।। (3)

ऐसे जो भाव व शुभ कर्म करते, राजा-महाराजा के (वे) पाते वैभव।
इन्द्र चक्रवर्ती के भी वैभव पाते, सातिशय पुण्य से तीर्थंकर (भी) बनते।।

शुद्ध प्राप्ति हेतु जो बनते श्रमण, सत्ता-संपत्ति त्यागे करे जो ध्यान।
समता शांति आत्म विशुद्धि से, कर्म क्षय से पाते वे आत्म-वैभव।। (4)

मोक्ष में मिलते है अनंत वैभव, अनंत ज्ञानदर्शन सुखवीर्य।
अतः सदा शुभ शुद्ध (ही) करणीय, 'कनक' का लक्ष्य है आत्म वैभव।। (5)

सद्गुण स्मरण-कीर्तन व अनुकरण ही यथार्थ से प्रार्थना

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

पूजा-प्रार्थना आरती-वंदना, गुण व गुणी की है अभिवंदना।
सद्गुण श्रवण स्मरण कीर्तन, अनुकरण है यथार्थ प्रार्थना।।

इसी से पावन होती है भावना, सद्गुण प्राप्ति की होती भावना।
जिससे पापों का होता क्षरण, गुणानुकरण से पावन जीवन।।

इसी से आत्मिक विकास होता, आत्मविश्वास भी प्रबल होता।
महान् लक्ष्य में ही प्रयाण (भी) होता, धैर्य व दृढ़ता में विकास होता।।

विघ्न-संकट व रोग भी नशते, (सद्भाव) समन्वय सदाचार भी बढ़ते।
आनंद उल्लास उत्साह बढ़ते, समता-शांति व ज्ञान भी बढ़ते।।

समस्त धार्मिक परंपराओं में, इसी हेतु होती पूजा आराधनाएँ।
इसी से भिन्न न सही प्रार्थना, 'कनक' सदा चाहे सद्गुण कामना।।

धर्म का सच्चा स्वरूप व विकृत रूप

(राग : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया.....)

परम पावन व परम उदार, धर्म होता है आध्यात्मिकमय।
किन्तु संकीर्ण-स्वार्थी मोहीजन, धर्म को करते विपरीतमय/(विषयमय)।। (स्थायी)

देवों को संतोष करने के लिए, करते हिंसा व बलिदान।
ढोंग आडम्बर व मिथ्याचार, औरों का करते शोषण।।

ईर्ष्या द्वेष व घृणा करते, अन्य धर्मी से अत्याचार।
आक्रमण युद्ध हत्या करते, महिलाओं से बलात्कार।। (1)

श्रद्धा के नाम पर सेवते अंधश्रद्धा, तथाहि करते प्रचार-प्रसार।
तो भी स्वयं को सच्चा-अच्छा मानते, और करते पापाचार।।

पावन भाव-व्यवहार बिना, ढोंग-पाखण्ड से चाहते सुख।
बाह्य-आडम्बर व क्रियाकाण्ड से, चाहते स्वर्ग व मोक्ष सुख।। (2)

सांसारिक कार्य हेतु परिश्रम करते, मोक्ष हेतु न करते काम।
बिना परिश्रम ढोंग मात्र से, चाहते मिले स्वर्ग व मोक्ष-धाम।।

बोलते भाव को अच्छा करो, किन्तु न जानते भाव-स्वरूप।
चाहते दूसरे अच्छा बने, स्वयं को न बनाते पावन-स्वरूप।। (3)

'धर्म से होता है विश्व कल्याण', ऐसा करते हैं बाह्य प्रचार।
स्वयं को इसका न ज्ञान होता, न पालते स्वयं सदाचार।।

धर्म का दुरुपयोग करते हैं, सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि हेतु।
फैशन-व्यसन व भोगोपयोग, ईर्ष्या द्वेष व घृणा हेतु।। (4)

धर्म होता है आत्म स्वभाव, जो है सत्य-समता व सदाचार।
अहिंसा अचौर्य व ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह शुचिता व आत्म विचार।।

इसी से भिन्न न होता धर्म, भले क्रिया-काण्ड हो धार्मिक।
आत्म विशुद्धि हेतु धार्मिक क्रिया, 'कनक' को मान्य सच्चे धार्मिक।। (5)

कर्म सैद्धांतिक व आध्यात्मिक शोधपूर्ण कविता

स्व-आत्मा का परम ज्ञान सबसे कठिन भी सरल भी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., भातुकली.....)

सबसे सूक्ष्म/(कठिन) है सबसे दुरूह है, स्व-आत्मा का ही परम ज्ञान।
यथा आकाश को जानना कठिन, तथाहि मानना तो अति कठिन।। (1)

पत्थर आदि स्थूल भौतिक को, देखना छूना तो अति सरल।
किन्तु परमाणु को जानना देखना, चर्मचक्षु से नहीं सरल।। (2)

परमाणु से भी सूक्ष्म है आत्मा, आकाश से भी अति महान्।
सबसे गूढ़ भी सबसे निकट भी, इसके लिए आकाश भी उदाहरण।। (3)

अनंतानंत कर्म परमाणुओं से, आच्छादित है हर आत्म प्रदेश।
जिससे आच्छादित है आत्मिक गुण, श्रद्धान ज्ञान व आचरण।। (4)

जब तक घातिकर्म चारों का, नहीं हो जाता है पूर्ण क्षय।
तब तक परम ज्ञान न होता, क्षयोपशम बिन न होता आरंभ।। (5)

यथा तम में न दिखती वस्तु, तथाहि घाति कर्मोदय से आत्मा।
निर्मल परिणाम से होता क्षयोपशम, जिससे होता है आत्म ज्ञान।। (6)

इसी हेतु आध्यात्मिक गुरु चाहिए, स्वाध्याय हेतु आगम चाहिए।
मनन-चिन्तन व ध्यान चाहिए, समतापूर्ण आत्म संवेदना चाहिए।। (7)

इसी से आत्मज्ञान होता सरल, अन्यथा न होता आत्मज्ञान।
सत्ता-संपत्ति व डिग्री के द्वारा, नहीं होता है आत्म का ज्ञान।। (8)

चक्रवर्ती भी बनते हैं साधु, परम आत्मज्ञान के हेतु।
यह ही विश्व की परम उपलब्धि 'कनक' चाहे आत्मोपलब्धि।। (9)

मोहात्मक प्रेम त्याग से व शुभ प्रेम से आध्यात्म प्रेम की प्राप्ति

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

भोगोपभोग व काम भोग में, आसक्त होना ही नहीं सच्चा-प्रेम।
हर जीव प्रति मैत्री भावना, होता है सच्चा-आदर्श-प्रेम।। (स्थायी)

भोगोपभोग व काम भोग में, आसक्त होना है मोह-कर्म।
इसी से तो अनेक अनर्थ होते, तथाहि बंधता है पाप कर्म।।

आसक्ति पूर्वक प्रेम के कारण, होते है फैशन-व्यसन।
इसी हेतु परिग्रह भी होता, होते है रोगी तन व मन।। (1)

इसी से परे निःस्वार्थ भाव से, होता है जो आदर्श-प्रेम।
वह ही विश्व मैत्री विश्व कल्याण की, भावना होता है शुभ प्रेम।।

दान-दया-सेवा व परोपकार, ये सब ही है आदर्श प्रेम/(शुभ प्रेम/धर्म प्रेम)।
तीर्थंकर नामकर्म का भी बंधन, होता ऐसा यह विश्व प्रेम।। (2)

आत्मविशुद्धि व आत्म कल्याण, आत्मसुधार ही है आध्यात्म-प्रेम।
इसी से ही आत्मविकास होता, जिससे मिलता है परिनिर्वाण।।

आदर्श-प्रेम से मोह-प्रेम त्यागो, पाओ है! आध्यात्मिक प्रेम।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी', त्याग किया है मोहात्मक प्रेम।। (3)

संदर्भ-

अशुभाच्छुभमायातः शुद्धः स्यादयमागमात्।
खेरप्राप्तसंध्यस्य तमसो न समुद्गमः।। (122) आत्मानुशासन

भव्य जीव आगम ज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभ रूप संयम अवस्था को प्राप्त हुआ समस्त कर्ममल से रहित होकर शुद्ध हो जाता है। ठीक है-सूर्य जब तक संध्या (प्रभात काल) को नहीं प्राप्त होता है तब तक वह अंधकार को नाश नहीं करता है।

विधूततमसो रागस्तपः श्रुतनिबन्धनः।

संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः।। (123) आत्मानुशासन

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने वाले प्राणी के जो तप और शास्त्र विषयक अनुराग होता है वह सूर्य की प्रभात की लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिए होता है।

विहाय व्याप्तमालोक पुरस्कृस्य पुनस्तमः।

रविवद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति।। (124) आत्मानुशासन

जिस प्रकार सूर्य फैले हुए प्रकाश को छोड़कर और अंधकार को आगे करके जब राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है/अस्त हो जाता है, उसी प्रकार जो प्राप्त वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले ज्ञान रूप प्रकाश को छोड़कर अज्ञान को स्वीकार करता हुआ राग (विषयवांछा) को प्राप्त होता है वह पाताल तल को अर्थात् नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है।

भाव विशुद्धि ही परमोधर्म

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

भाव विशुद्धि है (ही) परम धरम, भाव विशुद्धि हेतु (ही) धरम पालन।
भाव विशुद्धि बिन धार्मिक कर्म, बीज बिना खेती समान कर्म।। (धृ.)

वस्तु स्वभावमय होता धरम, वस्तु विभावमय होता अधर्म।
शुद्ध-बुद्धमय ज्ञान-आनन्द, समता-शांति ही जीव का धर्म।।

आनंदमय होता जीव स्वभावतः, अतएव हर जीव चाहे आनंद।
स्वभाव होने से जीव का धर्म आनंद, शुद्ध बुद्धमय व ज्ञानानंद।। (1)

यह अवस्था ही है मोक्ष-अवस्था, जीव की परम उच्च शुद्ध अवस्था।
जन्म-जरा-मृत्यु रिक्त अवस्था, सच्चिदानंदमय ध्रुव-अवस्था।।

इसे प्राप्ति हेतु जो होते कर्म, उसे भी कहते (है) व्यवहार धर्म।
दान दया सेवा व परोपकार, सादा जीवन व उच्च विचार।। (2)

पूजा-प्रार्थना व तीर्थ वंदना, तप-त्याग तथा मौन साधना।
ध्यान-अध्ययन व संयम शौच, यह सब भी (है) धर्म की साधना।।

भाव विशुद्धि बिन धर्म न होता, इसी से युक्त कर्म-धर्म भी होता।

अज्ञानी मोही जीव यह नहीं जानते, संकीर्ण कट्टरता से धर्म करते।। (3)

जिससे धर्म में/(से) होते अनेक कुकर्म, भेदभाव पूर्ण अयोग्य कर्म।
भाव विशुद्धि से यह न संभव, 'कनक' चाहे आत्म विशुद्धि धर्म।। (4)

नन्दौड़, दिनांक 03.10.2015, मध्याह्न 3.00

अल्प पाप बंध कारक शुभकाम भी करणीय

(शुभ बिना अशुभ (पाप) ही संभव न कि शुद्ध (मोक्ष) संभव)

(तर्ज : एकांत मौन में मैं.....)

पावन भाव से जो धर्म करता, ख्याति पूजा लाभ परे कार्य करता।
सिंधु के समान वह पुण्य बांधता, बिन्दु के समान वह पाप बांधता।। (धृ.)

सेवा दान व जो परोपकार करता, आहार औषधि से जो वैयावृत्ति करता।
मंदिर मूर्ति का (जो) पंचकल्याण करता, पाप से अधिक वह पुण्य बांधता।।

पाप निर्जरा भी उसकी अधिक होती, आत्मविशुद्धि भी अधिक होती।
आत्मिक उन्नति भी इसी से होती, परंपरा से उसे मुक्ति मिलती।। (1)

असि मसि कृषि वाणिज्य सेवा से, पुण्य बंध न होता शिल्प काम से।
ये सब होते है आरंभ (के) काम, जीविका निर्वाह हेतु भौतिक/(सांसारिक) काम।।

पाप बंध इसी से होता प्रचुर, द्रव्य भाव हिंसा होती प्रचुर।
अविपाक निर्जरा न होती इसी से, मोक्ष उपलब्धि न होती इसी से।। (2)

भोगोपभोग व फैशन-व्यसनों से, हिंसा झूठ चोरी कुशील संग्रह से।
ईर्ष्या द्वेष घृणा व तृष्णा मोह से, पाप ही बंध होता सांसारिक काम से।।

मोक्ष हेतु शुभकाम सदा करणीय/(विधेय), अन्यथा अशुभ काम होगा निश्चय।
अशुभ कार्य से जो पाप संचय होता, शुभकार्य से उसे क्षय विधेय।। (3)

शुभ से ही शुद्ध होता है प्राप्त, अशुभ से शुद्ध न होता प्राप्त।
शुभ बिना अशुभ होगा अवश्य, अशुभ से पाप होगा अवश्य।।

सुलभ होते है अशुभ के काम, सुलभ न होते है शुभ के काम।
अशुभ से परे शुभ-शुद्ध ही ग्राह्य, 'कनकनन्दी' को अध्यात्म प्रिय।। (4)

रागी द्वेषी मोही के भाव व्यवहार तथा इनसे विपरीत आध्यात्मिक जन

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

रागी द्वेषी मोही कामी क्रोधी, नहीं जानते हैं सत्यासत्य।
ईर्ष्या तृष्णा व घृणा सहित, करते भाव व्यवहार अयुक्त।।
यथाहि मद्यपी नशा सहित, नहीं जानता है हित-अहित।
भाव व्यवहार करता अहितकर, तथाहि रागी द्वेषी के भाव व्यवहार।। (1)

मद्य से भी अधिक होता नशा, राग द्वेष मोह काम क्रोध में।
कुछ समय (तक) मद्य का नशा रहता, राग द्वेषादि का तो भव-भव में।।
रागी द्वेषी मोही न स्वयं को जाने, तथाहि न जानता हैं पर स्वरूप।
स्वयं को जानता है शरीरमय, राग द्वेष मोहादि को स्व-स्वभाव।। (2)

शरीर संबंधिओं को माने स्व-कुटुम्ब, सत्ता-संपत्ति को माने स्व-वैभव।
जन्म जरा मरण को (माने) स्व-अवस्था, सांसारिक सुख-दुःख को आत्म दशा।।
इन्द्रिय विषयों को ही मानता सत्य, इन्द्रिय सुख को ही मानता सुख।
तन-मन-इन्द्रियमय (ही) माने स्वयं को, सच्चिदानंदमय न माने स्वयं को।। (3)

उक्त विषयों में ही रूचि रखता, उसके लिए ही वह ज्ञान करता।
उसका संवर्द्धन संरक्षण करता, अहंकार व प्रशंसा भी करता।।
आध्यात्मिक जन इससे भिन्न होता, स्वयं को सच्चिदानंद मानता।
स्वरूप का श्रद्धान व ज्ञान करता, स्व-स्वरूप प्राप्ति हेतु यत्न करता।। (4)

स्व-स्वरूप चिंतन व ध्यान करता, स्व-स्वरूप की चर्चा प्रशंसा करता।
तप त्याग द्वारा मोक्ष प्राप्त करता 'कनक' को स्वरूप ही श्रेय लगता।।
दोनों के भाव व्यवहार भिन्न होते, परस्पर विरोधी भाव-व्यवहार होते।
मोही आध्यात्मिक जन को दोषी मानता, आध्यात्मिक जन साम्य भाव रखता।। (5)

अज्ञानी-मोही के विपरीत भाव व व्यवहार

(चाल : भातुकली....., छोटी-छोटी गैया.....)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध से, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा व अहंकार से।

जीव न जानते सत्य-तथ्य, हिताहित विवेक से होते रिक्त।।

सत्य को असत्य माने जाने जीव, हित को अहित माने वे जीव।
मद्यपी से भी होते अधिक मोहित, अंधे से भी अधिक विवेक रहित।।

सत्ता-संपत्ति को अपना मानते, भोगोपभोगों में होते आसक्त।
फैशन-व्यसनों में होते मस्त, पर अहित में लगाते चित्त।।

गुण व गुणी की न प्रशंसा करते, अन्य की प्रशंसा से घृणा करते।
अन्य की निन्दा से प्रसन्न वे होते, अन्य के दुःख से खुश वे होते।।

अन्य की प्रगति से जलते रहते, अन्य को छोटा कर बड़ा बनते।
अन्य की निन्दा से महान् बनते, अन्य के नाश से स्व-विकास मानते।।

विघ्नसंतोषी व छिद्रान्वेषी होते, परसुखकातर व कृतघ्नी होते।
स्व-दोष व कमी को नहीं जानते/(मानते), स्व-दोष कमी को सही मानते/(जानते)।।

संकीर्ण कट्टर जो धार्मिक होते, धन-जन-मान से संयुक्त होते।
ख्याति-पूजा-लाभ में (जो) आसक्त होते, बुद्धिजीवी में उक्त कुगुण (अधिक) होते।।

सरल-सहज भोला-भाला जो होते, श्रद्धा-प्रज्ञा से जो संयुक्त होते।
स्व-परहितकारी (जो) गुणज्ञ होते, उक्त कुगुण से वे बचते रहते।।

स्व-पर सुख हेतु सुगुण ग्राह्य, स्व-पर दुःख हेतु कुगुण त्याज्य।
सुगुणों से ही मिलता है मोक्ष, 'कनक' अतएव सुगुणों में आसक्त।।

अभव्य-पापी जीवों को आत्मज्ञान नहीं मिलता

(चाल : छिप गया कोई रे.....)

आत्मज्ञान महान् है अभव्य न पाते/(करते), मोक्ष पाने वाले ही आत्मज्ञान करते।
सत्ता-संपत्ति/(डिग्री) हेतु तो मोही ज्ञान करते, आत्म विकास हेतु ज्ञान न करते।। (स्थायी)

आत्मज्ञान बिना कोई न सुज्ञानी होते, राजा-महाराजा चक्री-देव क्यों न होते।
दार्शनिक कवि विज्ञानी लेखक क्यों न होते, आत्मज्ञान बिना वे सभी कुज्ञानी होते।। (1)

आत्मज्ञान से ही जीव सुज्ञानी होते, सुज्ञानी जीव ही आत्मविश्वासी/(श्रद्धानी) होते।
जिससे उनका लक्ष्य महान् होता, समता-शांतिमय अध्यात्म होता।। (2)

अतः अन्याय-अत्याचार वे न करते, फैशन-व्यसन व दंभ न करते।

शालीन सदाचारी सभ्य वे होते, दया दान सेवा व परोपकार करते।। (3)
मैत्री प्रमोद कारूण्य माध्यस्थ होते, वैर विरोध ईर्ष्या घृणा न करते।
सरल-सहज संतोषी अनिंदक होते, हिंसा झूठ चोरी कुशील से निवृत्त होते।। (4)
परम आत्मज्ञान हेतु सर्वस्व त्यागते, विद्वान् चक्रवर्ती (तक) भी साधु हो जाते।
आत्म विशुद्धि से पूर्ण आत्मज्ञ होते, अनंत ज्ञान दर्श सुख वीर्य को पाते।। (5)
यही है जीवों का परम-विकास, शुद्ध-बुद्ध-आनंद व ध्रुव स्वभाव।
इंद्र चक्रवर्ती से भी अनंत वैभव, जन्म-जरा-मरण रहित अमृत भाव।। (6)
(ऐसे) परम आत्मज्ञान को मोही न जानते/(मानते), सांसारिक कुज्ञान में ही आसक्त होते।
लौकिक पढ़ाई हेतु (तो) आसक्त होते, स्व-आत्मज्ञान से विमुख होते।। (7)
मद्य व्यसनी यथा मद्य को चाहते, मोहासक्त जीव तथा कुज्ञान चाहते।
जिससे संसार में परिभ्रमण करते, अनंत दुःखों को वे सहन करते।। (8)
स्व-शुद्धात्म ज्ञान ही है परम ज्ञान, जिससे जीवों को मिलता परिनिर्वाण।
अमृतमय यह है आध्यात्म ज्ञान, 'कनकनन्दी' का यह स्व-आत्मज्ञान।। (9)

परमार्थ-I

'मैं'/(स्व) की उपलब्धि ही जैन धर्म रहस्य का सार

स्व-उपलब्धि ही मोक्ष, अन्यथा है संसार

(मोक्ष के प्रमुख कारण व संसार भ्रमण के प्रमुख कारण)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे.....)
जिया रे! तू स्व-उपलब्धि करोऽऽऽ
स्व-उपलब्धि ही परम उपलब्धिऽऽऽ अन्य सब अनित्य संसारऽऽऽ...(ध्रुव)...
स्व-विश्वास चाहिए..स्व-उपलब्धि हेतुऽऽऽ 'मैं' हूँ सच्चिदानंदमयऽऽऽ
स्व-ज्ञान चाहिए..आत्मविश्वास युक्तऽऽऽ 'मैं' हूँ अनंत ज्ञान दर्शमयऽऽऽ
स्व-शुद्धात्म अनुभव करोऽऽऽ...(1)...
इसी हेतु ही ध्यान-अध्ययन करोऽऽऽ करो तप-त्याग-संयमऽऽऽ
व्रत-नियम-अध्यापन-प्रवचन करोऽऽऽ करो धर्म प्रभावना व लेखनऽऽऽ

आत्म प्रभावना हेतु करोऽऽऽ...(2)...

स्व-उपलब्धि लक्ष्य के अतिरिक्तऽऽऽ सभी धार्मिक क्रिया व्यर्थऽऽऽ
व्रत-नियम-अध्ययन-अध्यापनऽऽऽ प्रवचन-लेखन भी हैं व्यर्थऽऽऽ
आत्मोपलब्धि ही परमार्थऽऽऽ...(3)...

भव्यसेन मुनि आत्म सम्वेदन बिनऽऽऽ आगमज्ञान से न पाया मोक्षऽऽऽ
शिवभूति मुनि आत्म सम्वेदन सेऽऽऽ 'मा तुस मा रुस' से पाये मोक्षऽऽऽ
अतः रोष-तोष को त्यजऽऽऽ...(4)...

रोष-तोष कारक भाव-व्यवहारऽऽऽ करो हे! त्याग नवकोटि सेऽऽऽ
समता-शांति-निस्पृह भाव सेऽऽऽ स्व-आत्मा का शोध-बोध करोऽऽऽ
संकल्प-विकल्प/(संक्लेश) परिहारोऽऽऽ...(5)...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागकरऽऽऽ स्व (मैं) का ही करो ध्यान-अध्ययनऽऽऽ
एकांत मौन व निराडम्बर बनकरऽऽऽ स्वयं में ही स्वयं हो लीनऽऽऽ
सच्चिदानंद पूर्ण बनऽऽऽ...(6)...

इसके अतिरिक्त सभी उपलब्धियाँऽऽऽ पाया है अनंतानंत बारऽऽऽ
उससे अनंतानंत दुःखों को भोगाऽऽऽ अतः रहो इनसे अति दूरऽऽऽ
'कनक' शुद्धात्मा तव संसारऽऽऽ/(स्वात्मोपलब्धि ही आध्यात्म सारऽऽऽ)...(7)...

परमार्थ-II

स्व-शुद्धात्मा अध्ययन से मोक्ष

(मोक्ष के प्रमुख कारण व संसार भ्रमण के प्रमुख कारण)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)
जिया रे! तू स्व-अध्ययन करोऽऽऽ
स्व-अध्ययन ही है स्वाध्यायऽऽऽ अन्यथा तोता रटन्तऽऽऽ...(ध्रुव)...

स्व-स्वरूप..परिज्ञान हेतुऽऽऽ पर-स्वरूप..तू जानऽऽऽ
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थों को जानऽऽऽ जिससे करो भेद-विज्ञानऽऽऽ
इससे होता आत्मज्ञानऽऽऽ...(1)...

आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र द्वाराऽऽऽ आत्मा का करो अनुभवऽऽऽ
अनुभव ही यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ स्वाध्याय ही परम तपऽऽऽ
स्व-सम्वेदन ही परम तपऽऽऽ...(2)...

स्व-सम्वेदन से होता परिज्ञानऽऽऽ 'मैं' हूं सच्चिदानंदमयऽऽऽ
स्वयंभू स्वयंपूर्ण अनंत गुणधामऽऽऽ ज्ञान दर्शन सुख वीर्य पूर्णऽऽऽ
स्वाध्याय रूप यह पूर्णऽऽऽ...(3)...

स्व-अनुभव बिन आगम अध्ययन भीऽऽऽ नहीं होता यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ
(यथा) स्व-अनुभव बिन कंप्यूटर कामऽऽऽ नहीं होता यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ
अभव्य के आगम ज्ञान समऽऽऽ...(4)...

अभव्य सेन मुनि का आगम अध्ययनऽऽऽ नहीं था यथार्थ स्वाध्यायऽऽऽ
/(नहीं बना मोक्ष हेतु कारणऽऽऽ)
शिवभूति मुनि का आत्मानुभव ज्ञानऽऽऽ बना था मोक्ष हेतु कारणऽऽऽ
/(शुद्धात्मा को मिले परिनिर्वाणऽऽऽ)...(5)...

शब्द से लेकर भौतिक ग्रंथ तोऽऽऽ होते हैं जड़ स्वभावमयऽऽऽ
ग्रंथ पढ़ना व याद रखना तोऽऽऽ होता है क्षयोपशममयऽऽऽ
शुद्धात्मा को मिले है मोक्षऽऽऽ/(अतः शुद्धात्मा करो वरणऽऽऽ)...(6)...

शुद्धात्मा से भिन्न विभाव त्यागोऽऽऽ संकल्प-विकल्प-संक्लेशऽऽऽ
ख्याति पूजा लाभ अहंकार-ममकारऽऽऽ त्यागकर बनो आकिञ्चन्यऽऽऽ
'कनक' स्वयं/(मैं) में करो रमणऽऽऽ...(7)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 08.04.2016, मध्याह्न 2.43

परमार्थ-III

सामाजिक से लेकर मानसिक सत्य परे हूँ 'मैं' शुद्धात्मा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जय हनुमान.....)

सत्य के विभिन्न स्वरूप को जानो, लौकिक से लेकर आध्यात्मिक मानो।
उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सत्य ये जानो, स्व-शुद्धात्मा ही स्व-परम सत्य मानो।।

सामाजिक-नैतिक-पारिवारिक सत्य, संगठन व राष्ट्रीय मान्य भी सत्य।
अंतर्राष्ट्रीय व मानसिक भी सत्य, स्व-शुद्धात्मा ही स्व-परम सत्य।।

उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते ये सत्य, द्रव्य-क्षेत्र-काल सापेक्ष है सत्य।
स्व-शुद्धात्मा ही है स्व-परम सत्य, इसी की प्राप्ति हेतु करूँ प्रयत्न।। (1)

स्व-शुद्धात्मा से भिन्न सभी ही सत्य, स्वयं के लिए नहीं है परम सत्य।
सामाजिक से लेकर अंतर्राष्ट्रीय सत्य, साधारण मानव द्वारा मान्य सत्य।।

मानसिक सत्य भी नहीं परम होता, मन से परे शुद्धात्मा स्वरूप होता।
मानसिक सत्य होता है क्षायोपशमिक, शुद्धात्म स्वरूप होता है क्षायिक।। (2)

सच्चिदानंद है शुद्धात्मा स्वरूप, अजर-अमरमय शाश्वत रूप।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य रूप, स्वतंत्र स्वयंपूर्ण अखण्ड रूप।।

स्व-शुद्धात्मा प्राप्ति ही मेरा परम लक्ष्य, इसी हेतु ही करूँ सदा प्रयत्न।
लौकिक व्यवहार से भले करूँ 'मैं' मान्य, श्रद्धा व प्रज्ञा से न करूँ मान्य।। (3)

बादल से भले आकाश दिखे विभिन्न, तथापि आकाश न होता बादलमय।
लौकिक व्यवहार से मेरे रूप विभिन्न, तथापि शुद्ध रूप मम होता चैतन्य।।

अतएव कहा गया है आगम में, ''अलौकिक वृत्ति भवति मुनिनाम्''।
यथायोग्य 'मैं' करूँ ऐसी प्रवृत्ति, 'कनकनन्दी' चाहे आत्मोपलब्धि।। (4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 08.04.2016, रात्रि 8.45

संदर्भ-

अयथार्थ ग्रहण ही संसार तत्त्व

जे अजधागहिदत्था एदे तच्च त्ति णिच्छिदा समये।
अच्चंतफलसमिद्धं भमंति ते तो परं कालं।। (271) प्र.सा.

Those, who have wrongly grasped the nature of realities and are sure (in their mistaken way) that the reality, according to the creed, is such wander long (till infinity) in mundane existence which is full with the fruits of misery.

अब संसार का स्वरूप प्रगट करते हैं-(जे) जो कोई (अजधागहिदत्था) अन्य प्रकार से असत्य पदार्थों के स्वभाव को जानते हुए (एदे तच्च त्ति समये) ये ही

आगम में तत्त्व कहे है ऐसा (णिच्छिदा) निश्चय कर लेते है (ते तो) वे साधु इस मिथ्या श्रद्धान व ज्ञान के कारण भाविकाल में (अच्चंतफलसमिद्धं) अनंत दुःखरूप फल से भरे हुए संसार में (परं कालं) अनंत काल तक (भंमति) भ्रमण करते है। (जो कोई साधु या अन्य आत्मा सात तत्त्व नव पदार्थों का स्वरूप स्याद्वाद नय के द्वारा यथार्थ न जानकर और का और श्रद्धान कर लेते है और यही निर्णय कर लेते है कि आगम में तो यही तत्त्व कहे हैं) वे मिथ्या श्रद्धानी या मिथ्याज्ञानी जीव द्रव्य, क्षेत्र काल, भव, भाव स्वरूप पाँच प्रकार संसार के भ्रमण से रहित शुद्ध आत्मा की भावना से हटे हुए इस वर्तमान काल से आगे भविष्य में भी नरकादि दुःखों से अत्यंत कटुक फलों से भरे हुए संसार में अनंत काल तक भ्रमण करते रहते हैं। इसलिये इस तरह संसार भ्रमण में परिणमन करने वाले पुरुष ही अभेदनय से संसार स्वरूप जानने योग्य हैं।

जो स्वयं अविवेक से पदार्थों को अन्यथा ही समझ करके ऐसा ही तत्त्व है ऐसा निश्चय करते हुए, निरंतर एकत्र किये जाने वाले महा मोहमल से मलिन मन वाले होने से नित्य अज्ञानी हैं, वे समय में आगम में स्थित होने पर भी परमार्थ श्रामण्य को प्राप्त न होने से वास्तव में श्रमणाभास वर्तते हुए, अनंत कर्मफल की उपभोग राशि से भयंकर ऐसे अनंत काल तक अनंत भवान्तर रूप परावर्तनों से (संसार में अनवस्थित वृत्ति वाले रहने से उनको संसार तत्त्व ही जानना अर्थात् वे संसार में परिभ्रमण करते हैं।

समीक्षा-जिस प्रकार दृष्टि दोष से वस्तु जैसी है वैसी दिखाई नहीं देती अन्य रूप दिखाई देती है उसी प्रकार जिसकी श्रद्धा में दोष है वह भी वस्तु स्वरूप को आगम में पढ़ते हुए भी अन्यथा ही ग्रहण करता है। जैसे पीलिया रोगी सफेद वस्तु को भी पीले रूप में देखता है और जिसने काला चश्मा पहन लिया है उसको हर वस्तु काली दिखाई देती है। उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव आगम में वर्णित यथार्थ वस्तु को भी जैसी नहीं है वैसी समझता है। इस अयथार्थ ग्रहण रूप मिथ्यात्व के कारण जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। परन्तु आगे भी जब तक मिथ्यात्व का त्याग नहीं करेगा तब तक अनंत संसार में परिभ्रमण करता रहेगा। इससे सिद्ध होता है कि केवल मिथ्या शास्त्र के अध्ययन से ही मिथ्या ज्ञान नहीं होता है परन्तु सच्चे जैनागम के अध्ययन से भी मिथ्यात्व के उदय में भी मिथ्याज्ञान हो जाता है।

क्योंकि ज्ञेय मिथ्याज्ञान के लिए कारण नहीं है परन्तु मिथ्यात्व रूप भाव ही मिथ्यात्व के लिए कारण है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में भी उल्लू को दिखाई नहीं देता इसमें सूर्य का प्रकाश दोषी नहीं बल्कि उल्लू का क्षयोपशम ज्ञान ही दोषी है। कभी-कभी जीव राग के कारण दृष्टि दोष के कारण, या मरण के पहले एकचन्द्र को दो चन्द्र रूप से देखता है, एक वस्तु को दो वस्तु रूप में देखता है। इसमें वस्तु दोषी नहीं बल्कि उसका ज्ञान ही दोषी है। इसी प्रकार मोहोदय से जीव सर्वज्ञ प्रतिपादित यथार्थ उपदेश का श्रद्धान नहीं करता है परन्तु अयथार्थ स्वरूप को उपदेश या अनुपदेश से भी श्रद्धान कर लेता है और यह मोह भाव ही संसार होने के कारण उस मोह से युक्त जीव ही संसार स्वरूप है न कि द्रव्य मय विश्व संसार है। इस विश्व में सिद्ध भी रहते हैं तथापि वे संसारी नहीं है क्योंकि उनके भाव संसार नहीं है। क्योंकि भाव संसार ही उपादान रूप से संसार है क्योंकि इससे ही जीव चर्तुगति रूपी भव में संसरण करता है। भगवती आराधना में कहा भी-

मोहोदयेण जीवो उवइट्ठपवयणं ण सद्दहदि।

सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा।। (39) पृ. 76

मोह के उदय से जीव उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान नहीं करता है किन्तु उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट असमीचीन भाव अर्थात् अतत्त्व का श्रद्धान करता है।

मिच्छतं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।

ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।। (40)

मिथ्यात्व को वेदन-अनुभवन करने वाला जीव विपरीत श्रद्धा वाला होता है उसे धर्म नहीं रूचता है। जैसे ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति को निश्चय से मधुर रस नहीं रूचता।

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।

सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।। (38)

जिसे पूर्वोक्त सूत्र में कहा एक भी पद और अक्षर नहीं रूचता शेष में रूचि होते हुए भी निश्चय से मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए।

सुविहियमिमं पवयणं असद्दहंतेणिमेण जीवेण।

बालमरणाणि तीदे मदाणि काले अणंताणि।। (41)

अच्छी तरह से किये गये इस प्रवचन को अश्रद्धान करने वाले जीव ने अतीत

काल में अनंत बालमरण मरे।

णिग्गंथं पव्वयणं इणमेव अणुत्तरं सुपरिसुद्धं।

इणमेव मोक्खमग्गोत्ति मदी कायव्विया तम्हा।। (42)

इसलिये रत्नत्रय रूप जो प्रवचन का अभिधेय है यही सर्वोत्कृष्ट और पूर्ण रूप से निर्दोष है। यही मोक्ष का मार्ग है ऐसी मति करनी चाहिए।

महात्मा बुद्ध ने भी कहा है कि सद्धर्म से रहित व्यक्ति का संसार परिभ्रमण लंबा होता है। यथा-

दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स भेजनं।

दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं।। (1) पृ.21 धम्मपद

जागने वाले के लिए रात लंबी होती है, थके हुए के लिए योजन लंबा होता है, सद्धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार (चक्र) लंबा होता है।

परमात्म प्रकाश में भी कहा है-

बुज्झइ सत्थइँ तउ चरइ पर परमत्थु ण वेइ।

ताव ण मुंचइ जाम णवि इहु परमत्थु मुणेइ।। (82) (पृ.201)

शास्त्रों को जानता है और तपस्या करता है लेकिन परमात्मा को नहीं जानता है और जब तक पूर्व कथित परमात्मा को नहीं जानता या अनुभव नहीं करता, तब तक कर्मों से नहीं छूटता। यद्यपि व्यवहारनय से आत्मा अध्यात्मशास्त्रों से जाना जाता है, तो भी निश्चय से वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान ही से जानने योग्य है। यद्यपि बाह्य सहकारी कारण अनशनादि बारह प्रकार के तप से साधा जाता है तो भी निश्चयनय से निर्विकल्प वीतराग चारित्र से ही आत्मा की सिद्धि है। जिस वीतराग चारित्र का शुद्धात्मा में विश्राम होना ही लक्षण है उस वीतराग चारित्र के बिना आगमज्ञान से तथा बाह्य तप से आत्मज्ञान की सिद्धि नहीं है। जब तक निज शुद्धात्म तत्त्व के स्वरूप का आचरण नहीं है तब तक कर्मों से नहीं छूटता यह निसंदेह जानना। जब तक परम तत्त्व को न जाने, न श्रद्धा करे, न अनुभव करे तब तक कर्मबंध से नहीं छूटता। इससे ही निश्चय हुआ कि कर्मबंध से छूटने का कारण एक आत्मज्ञान है और शास्त्र का ज्ञान भी आत्मज्ञान के लिए ही किया जाता है। जैसे दीपक से वस्तु को देखकर वस्तु को उठा लेते हैं और दीपक को छोड़ देते है उसी तरह शुद्धात्म तत्त्व के उपदेश करने वाले जो अध्यात्मशास्त्र उनसे शुद्धात्म तत्त्व को जानकर उस शुद्धात्मा का

अनुभव करना चाहिए और शास्त्र का विकल्प छोड़ना चाहिए। शास्त्र तो दीपक के समान है, तथा आत्म वस्तु रत्न के समान है।

सत्थु पढंतु वि होइ जडु जो ण हणेइ वियप्पु।
देहि वसंतु वि णिम्मलउ णवि मण्णइ परमप्पु।। (83)

जो जीव शास्त्र को पढ़ते हुए भी विकल्प दूर नहीं करता वह मूर्ख है, जो विकल्प नहीं मेटता और देह में स्थित भी निर्मल परमात्मा को श्रद्धान में नहीं लाता, वह मूर्ख है। शास्त्राभ्यास का तो फल ही यह है कि रागादि विकल्पों को दूर करना और निज शुद्धात्मा का ध्यान करना। इसीलिए हमें व्याख्यान को जानकर तीन गुप्तियों में अचल हो परम समाधि में आरूढ़ होकर निज स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। लेकिन जब तक तीन गुप्तियाँ न हो परम समाधि न आवे तब तक विषय कषायों को हटाने के लिए पर जीव को धर्मोपदेश देना चाहिए। किन्तु फिर भी परोपदेश के बहाने मुख्यता अपने जीव को यानि अपने आपको ही संबोधित करना चाहिए। पर को उपदेश देते अपने को समझावे। जो मार्ग दूसरों को छुड़ावे वह आप कैसे करे? इससे मुख्य संबोधन स्वयं को ही है परजीवों को ऐसा उपदेश है, जो यह बात मेरे मन में अच्छी नहीं लगती तो, तुमको भली नहीं लगती होगी, तुम भी अपने मन में विचार करो।

बोह-णिमित्त सत्थु किल लोइ पढिज्जइ इत्थु।
तेण वि बोहु ण जासु वरु सो किं मूढु ण तत्थु।। (84)

इस लोक में नियम से ज्ञान के निमित्त ही शास्त्र पढ़े जाते हैं परन्तु शास्त्रों को पढ़ने से भी जिसको उत्तम ज्ञान नहीं हुआ क्या वह मूर्ख नहीं है? वह मूर्ख ही है, इसमें संदेह नहीं। यद्यपि लोक व्यवहार में कवि, गमक, वादी, वाग्मीपने का ज्ञान शास्त्रजनित ज्ञात होता है तो भी निश्चयनय से वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान की-ही अध्यात्मशास्त्रों में प्रशंसा की गई है। स्वसंवेदन ज्ञान के बिना शास्त्रों के पढ़े हुए भी मूर्ख है और जो कोई परमात्मज्ञान के उत्पन्न करने वाले थोड़े शास्त्रों को भी जानकर भी वीतराग-स्वसंवेदनज्ञान की भावना करते हैं वे सिद्ध हो जाते हैं। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है-''मोहशत्रु को जीतने वाले वैराग्य परायण वीर थोड़े शास्त्रों को ही पढ़कर सुधर जाते हैं-सिद्ध हो जाते हैं और वैराग्य के बिना सब शास्त्रों को पढ़ते हुए भी मुक्त नहीं होते।'' परन्तु यह कथन अपेक्षा से है। इस बहाने से शास्त्र पढ़ने का

अभ्यास नहीं छोड़ना और जो विशेष शास्त्र के पाठी है उनको दोष न देना। ''जो शास्त्र के अक्षर तो बता रहा है किन्तु आत्मा में चित्त नहीं लगाता उसे ऐसा जानना जैसा किसी ने कण रहित बहुत भूसे का ढेर कर लिया हो, वह किसी काम का नहीं है।'' इत्यादि पाठ मात्र सुनकर जो विशेष शास्त्रज्ञ हैं उनकी निंदा नहीं करनी चाहिए और जो बहुश्रुत हैं उनको भी अल्प शास्त्राज्ञों की निंदा नहीं करनी चाहिए क्योंकि पर के दोष ग्रहण करने से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, उससे ज्ञान और तप का नाश होता है, यह निश्चय से जानना चाहिए।

यथार्थ ग्रहण ही मोक्ष तत्त्व

अजधाचारविजुत्तो जधत्थपदणिच्छिदो पसंतप्पा।

अफले चिरं ण जीवदि इह सो संपुण्णसामण्णो।। (272) प्र.सा.

He, who has abstained from improper conduct, who is certain about the nature of reality exactly as it is, whose Soul is peaceful and who maintains perfect asceticism her, will not live long without attaining, the fruit (of liberation).

निश्चय व्यवहार में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र-सम्यग्तप-सम्यग्वीर्य ऐसे पाँच आचारों की भावना में परिणमन करते रहने से जो अयथाचार व विरुद्ध आचार से रहित है, सहज ही आनंद रूप एक स्वभावधारी अपने परमात्मा को आदि लेकर पदार्थों के ज्ञान सहित होने से जो यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञाता है तथा विशेष परम शांत भाव में परिणमन करने वाले अपने आत्मद्रव्य की भावना सहित होने से जो शांतात्मा है। ऐसा पूर्ण साधु शुद्धात्मा के अनुभव से उत्पन्न सुखामृत रस के स्वाद से रहित ऐसे इस फल-रहित संसार में दीर्घकाल तक नहीं ठहरता है। अर्थात् शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस तरह मोक्ष तत्व में लीन पुरुष ही अभेद नय से मोक्ष स्वरूप है ऐसा जानने योग्य है।

समीक्षा–पूर्वोक्त 271 नं. गाथा में आचार्यश्री ने अयथार्थ ग्रहण को संसार कहा है तो इससे विपरीत यथार्थ ग्रहण मोक्ष तत्त्व है ऐसा कथन किया है। स्व के लिए स्व आत्मतत्त्व का श्रद्धान, ज्ञान एवं ग्रहण ही यथार्थ ग्रहण है और यह ही मोक्ष है। इसलिए जिस प्रकार संसार तत्त्व स्वयं जीव है उसी प्रकार मोक्ष तत्त्व भी स्वयं जीव ही है क्योंकि रत्नत्रय की पूर्णता या स्व उपलब्धि ही मोक्ष होने के कारण यह मोक्ष भी स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल को छोड़कर अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल में नहीं रहता है। इसलिए जो

अनंत सुख स्वरूप स्वस्वरूप को प्राप्त कर लेता है वह अनंत दुःख रूप संसार से च्युत हो जाता है। इसलिए मोक्ष, सुख और शांति चाहने वालों को यह सब बाहर नहीं ढूँढ़ना चाहिए किन्तु स्वयं में ही शोध-बोध एवं उपलब्धि करना चाहिए। इसलिए तो जो तत्त्ववेत्ता होते हैं वे न संसार के वैभव से प्रलोभित होते हैं न द्रव्य नरक के दुःख से भयभीत होते हैं क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास एवं ज्ञान है कि संपूर्ण दुःख हो या सुख स्वयं में ही निहित है बाह्य में नहीं।

आगम व मेरे अनुभव से आत्मश्रद्धा-प्रज्ञा की परिणति

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., आत्मशक्ति.....)

जड़ जैसे बना था में अनादि काल से, जड़मय अष्ट कर्म संश्लेष बंध से,
जड़ कर्म से उत्पन्न भाव नोकर्म को निजरूप मानकर भोगा मैं दुःखों को।

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव (गुरु) को पाकर मैं जाना व माना भी इसी से परे मैं,
मैं हूँ सच्चिदानंद अमूर्त स्वरूप सत्य-शिव-सुंदर-आनंद रूप।। (1)

जब मैं/(मेरा) सत्य स्वरूप को जाना-माना तब से मैं पररूप को जाना-माना,
स्वज्ञान बिना परज्ञान होता स्व-परज्ञान से ही भेद-विज्ञान होता।

भेद-विज्ञान बिन हिताहित ज्ञान न होता श्रेय-अश्रेय का ज्ञान-भान न होता,
श्रद्धा व प्रज्ञा का न विकास होता भाव व्यवहार न सम्यक् भी होता।। (2)

राग-द्वेष-मोह भी न होते न्यून ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा भी न होते हैं क्षीण,
परनिन्दा अपमान भी न होते कम ख्याति पूजा लाभ में होते लीन।

स्वश्रद्धा-प्रज्ञा से उक्त कुगुण होते क्षीण सनम्र सत्यग्राही उदार परिणाम,
समता-शांति-सहिष्णुता गुण सहित मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ युक्त।। (3)

सरल-सहज-आत्मविशुद्धि सहित क्षमा-धैर्य-गुण-ग्रहणता सहित,
आत्मविकास हेतु सतत प्रयासरत आगम अनुभव से 'कनक' को ज्ञात।

किसी भी कारण से उक्त सुगुण न करते त्याग, ख्याति पूजा लाभ धर्म निमित्त भी,
स्व-आत्म गुण ही निश्चय से स्वधर्म/(सुधर्म), आत्म गुण से विपरीत सभी अधर्म।। (4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 05.04.2016, मध्याह्न 2.35

परम सत्य हेतु मेरा प्रयत्न

(परम सत्य में मेरे लिए 'मैं' ही प्रथम परम सत्य)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा....., तुम दिल की.....)

परम सत्य को मैं जानना चाहता हूँ, पूर्ण नहीं तो अभी आंशिक चाहता हूँ।
इन्द्रिय व यंत्रों से परे चाहता हूँ, मन व अनुमान से (भी) परे चाहता हूँ।।

कर्म व कर्मफल चेतना से भी परे, ज्ञान चेतना से मैं जानना चाहता हूँ।
लौकिक ज्ञान-विज्ञान से परे चाहता हूँ, कानून-संविधान से परे चाहता हूँ।।

रूढ़ि परंपरा नीति-नियम से, धार्मिक पंथ-मत वाद-विवादों से।
संकीर्ण-कट्टर-अंध परंपराओं से, जानना चाहता हूँ स्व-ज्ञान चेतना से।। (1)

विधि-निषेध व मान्यता परे भी, लिखित मौखिक ज्ञान-विज्ञानों से भी।
संपूर्ण बंधन व सीमा से परे भी, जानना चाहता हूँ परम सत्य ही।।

परम सत्य को मैं स्वज्ञान से जानूँगा, जानने वाला मैं स्वयं ही होऊँगा।
अतएव मुझे ही मुझे पहले जानना पड़ेगा, प्रथम परम सत्य मैं ही हुआ।। (2)

शक्ति रूप से मैं हूँ परम सत्यमय, क्योंकि परम सत्य जिज्ञासा मुझमें उदय।
मेरी शक्ति को मुझे पूर्ण प्रगट करना है, इसी हेतु सतत मैं प्रयत्नरत हूँ।।

इसी हेतु परम सत्यमय स्वयं को मानता, तदनुकूल ही जानता भावना करता।
तदनुकूल ही कथन स्मरण भी करता हूँ, नवकोटि से तदनुकूल आचरण करता हूँ।। (3)

अभी हूँ तो मैं तीन काल में भी हूँगा, अतएव शाश्वतिक सत्य स्वरूप 'मैं' हुआ।
जानने की मेरी प्रवृत्ति है चैतन्यमय, अतएव मेरा शुद्ध स्वरूप है चैतन्यमय।।

मेरा ही परम सत्य अभी मुझे पूर्ण न ज्ञात, इसी से सिद्ध हुआ अभी 'मैं' पूर्ण न शुद्ध।
शुद्ध होने हेतु 'मैं' अभी प्रयत्नरत, (अतएव) त्याग रहा हूँ राग द्वेष मोहासक्त।। (4)

समता शांति व निस्पृहता सहित, शोध-बोध कर रहा हूँ 'मैं' मौन सहित।
आकर्षण-विकर्षण व द्वंद रहित, साधनारत हूँ 'मैं' श्रद्धा-प्रज्ञा सहित।।

ख्याति पूजा लाभ व भीड़ से रहित, संकल्प-विकल्प व संक्लेश रहित।
मुझमें ही मेरा परम सत्य पाने में रत, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य स्व-परम सत्य।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 06.04.2016, रात्रि 8.40

(यह कविता 'अलौकिक शक्ति के चमत्कार' डॉ. जोसेफ मर्फी से भी प्रभावित है।)

संदर्भ-

आत्मा का स्वरूप

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।

अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोक विलोकनः।। (21)

This soul can be adequately known by self-contemplation and is of the size of its body, immoratal, of an exceedingly blissful nature and the knower of Loka and Aloka!

''वेद्यत्वं वेदकत्वं च, यत्स्वस्यस्वेन योगिनः।

तत्स्वसंवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम्।।'' (तत्वानुशासन)

उपर्युक्त प्रकार से आचार्य गुरुदेव के द्वारा संबोधित करने पर शिष्य आत्मा का श्रद्धान करके पुनः गुरु से जिज्ञासा करता है कि हे गुरुदेव! वह आत्मा किस प्रकार का है जिसका ध्यान करने के लिए आपने उपदेश दिया। उसका स्वरूप क्या है? इस जिज्ञासा का उत्तर आचार्यश्री देते हैं कि-

यह आत्मा लोक एवं अलोक को प्रकाश करने वाला अनंत अक्षय ज्ञानी हैं। जीवादि षट् द्रव्य से व्याप्त आकाश को लोक कहते हैं उससे भिन्न अनंत आकाश आलोक कहते हैं। ऐसे लोक एवं अलोक को जानने वाला आत्मा है। इससे सांख्य-मत का जो सिद्धांत ''ज्ञान शून्य चैतन्य मात्रात्मा है तथा योगमत के अनुसार जो बुद्धि आदि गुण से रहित पुरुष है'' का निरसन हुआ। इससे बौद्धों का नैरात्मवाद विध्वंस हुआ। पुनः यह आत्मा अत्यंत सौख्यवान् अर्थात् अनंत सुख सम्पन्न स्वभाव वाला है। इससे सांख्य तथा योगमत का निषेध हुआ। यह आत्मा जिस शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर में व्याप्त होने के कारण उस शरीर परिमाण हो जाता है। इससे इसका निरसन होता है कि आत्मा वट कणिका मात्र है। पुनः यह आत्मा द्रव्यरूप से शाश्वतिक है। इससे गर्भ से लेकर मरण तक ही जीव है, ऐसा मानने वाला चार्वाक मत का खण्डन हुआ।

प्रश्न-जो प्रमाण से सिद्ध है उसका गुणानुवाद-गुण कथन करना श्रेय है परन्तु आत्मा की सिद्धि प्रमाण से नहीं हुई है अतः उसका कथन योग्य नहीं है?

उत्तर-आचार्य कहते हैं कि आत्मा की सिद्धि स्व-संवेदन से सुव्यक्त है अर्थात् स्पष्ट रूप से सिद्ध है। तत्वानुशासन में कहा भी है-

''जो योगियों को स्वयं का स्वयं के द्वारा ज्ञेयपना और ज्ञातापना है उसे ही स्व-संवेदन या आत्मा का अनुभव कहते हैं।'' इसी प्रकार स्व-संवेदन रूप प्रत्यक्ष प्रमाण से जो कि समस्त प्रमाण के लिए धूरी स्वरूप है उससे स्पष्ट रूप से योगियों को एक देश से आत्मा की अनुभूति होती हैं।

समीक्षा-आत्मा अमूर्तिक चैतन्यस्वरूप आनंद घनरूप है जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशित होता है एवं दूसरों को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार आत्मा भी स्व-चेतना के गुण के माध्यम से स्वयं को एवं दूसरों को भी प्रकाशित करता है, जानता है एवं अनुभव करता है। इसलिए श्लोक में कहा गया है कि आत्मा स्व-संवेदन से स्पष्ट रूप से जाना जाता है। आत्मा स्वतंत्र द्रव्य होने के कारण और द्रव्य उत्पाद व्यय से युक्त होते हुए भी ध्रौव्य होने के कारण आत्मा भी नित्य है। संसारी जीव जिस शरीर को प्राप्त करता है, संकोच विस्तार गुण के कारण आत्मा उस शरीर में पूर्ण रूप से व्याप्त करके रहता हैं आत्मा का सर्वश्रेष्ठ गुण है अक्षय, अनंत सुख। इस गुण के कारण ही जीव अन्य द्रव्य से श्रेष्ठ है। अनंत ज्ञान के माध्यम से जीव समस्त लोक-अलोक को जानता है। इन सब विषयों का वर्णन प्रवचनसार आदि ग्रंथों में विस्तार रूप से किया गया है, वहाँ से विशेष जिज्ञासु को अवलोकनीय है तथापि कुछ विषय यहाँ पर उद्धत कर रहा हूँ।

णाणं अप्पत्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं।
तम्हा णाण अप्पा अप्पा णाणं वा अण्णं वा।। (27)

वस्तु अनेकांतात्मक है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण एक साथ अविरोध रूप में रहते हैं, जैसे अग्नि में दाहकत्व, प्रकाशकत्व, पाचकत्व आदि अनेक गुण एक साथ रहते हैं तो भी एक गुण दूसरे गुण रूप परिणमन नहीं करता है। अग्नि दाहकत्व गुण के कारण दहन करती है, पाचकत्व गुण के कारण पचाती है और प्रकाशकत्व गुण के कारण प्रकाश करती है इसलिए अग्नि एक होते हुए भी तीनों गुण के कारण अलग-अलग है। अग्नि तो तीनों रूप है परन्तु एक-एक गुण पूर्ण अग्नि रूप नहीं है इसलिए प्रकाशकत्व आदि गुण कथंचित् अग्नि रूप है कथंचित् नहीं है इसी प्रकार आत्मा एवं आत्मा के गुणों के बारे में जानना चाहिए। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि अनंत गुण

है तथापि आत्मा में ज्ञानगुण के अतिरिक्त अन्य गुण भी है इसीलिए आत्मा ज्ञानगुण स्वरूप व अन्य गुणरूप भी है। यदि आत्मा को केवल ज्ञान-स्वरूप स्वीकार किया जावे एवं अन्य स्वरूप स्वीकार नहीं किया जावे तो अन्य गुणों का अभाव हो जाएगा एवं अन्य गुणों के अभाव से आत्मा का भी अभाव हो जाएगा क्योंकि गुण के अभाव से गुणी का अभाव हो जाएगा एवं गुणी के अभाव से गुण का भी अभाव हो जाएगा। इसलिए कथंचित् गुण-गुणी में भेद एवं अभेद भी है। इस सूक्ष्म सैद्धांतिक विषय को सरलीकरण करने के लिए और एक-दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसे कोई कहता है, एक मीठा आम ले आओ, कोई कहता है एक पीला आम ले आओ, कोई कहता है एक किलो आम ले आओ, कोई कहता है सुगंधित आम ले आओ। वे अलग-अलग विशेषण से आम प्राप्त करने के लिए बोल रहे हैं। मीठा आम लाना कहने पर आम का मीठा गुण क्या अन्य गुण से अलग करके लाया जा सकता है? कदापि नहीं क्योंकि मीठा गुण आम के अन्य गुणों के साथ एक क्षेत्रावगाही होकर रहता है। इसी कारण अन्य गुणों को पृथक् करके नहीं लाया जा सकता हैं। इसलिये आम का मीठा गुण आम में होते हुए भी आम केवल मीठा गुण स्वरूप नहीं है अन्य गुण स्वरूप भी है। केवल गुण-गुणी संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भेद होते हुए भी प्रदेश अपेक्षा भेद नहीं होता है। उपरोक्त सिद्धांत का प्ररूपण तार्किक चूड़ामणि अकलंक स्वामी ने स्वरूप संबोधन में किया है।

प्रमेयत्वादिभिधर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तस्मात्वेतनाचेतनात्मकः।। (3)

वह आत्मा प्रमेयत्व आदि धर्मों द्वारा अचित्त रूप है, ज्ञान और दर्शन गुण से चेतन रूप है। इस कारण चेतन-अचेतन रूप है।

ज्ञानाहिभन्नो न चाभिन्नो, भिन्ना भिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरिभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः।। (4)

आत्मा का ज्ञान गुण भूतकाल और भविष्यत् काल के पदार्थों को जानने रूप पर्यायों वाला है। वह प्रसिद्ध यह आत्मा उस ज्ञान गुण से सर्वथा भिन्न नहीं है और सर्वथा अभिन्न यानी एकरूप भी नहीं है। किसी अपेक्षा से भिन्न और अभिन्न इस प्रकार कहा गया है।

स्वदेहप्रमिताश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।

ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा।। (5)

यह आत्मा अपने शरीर के बराबर है और यह आत्मा ज्ञानगुण मात्र भी यानी ज्ञान के बराबर भी नहीं है। इस कारण यह आत्मा सब तरह समस्त पदार्थों को स्पर्श करने वाला नहीं है और समस्त जगत् में व्यापने वाला भी सर्वथा नहीं है।

नानाज्ञानस्वभावत्वादेकाऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैक स्वभावत्वादिकानेकात्मको भवेत्।।

वह आत्मा अनेक प्रकार के ज्ञान स्वरूप होने से अनेक होते हुए भी एक चेतना-स्वभाव होने से एक होता हुआ भी सर्वथा एक ही नहीं है किन्तु एक तथा अनेकात्मक होता है।

ज्ञान एवं ज्ञेय का स्वरूप

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिहा समक्खादं।
दव्वं ति पुणो आदा परं च परिणाम संबद्धं।। (36)

जैसे दीपक स्व-पर प्रकाशी है अर्थात् स्वयं प्रकाशित होता है एवं पर को भी प्रकाशित करता है। उसी प्रकार आत्मा भी स्व-पर प्रकाशी है अर्थात् ज्ञान गुण के द्वारा स्वयं को जानता है और दूसरों को भी जानता है। जब आत्मा स्वयं को जानता है उस समय वह कथंचित् ज्ञेय भी हो जाता है। अन्य दृष्टि से भी आत्मा ज्ञेय है क्योंकि ज्ञान गुण को छोड़कर अन्य गुण भी ज्ञान के विषय बनते हैं। इसलिए अन्य गुण की अपेक्षा आत्मा ज्ञेय बन जाता है। अन्य अचेतन द्रव्य केवल ज्ञेय ही होते हैं कभी ज्ञान नहीं होते क्योंकि उसमें चैतन्य शक्ति नहीं होती है। जैसे-जो द्रव्य स्वयं अप्रकाशी है वह अन्य द्रव्य को प्रकाश नहीं दे सकता परन्तु अन्य के प्रकाश से प्रकाशित हो सकता है। जैसे विज्ञान की अपेक्षा सूर्य स्व-प्रकाशी एवं पर-प्रकाशी भी है। क्योंकि जब सूर्य उदय होता हैं तब सूर्य को देखने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। कोई यह नहीं कहता कि मुझे उदित सूर्य को देखना है, एक टॉर्च लेकर आओ परंतु अंधकार में कोई अप्रकाशित वस्तु को देखने के लिए प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। प्रमेयरत्नमाला (जैन न्याय शास्त्र) में कहा भी है-

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्। (1) पृ. 13

स्व अर्थात् अपने आपको और अपूर्वार्थ अर्थात् जिस किसी अन्य प्रमाण से पूर्व में जाना नहीं है ऐसे पदार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः। (6) पृ. 24

स्वोन्मुखरूप से अपने आपको जानना, यह स्वव्यवसाय है। अपने आपको जानने के अभिमुख होने को स्वोन्मुखता कहते हैं। उस स्वोन्मुखता कहिए स्वानुभवरूप से जो प्रतिभास अर्थात् आत्मप्रतीति या आत्म-निश्चय होता है, वह स्वव्यवसाय कहलाता है। सारांश अपने आपको जानने का नाम स्वव्यवसाय है।

अर्थस्येव तदुन्मुखतया। (7)

जैसे अर्थ के उन्मुख होकर उसे जानना अर्थव्यवस्था है। सूत्र में कहे गए 'तत्' शब्द से अर्थ (पदार्थ) को ग्रहण किया गया है। जिस प्रकार पदार्थ के अभिमुख होकर उसके जानने को अर्थव्यवसाय कहते हैं, उसी प्रकार स्व अर्थात् अपने आपके अभिमुख होकर जो अपने आपका प्रतिभास होता है अर्थात् आत्मप्रीति या आत्म-निश्चय होता है, वह स्वव्यवसाय कहलाता है।

घटमहमात्मना वेद्मि। (8)

मैं घटको अपने आपके द्वारा जानता हूँ, यहाँ पर 'अहं' पद कर्ता है घट कर्म है, आत्मना पद कारण है और वेद्मि यह क्रिया है। जैसे जानने वाला पुरुष अपने आपके द्वारा घट को जानता है, वैसे ही अपने आपको भी जानता हूँ।

प्रदीपवत्। (12)

दीपक के समान। जिस प्रकाश दीपक की प्रकाशता और प्रत्यक्षता को स्वीकार किये बिना उससे प्रतिभासित हुए घटादिक पदार्थ की प्रकाशता और प्रत्यक्षता संभव नहीं है उसी प्रकार यदि प्रमाण स्वरूप ज्ञान की भी प्रत्यक्षता न मानी जाय, तो उसके द्वारा प्रतिभासित पदार्थ की भी प्रत्यक्षता माननी संभव नहीं है। अतः दीपक के समान ज्ञान की भी स्वयं प्रकाशता और प्रत्यक्षता माननी चाहिए। यहाँ यह तात्पर्य है-ज्ञान अपने आपके प्रतिभास करने अर्थात् जानने में अपने से अतिरिक्त (भिन्न) सजातीय अन्य पदार्थों की अपेक्षा से रहित हैं, क्योंकि पदार्थ को प्रत्यक्ष करने के गुण से युक्त होकर अदृष्ट-अनुयायी करण वाला है, जैसे दीपक का भासुराकार। नियमसार में अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है-

''यथावद्धस्तुनिर्णीतः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्तवार्थव्यवसायात्म कथंचित् प्रमिते पृथक्।।'' पृ. 432

यथार्थ रूप से वस्तु का निर्णय होना सम्यग्ज्ञान है, वह प्रदीप के समान स्व

और पर अर्थ का निश्चय कराने वाला है, तथा प्रमिति-जानने रूप क्रिया से कथंचित् भिन्न है।

ज्ञान त्रिकाल की अवस्थाओं को जानता है-

तत्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।
वहन्ते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं।। (37)

भाव यह है कि जैसे छद्मस्थ अल्पज्ञानी मति श्रुतज्ञानी पुरुष के भी अंतरंग में मन से विचारते हुए पदार्थों की भूत और भविष्य पर्यायें प्रगट होती हैं अथवा जैसे चित्रमयी भीत पर बाहुबली भरत आदि के भूतकाल के रूप तथा श्रेणिक तीर्थंकर आदि भविष्य के रूप वर्तमान के समान प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ते हैं तैसे भीत के चित्र समान केवलज्ञान में भूत और भावि अवस्थाएँ भी एक साथ प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती हैं इसमें कोई विरोध नहीं है तथा जैसे यह केवली भगवान्, पर द्रव्यों की पर्यायों को उनके ज्ञानाकार मात्र से जानते हैं, तन्मय होकर नहीं जानते हैं, परन्तु निश्चय करके केवलज्ञान आदि गुणों का आधारभूत अपनी ही सिद्ध पर्याय को ही स्वसंवेदन या स्वानुभव रूप से तन्मयी हो जानते हैं तैसे निकट भव्य जीवों को भी उचित है कि अन्य द्रव्यों का ज्ञान रखते हुए भी अपने शुद्ध आत्म द्रव्य की सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्र रूप निश्चय रत्नत्रयमयी अवस्था को ही सर्व तरह से तन्मय होकर जाने तथा अनुभव करे यह तात्पर्य है।

त्रैकालिक पर्यायों का समूहभूत द्रव्य है। किसी न किसी समय में द्रव्य किसी न किसी अवस्था में रहेगा ही। ऋजूसूत्र नय की अपेक्षा द्रव्य में एक समय में एक ही पर्याय रहती है। भूत एवं भावी पर्यायें वर्तमान द्रव्य में प्रागभाव एवं प्रध्वंसाभाव रूप में रहती हैं। केवलज्ञान विशद, निरपेक्ष, प्रत्यक्ष, अनंतानंत ज्ञान प्रतिच्छेद से युक्त होने के कारण वह केवलज्ञान वर्तमान पर्याय के माध्यम से भूत एवं भविष्यत् पर्यायों को भी जान लेता है। एक लौकिक उदाहरण से प्रस्तुत करके इस महान् गूढ़ रहस्य का विशदकरण कर रहे हैं। जैसे अल्पज्ञ (छद्मस्थ) व्यक्ति एक किशोर को देखकर अपने क्षयोपशमिक ज्ञान से यह अनुमान लगाता है कि यह किशोर पहले माता के गर्भ में था, जन्म लेकर शिशु से बढ़ता-बढ़ता किशोर हुआ है एवम् आयुक्रम से बढ़ता हुआ, युवक, प्रौढ़, वृद्ध होकर मृत्यु को भी प्राप्त करेगा। यदि इसकी आयु कम है तो वह युवक, प्रौढ़, वृद्ध बने या न बने पर निश्चित रूप से मृत्यु को प्राप्त करेगा और भी

एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ-रोटी को देखकर हमें पहले यह ज्ञान होता है कि पहले गेहूँ को खेत में बोया गया था, फिर अंकुर होकर पौधा बनकर गेहूँ आया तथा पका हुआ उस गेहूँ को काट-छाँट कर गेहूँ को अलग किया गया, पश्चात् गेहूँ को (पीसकर) रोटी बनाई गई। यह हुआ भूत से वर्तमान का ज्ञान। वह अनुमान से जानता है कि यदि कोई इसको भक्षण करेगा तो यह इस रूधिर रूप में परिवर्तित होगी और यदि कोई भक्षण नहीं करेगा तो सड़-गल जायेगी। छद्मस्थ व्यक्ति अल्पज्ञ होने के कारण द्रव्य की कुछ पर्यायों को जान सकता है परन्तु सर्वज्ञ अनंत ज्ञानी होने से संपूर्ण द्रव्य की संपूर्ण पर्यायों को जानते हैं। दिगम्बर महाश्रमण आचार्य उमास्वामी ने कहा भी है-

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व पर्यायेषु। (26) अ.1 तत्वार्थसूत्र

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है।

रूपिष्ववधेः। (27) अ.1

अवधिज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है।

तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य। (28)

मनः पर्ययज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनंतवें भाग में होती है।

सर्वद्रव्य पर्यायेषु केवलस्य। (29)

केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों में होती हैं।

प्रत्यक्ष ज्ञान ही पारमार्थिक सुख है

जादं सयं सम्मत्तं णाणमणंतवित्थडं विमलं।
रहिदं तु ओग्गहादिहि सुहं त्ति एगंतियं भणियं।। (59)

भाव यह है कि यह केवलज्ञान पर-पदार्थों की सहायता की अपेक्षा न करके चिदानंदमयी एक स्वभाव रूप अपने ही शुद्धात्मा के एक उपादान कारण से उत्पन्न हुआ है इसलिए स्वयं पैदा हुआ है, सर्व शुद्ध आत्मा के प्रदेशों में प्रगटा है इसलिए संपूर्ण है अथवा सर्व ज्ञान के अविभाग-प्रतिच्छेद अर्थात् शक्ति के अंश उनसे परिपूर्ण हैं, सर्व आवरण के क्षय होने से पैदा होकर सर्व ज्ञेय पदार्थों को जानता है। इससे अनंत पदार्थ व्यापक है। संशय, विमोह, विभ्रम से रहित होकर व सूक्ष्म आदि पदार्थों के जानने में अत्यंत विशद होने से निर्मल है तथा क्रमरूप इन्द्रिय जनित ज्ञान के खेद के अभाव से अवग्रहादि रहित अक्रम है। ऐसा यह पाँच विशेषण सहित क्षायिक ज्ञान

अनाकुलता लक्षण को रखने वाला परमानंदमयी एकरूप पारमार्थिक सुख से संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा से भेदरूप होने पर भी निश्चयनय से अभिन्न होने से पारमार्थिक या सच्चा स्वाभाविक सुख कहा जाता है यह अभिप्राय है।

सुख आत्मा का शुद्ध आत्मा स्वभाव है और सुख का वेदन जीव ज्ञान के माध्यम से करता है, परन्तु जब जीव समस्त कर्मों से रहित होकर पूर्ण ज्ञानानंद स्वरूप बन जाता है तब ज्ञान एवं आनंद में अभेद विवक्षा से भिन्न नहीं रहता है तथा उसका वेदन भी अभेद हो जाता है। इसीलिये अभेद विविक्षा से ज्ञान एवं सुख को एकरूप से स्वीकार किया गया है तथापि भेद विवक्षा से ज्ञान एवं सुख पृथक्-पृथक् है, क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से केवलज्ञान होता है, दर्शन-मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है एवं चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक चारित्र होता है और इसे ही सुख कहा गया है। इसलिये चार घातिकर्म के क्षय से अनंत चतुष्टय प्रगट होता है, परन्तु प्रवचनसार आध्यात्मिक ग्रंथ है। इस आध्यात्मिक ग्रंथ में ज्ञान को मुख्यता दी गई है।

जादंसयं इत्यादि-इस गाथा में ''जादं सयं'' अर्थात् स्वयं से उत्पन्न हुआ विशेषण ज्ञान (सुख) के लिए दिया गया है, क्योंकि यह सुख जीव का स्वभाव होने से बाहर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु स्वयं में ही अभेद रूप से निहित है। जैसे-सूर्य में सूर्य किरण रहती है, परन्तु बादल के कारण सूर्य किरण छिप जाती है और बादल छटते-हटते ही सूर्य किरणें प्रगट हो जाती हैं। उसी प्रकार स्वयं में निहित सुख (ज्ञान) ही कर्म के कारण तिरोहित/गुप्त/सुप्त हो गया था, परन्तु विरोध कारण रूप कर्म का-क्षय होने के कारण स्वयं प्रगट हो गया।

समत्तं (समस्त)-सुख आत्मा का गुण होने के कारण संपूर्ण आत्मा के समस्त प्रदेशों में सुख का वेदन होता है। जिस प्रकार अग्नि की उष्णता अग्नि के प्रत्येक कण में, स्वर्ण का पीतपना स्वर्ण के प्रत्येक प्रदेश में, शक्कर का मीठापन उसके प्रत्येक कण में होता है उसी प्रकार सुख का वेदन आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में होता है।

णाणमणंतत्थवित्थडं (अनंत अर्थ में विस्तृत ज्ञान)-ज्ञान ज्ञेय प्रमाण होने के कारण और केवलज्ञान में सबसे अधिक अनंतानंत अनुभाग प्रतिच्छेद शक्ति होने के कारण यह ज्ञान समस्त ज्ञेयों में विस्तृत है इसलिये इस ज्ञान में जानने के लिए कुछ अवशेष नहीं रहता है। इस ज्ञान में जानने की इच्छा का अभाव होने के कारण यह

ज्ञान सुख स्वरूप भी है।

विमल (मल रहित, निर्मल)-छद्मस्थ का ज्ञान एवं सुख कर्म सापेक्ष होने के कारण, मलयुक्त होने के कारण आकुलता उत्पन्न करने वाला है परन्तु केवलज्ञान कर्म निरपेक्ष एवं अव्याबाध होने के कारण यह सुख परम आल्हाद रूप सुख है।

रहिदं तु ओग्गहादिहि (अवग्रहादि से रहित)-केवलज्ञान क्षायिक होने के कारण यह युगपत् प्रवृत्त होता है। इसलिये अवग्रहादि का क्रम नहीं है और तज्जनित खेद व आकुलता नहीं है। इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञान ही पारमार्थिक या एकांतिक सुख है।

ज्ञान-विज्ञान-आध्यात्मिक जागृति की होली मनी

वाग्वर अञ्चल के धार्मिक ग्राम ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा में परम पूज्य वैज्ञानिक संत प्रवर आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ के दीर्घकालिक प्रवास से यहाँ के आबाल-वृद्धजनों में ज्ञान-विज्ञान के प्रति सराहनीय रूचि व आध्यात्मिक जागृति से आचार्यश्री संघ व अञ्चल के श्रद्धालुजनों में एक अपूर्व आह्लाद व उत्साह का संचार हो रहा है। स्थानीय पुरुष-महिलाएँ व बच्चे-बच्चियाँ आचार्यश्री संघ से स्वाध्याय-आहारदान-ज्ञानदान-वैयावृत्ति-सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेकर ज्ञानार्जन-पुण्यार्जन करते हुए भावनात्मक क्रांति कर ज्ञानी-गुणी-कलावन्त हो रहे हैं।

होली पर्व के उपलक्ष्य में आचार्यश्री ने बड़ी संख्या में उपस्थित जनों को संबोधित करते हुए पर्व मनाने का कार्य-कारण विज्ञान पैराणिक से लेकर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समझाते हुए अपनी स्वरचित कविता ''मुनिसंघ की अलौकिक-पावन होली'' के माध्यम बताया कि पर्व प्रेम-संगठन-मैत्री-शांति बढ़ाने हेतु उत्साह से मनाना चाहिए न कि फैशन-व्यसन-उद्दण्डता हेतु। इस अवसर पर आचार्यश्री सृजित चार गीताञ्जली-1. ''मैं (अहं) आध्यात्मिक गीताञ्जली, धारा-42'', 2. ''आध्यात्मिक रहस्य गीताञ्जली, धारा-43'', 3. ''धर्म-अधर्म गीताञ्जली, धारा-44'', 4. ''निन्दा-पुराण गीताञ्जली, धारा-45'' का विमोचन ज्ञानदानियों के हस्ते सम्पन्न हुआ। मंगलाचरण व दीप प्रज्ज्वलन के पश्चात् स्थानीय बालक-बालिकाओं ने गुरुदेव सृजित कविताओं पर आधारित गीत व नृत्य-अभिनय की सुंदर प्रस्तुति की, जिसे देखकर आचार्यश्री ने सभी को स्वरचित साहित्य आदि देकर पुरस्कृत किया। विशेष उपलब्धि यह रही कि सभी बालक-बालिकाओं को जो नगद पुरस्कार प्राप्त हुआ वह सभी ने मिलकर

आचार्यश्री के ग्रंथ प्रकाशन हेतु ज्ञानदान कर अपनी भक्ति व उदारता का परिचय दिया। मंच संचालन संघस्थ ब्रह्मचारी सोहनलाल जी देवड़ा ने किया, इसमें श्रीमती विजयलक्ष्मी गोदावत ने भी सहयोग किया।

शुभाकांक्षा सह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

डॉ. जीवराज जैन के पत्र : आ. कनकनन्दी के लिए

श्रीमान् गुंजनजी जैन, सप्रेम जय जिनेन्द्र!

विषय : ''लोकाकाश-वैज्ञानिक अनुशीलन।''

तत्र विराजित परम पूज्य आचार्यश्री कनकनन्दी जी म.सा. तथा ठाणा आदि से हमारी सादर वंदना अर्ज करावे तथा उनकी सुख-साता पूछावें।

संलग्न दो लेख भेजे हैं। कृपया उनकी प्रतियाँ आचार्यश्री के चरणों में पेश करावें। इसके बारे में आचार्यश्री की जो राय तथा सुझाव बनते हैं, कृपया मुझे वापिस सूचित करावें।

आपको कष्ट दे रहा हूँ, क्षमा करावें।

आचार्यश्री के सान्निध्य में आप का धर्म-ध्यान सुचारू रूप से चल रहा होगा।

आपका डॉ. जीवराज जैन, मो. 09431301905

Dear Gunjanji,

करीब 2 सप्ताह पहले आपको लोक के बारे में 2 अभिलेख भेजे थे तथा विनती की थी कि परम पूज्य वैज्ञानिक आचार्यश्री कनकनन्दी जी म.सा. को सादर वंदना अर्ज करके वो अभिलेख उनकी सेवा में पेश करावें। पू. गुरुदेव के इस पर कोई प्रश्न हो तो मुझे बतावें। पू. आचार्यश्री ने उन पर चिन्तन किया होगा, खास करके लोक की विषय-वास्तु को प्रदर्शित करने के वैज्ञानिक तरीके की। क्या इतनी विशाल सामग्री को दिखाने की कोई अन्य माननीय वैज्ञानिक विधि भी हो सकती है, सिवाय सांख्यिक पद्धति के? अन्यथा लोग-बाग झूठी कल्पना के घोड़े दौड़ते ही रहेंगे। लेकिन यह भी समझ में आता है कि यदि इतनी शताब्दियों के बाद सच्ची पद्धति को अपनाया जाएगा तो हमारी पूरी सोच में एक क्रांति आ जाएगी। इसके लिए बहुत मेहनत और चिंतन की आवश्यकता पड़ेगी।

अतः कृपया एक बार पू. आचार्यश्री से इसके बारे में उनके सुझाव पूछकर, उनसे मेरे लिए आशीर्वाद प्राप्त करावें।

डॉ. जीवराज जैन

श्री गुजन जी, सप्रेम जय जिनेन्द्र!

विषय : लोकाकाश का गणित।

पू. गुरुदेव से समय मिलाने पर निम्नलिखित पृच्छा करके कृपया समाधान प्राप्त करावें।

क्या केवली भगवन् किसी भी क्षेत्र में हम छद्मस्थों से जरा भी कमजोर हो सकते हैं? हम लोग किसी वस्तु या पिंड की लंबाई, चौड़ाई आदि नाप सकते हैं, फिर उसका क्षेत्रफल और घनफल भी दिमागी और शारीरिक गणना द्वारा निकाल कर बता सकते हैं। क्या केवलियों द्वारा ऐसा काम या गणना हो सकती है? लोक की लंबाई और चौड़ाई किसने मापी या किसने उसका घनफल दिमागी गणना करके 343 घन राजू निकाला? क्या केवलियों को मात्र देखने से (द्रष्टा को) यानी बिना गणना किये, प्रथम नरक में 29,95,567 प्रकीर्णक बिल हैं, सहज रूप से मालूम हो जाता है? नहीं तो इतनी सही-सही गणना किसने की? पहली नरक के नारकियों के शरीर की ऊँचाई 13वें पटल में 7 धनुष, 3 हाथ 6 अँगुल प्रमाण है, यह माप क्या बिना मापने की क्रिया किये ही केवलियों के ज्ञान में आ जाता है? छद्मस्थों के लिए तो ऐसा होना संभव नहीं है। तो क्या ज्ञाता-दृष्टा को, जो सहज रूप से ज्ञान में आ जाता है, उसकी सीमाएँ, छद्मस्थ की देखने की सीमाओं से बिलकुल भिन्न और व्यापक होती हैं?

चूँकि लोकाकाश करणानुयोग का विषय है, जिसमें छद्मस्थों के लिए गणित ही गणित है, तो क्या केवलियों ने बिना दिमागी कसरत किये ही सब उच्च गणितीय विवेचन और समाधान लोकाकाश के वर्णन में बता दिए थे? यदि हाँ, तो इस तथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गणित, बीजगणित और सांख्यिक गणित आदि सभी प्रकार की गणित भी केवलियों के ज्ञाता-दृष्टा क्षेत्र में ही रहते हैं। छद्मस्थों के लिए तो उनके देखने के सीमा में ऐसा होना संभव ही नहीं हैं। उनको तो गणना के लिए दिमागी कसरत करनी ही पड़ेगी।

उपरोक्त निष्कर्ष के बारे में पूज्य गुरुदेव का मार्गदर्शन लिखावें।

अयाचक निस्पृही संतप्रवर श्रमणाचार्य

श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ के आगामी चातुर्मास

वर्ष 2016	अतिशय क्षेत्र सीपुर (राज.)
	श्री नितिन जैन
वर्ष 2017	आदिनाथ दि. जैन चैत्यालय, चीतरी (राज.)
	कु. शौर्य सुपुत्र श्री भूपेश जैन
वर्ष 2018	ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा (राज.)
	श्री कान्तिलाल जी जैन

विशेष परिस्थिति को छोड़कर उपरोक्त चातुर्मास निश्चित।

निवेदन-संभावना व चातुर्मास पद्धति

1. अतिशय क्षेत्र सीपुर में आजीवन चातुर्मास करने हेतु ऊर्जावान् गुरुभक्त श्री नितिन जैन द्वारा प्रायः 300 बार निवेदन।
2. ग्राम नन्दौड़ में भी वर्ष 2015 का चातुर्मास सम्पन्न होकर आगामी 5 चातुर्मास कराने हेतु निवेदन।
3. सागवाड़ा नगर की ओर से भी आगामी 5 से 10 चातुर्मास कराने हेतु निवेदन। यहाँ भी आचार्य श्रीसंघ के दो चातुर्मास सम्पन्न हो चुके हैं।
4. ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा में भी आगामी वर्ष 2018 के चातुर्मास हेतु श्री कान्तिलाल जी जैन द्वारा व्यक्तिगत से लेकर समाजजनों द्वारा आग्रहपूर्ण निवेदन।
5. उदयपुर नगर में आचार्य श्रीसंघ के अब तक 3 चातुर्मास सम्पन्न हो चुके हैं। सेक्टर-11 वालों का पुनः आगामी चातुर्मास हेतु निवेदन।
6. आध्यात्मिक प्रेमी अंतर्राष्ट्रीय ज्योतिष विज्ञानी श्री मनोहर सिंहजी कृष्णावत (हिन्दू भक्त) ग्राम थाना में दीर्घकालिक प्रवास हेतु निवेदन।
7. श्री हीरालाल जी नवलखा (श्वे. भक्त) ग्राम भुताला द्वारा व्यक्तिगत चातुर्मास कराने हेतु निवेदन।

उपरोक्त श्रृंखला में अन्य ग्राम-नगरों के भक्त-शिष्यों द्वारा व्यक्तिगत से लेकर समाजजनों की ओर से आचार्य श्रीसंघ के चातुर्मास कराने हेतु अनेक वर्षों से प्रयास जारी है। जैसे-**राजस्थान** के उदयपुर, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, बिजौलिया, लावा, निवाई, मूँगाणा, नरवाली, आसपुर, कानपुर, कुशलगढ़ आदि।

महाराष्ट्र के देवल गाँव राजा, धर्मतीर्थ, औरंगाबाद, नागपुर, नासिक, आडूळ, मुम्बई आदि।

मध्यप्रदेश के थांदला, राणापुर, इन्दौर आदि।

उत्तरप्रदेश के तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी (T.M.U.) मुरादाबाद आदि।

आचार्यश्री चातुर्मास करने हेतु भावना-भक्ति-आवश्यकता-प्राथमिकता-प्रायोगिकता-प्रभावना आदि को दृष्टिगत रखते हुए याचना-दबाव-प्रलोभन-आडम्बर आदि से रहित होकर निर्णय लेते हैं, जिससे व्यक्ति से लेकर समाजजनों का श्रम, समय, धन, साधन व ऊर्जा का दुरुपयोग न हो एवं देश-विदेश में जो महती धर्म प्रभावना हो रही है उसके लिए बाधा न होकर अनुकूल वातावरण बने।

उत्तम स्वात्म चिन्ता तो परचिन्ता अधमाधमा क्यों?

(आगम-अनुभव एवं समाज के परिप्रेक्ष्य में)

-आ. कनकनन्दी

(राग : तुम दिल की.....)

'उत्तम स्वात्मचिन्तास्यात्' 'परचिन्ता च अधमाधमा।'
ऐसा पूर्व आचार्यों ने कहा, जिसका रहस्य मैंने जो समझा।। (ध्रुव)

आत्म चिन्तन है आत्म श्रद्धान, आत्मज्ञान व आत्मानुसंधान।
आत्म विश्लेषण आत्म शोधन, आत्मानुभव व आत्म ध्यान।।

द्वादश अनुप्रेक्षा-षोडश भावना, प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान।
इसी से होता आर्त रौद्र ध्यान त्याग, संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्याग।। (1)

(जिससे) राग द्वेष मोह होते क्षीण, ईर्ष्या घृणा तृष्णा (भी) होते क्षीण।
पाप-ताप व संताप नशते, आकर्षण-विकर्षण द्वन्द नशते।।

जिससे होता है एकाग्र मन, समता-शांति भी प्रवर्द्धमान।

आत्म विशुद्धि से होता धर्म-ध्यान, शुक्ल-ध्यान से श्रेणी आरोहण।। (2)

जिससे होता घाती कर्मनाश, अनंत चतुष्टय होता प्राप्त।
अघाती नाश से होते शुद्ध-बुद्ध, सच्चिदानंदमय परम-आत्म।।

इसलिये तो उत्तम आत्म चिन्ता है, जिससे होता है आत्म विकास।
परचिन्ता तो अधमाधमा, जिससे होता आत्म विनाश।। (3)

आत्म चिन्ता से पूर्ण विपरीत, परचिन्ता के भाव व्यवहार।
स्व-शुद्धात्मा के अतिरिक्त पर सचित्त-अचित्त व मिश्र प्रकार।।

शत्रु-मित्र भाई बन्धु कुटुम्ब, नौकर से लेकर पशु-पक्षी तक।
ये सब सचित्त पर द्रव्य, चेतना रहित अचित्त पर द्रव्य।। (4)

धन-धान्य सहित सचित्त द्रव्य होते मिश्र रूप में पर द्रव्य।
इन सब हेतु जो होते राग द्वेष, ईर्ष्या तृष्णा घृणादि परचिन्ता।।

आर्त रौद्र ध्यान-निन्दा चुगली, वाद-विवाद व प्रतिस्पर्द्धा।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश द्वन्द, आकर्षण-विकर्षणादि परचिन्ता।। (5)

इसी से विपरीत ही फल मिलता, जो आत्म चिन्तन से मिलता फल।
पाप-ताप-संताप आदि बढ़ते, संसार भ्रमण से मिलता दुःख।।

अतएव पर चिन्ता अधमाधमा नवकोटि से सदा त्यजनीय।
स्व-पर-विश्व हितकर चिन्तनीय, 'कनकनन्दी' का यही ध्येय।। (6)

बाल विद्यार्थी समय से ही, मैं कर रहा हूँ सतत आत्म चिन्तन।
पर कुचिन्ता मैं नहीं करता हूँ, जिससे मुझे मिले शान्ति-सम्मान।।

समय शक्ति का दुरुपयोग न होता, वाद-विवाद व कलह न होता।
शोध-बोध अनुभव बढ़ते, सेवा सहयोग भी करते लोग।। (7)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दिनांक 09.06.2016, रात्रि 9.05 व 10.52

(अधिकांश जन प्रायः आत्म चिन्तन के विपरीत परचिन्ता करते हैं अतः इस दुष्प्रवृत्ति से सतत पूर्णतः बचने हेतु मेरा आत्म सम्बोधन परक कविता।)
(यह कविता दिनेशचंद्र शाह की भावना से भी प्रेरित है।)

झूठे धार्मिक व सच्चे धार्मिक

(चाल : बड़ा नटखट है रे.....)

हाय रे! संकीर्ण धार्मिक वाले, राग द्वेष मोह युक्त वाले।
संकीर्ण स्वार्थी व अज्ञानी वाले, धन जन ख्याति चाहने वाले...होऽऽऽ...(स्थायी)...

उदार सहिष्णुता रहित वाले, सत्य समता रहित वाले।
ईर्ष्या द्वेष घृणा सहित वाले, अहंकार ममकार सहित वाले।।

भेद-भाव पक्ष-पात सहित वाले, शुचिता शांति रहित वाले।
हठाग्रह दुराग्रह से सहित वाले, सरल-सहजता रहित वाले होऽऽऽ।। हाय रे...(1)...

अन्य के सुगुण से भी जलने वाले, पर विघ्न संतोषी ईर्ष्यालु वाले।
क्रूरता कठोरता निर्दयता वाले, परनिंदा अपमान सहित वाले।।

रूढ़ि परम्परा को ही धर्म मानने वाले, इसी से ही स्वर्ग मोक्ष चाहने वाले।
हिताहित विवेक रहित वाले, दान दया सेवा रहित वाले होऽऽऽ।। हाय रे...(2)...

कार्यकारण परिणाम रहित, अंधविश्वास सह कामना युक्त।
सत्ता संपत्ति व प्रसिद्धि चाह, इसी हेतु धार्मिक क्रिया युक्त।।

स्व-मत भिन्न अन्य सभी को, पापी व अधर्मी मानने वाले।
उन्हें कष्ट देना भी चाहते तुम, उन्हें मारकर धार्मिक बनते होऽऽऽ।। हाय रे...(3)...

धर्म तो सत्य समता व पवित्रता, दान दया सेवा व सहिष्णुता।
स्व-पर विश्व कल्याणमय धर्म, आत्म विकास व शांतिमय धर्म।।

इनसे युक्त तुम पाले हे! धर्म, जिससे मिलेगा अनंत शर्म (सुख)।
स्व-पर हित से प्रारंभ धर्म, 'कनक' सेवे आध्यात्म धर्म होऽऽऽ।। हाय रे...(4)...

धन्य हे! श्रमण समता वाला!

(साम्य भाव का अलौकिक-अभौतिक वैभव)

(चाल : बड़ा नटखट है रे....., जिन्दगी एक सफर.....)

धन्य है! श्रमण (जीवन) समता वाला, राग द्वेष मोह रिक्त वाला।
निस्पृह निराडम्बर शांति वाला, अलौकिक आत्मिक सुख वाला।। हो...

ध्यान-अध्ययन मौन वाला, आध्यात्मिक अनुभव करने वाला।

ईर्ष्या तृष्णा घृणा रहित वाला, आत्मानंद में रमने वाला।।

परनिन्दा-अपमान चिन्ता रहित, भेद-विज्ञान भाव श्रद्धा युक्त।
अपना-पराया ऊँच-नीच रिक्त, सर्वोदय अन्त्योदय भाव युक्त।।

संकल्प-विकल्प संक्लेश रिक्त, आत्मविशुद्धि में दृढ़संकल्प युक्त।
आकर्षण-विकर्षण द्वंद रहित, चैतन्य चमत्कार वैभव युक्त।।

दीन-हीन अहंकार भाव रिक्त, स्वाभिमान सोऽहं (अहं) भाव युक्त।
तन-मन-इन्द्रिय सत्ता संपत्ति परे, शुद्ध-बुद्ध आनंद लक्ष्य युक्त।।

चौरासी लाख योनि चतुर्गति रहित, अनंत आत्मिक गुण लक्ष्य सहित।
धीर-वीर गंभीर धैर्य सहित, क्षमा मृदुता सरलता सहजता युक्त।।

तेरा वैभव अलौकिक-अभौतिक, रागी द्वेषी मोही हेतु काल्पनिक।
इन्द्रिय यंत्री से परे अनुभवगम्य, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य परम साम्य।।

जैन धर्म की सर्वोत्तम विशिष्टता अहं (मैं)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

जैन धर्म की विशिष्टता जानो, अहं (मैं) ही सर्वोत्तम विशिष्ट मानो।
अहं (मैं) ही कर्त्ता-धर्त्ता व भोक्ता, संसार अवस्था से लेकर मुक्त अवस्था।। (1)

नवकोटि से जीव (स्वयं) करे परिणमन, तदनुकूल जीव (स्वयं) बांधता कर्म।
कर्मानुसार जीव करे (स्वयं) संसार भ्रमण, संसार मध्य में (स्वयं) पंच परिवर्तन।। (2)

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव पाकर, सद्गुरु उपदेश रूपी निमित्त पाकर।
करता श्रद्धान व ज्ञान आचरण, अशुभ से शुभ में (स्वयं) करे परिणमन।। (3)

पंच पाप सप्त व्यसनों को त्यागता, पंचाणुव्रत व सेवादानादि देता।
ज्ञान वैराग्य आदि को स्वयं बढ़ाता, भाव विशुद्धि से (स्वयं) श्रमण बनता।। (4)

स्व-अध्ययन हेतु स्वाध्याय करता, तन-मन-इन्द्रियों को संयम करता।
आत्म विश्लेषण से आत्मविशुद्धि करता, अनुप्रेक्षा ध्यान से स्वयं को पावन करता।। (5)

पर संकल्प-विकल्पों को त्याग करता, आर्त्त-रौद्र ध्यान को त्याग करता।
शुभ को बढ़ाते हुए शुद्ध भी बनता, स्वयं में ही स्वयं लीन होता जाता।। (6)

घाती नाशकर अरिहंत बनता, अघाती नाशकर सिद्ध भी बनता।
सभी अवस्था में जीव प्रमुख होता, स्व (स्वयं) का कर्त्ता-भोक्ता 'कनक' ही होता।। (7)

आध्यात्मिक प्रभावना युक्त दीर्घ प्रवास

(यहाँ के स्वैच्छिक ज्ञान-दान से 10 ग्रंथों का प्रकाशन)

वाग्वर अञ्चल के धार्मिक ग्राम ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा की पुण्य धरा पर दीर्घ प्रवासरत प.पू. वैश्विक संत स्वाध्याय तपस्वी आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ द्वारा चल रही ज्ञान-विज्ञान की आध्यात्मिक प्रभावना से कॉलोनीवासी आबाल-वृद्ध अत्यंत अभिभूत व आह्लादित है। इस ग्राम में प्रायः 6 माह 10 दिन के दीर्घ प्रवास करने का सबसे मुख्य कारण यहाँ के श्रद्धालुजनों द्वारा आचार्यश्री के वैश्विक ज्ञान व विज्ञान से प्रभावित होकर जिज्ञासु सनम्र सत्यग्राही विद्यार्थी बनकर गुरुदेव की स्वाध्याय कार्यशाला में आकर अनुशासित रूप से नियमित विद्याध्ययन व ज्ञानार्जन प्राप्त करना एक ऐतिहासिक व अभूतपूर्व उपलब्धि है। इस अवधि में आचार्यश्री ने प्रायः 4 माह पूर्व ही सागवाड़ा शहर में जाने हेतु विहार करने का मुहुर्त निकाला था किन्तु यहाँ के ज्ञान पिपासुजनों के भाव-व्यवहार व कॉलोनी में ही चातुर्मास के पूर्व तक श्रीसंघ को रुकवाने हेतु भावभीना आग्रहपूर्ण निवेदन करने से आचार्य श्रीसंघ ने दीर्घ प्रवास करने का मानस बनाया जिसके फलस्वरूप यहाँ के बच्चे-बच्चियाँ-महिलाएँ-पुरुषों में वैचारिक-भावात्मक क्रांति हुई। बच्चे-बच्चियाँ-महिलाएँ अच्छा लेखन-अभिव्यक्ति व कविता सृजन करने लगे। इतना ही नहीं आगामी वर्ष 2018 में कॉलोनी में चातुर्मास कराने हेतु श्री कान्तिलाल जी जैन व समाजजनों ने निवेदन किया एवं आगे भी लाभ प्राप्त करने हेतु भाव दर्शाया। यहाँ पर अधिकतर श्रद्धालुओं ने आहारदान, शास्त्रदान, सेवा, वैयावृत्ति, ज्ञानार्जन में सराहनीय रूप से सतत भाग लेते हुए अपूर्व पुण्यार्जन व भाव विशुद्धि का उपक्रम किया।

आचार्यश्री केशलोंच के अवसर पर यहाँ के आबाल-वृद्धों ने अपने-अपने विचार वक्तव्य व कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए आचार्य श्रीसंघ के प्रति अपनी उत्कट विनयाञ्जली व भाव-भक्ति का प्रदर्शन किया। गुरुदेव ने अपने सारगर्भित उद्‌बोधनों में कहा कि यहाँ के सामाजिक प्रेम संगठन के कारण मैं यहाँ रहा एवं सभी जनों को आगे भी इसी तरह समन्वय व प्रेम से रहते हुए देव शास्त्र गुरु के प्रति समर्पित रहते हुए धार्मिक कार्य करने के प्रेरणा नियम आशीर्वाद प्रदान किया। यहाँ के स्वैच्छिक ज्ञानदान से अभी तक आचार्यश्री सृजित 10 ग्रंथों का विमोचन किया गया।

शुभाकांक्ष सह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर